'शङ्कर-सर्वस्व'

महाकवि श्री पं० नाथूराम शङ्कर शर्मा

का

कविता-संग्रह

सम्पादक

हरिशङ्कर शर्मा

★

प्रकाशक

गयाप्रसाद एण्ड सन्स, आगरा
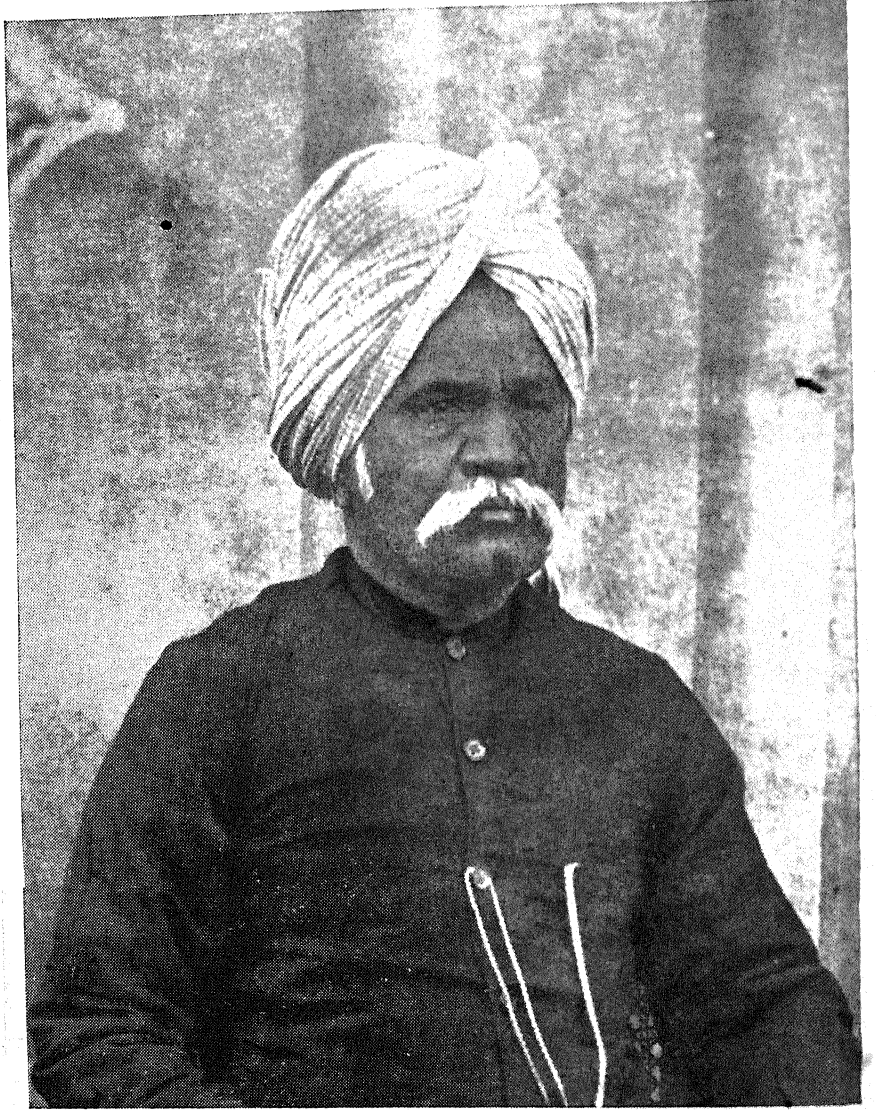
महाकवि शङ्करजी

जन्म :
चैत्र शु० ५, १६१६ वि०

मृत्यु :
भाद्रपद कृ० ५, १६८६ वि०

'श्राद्ध'

"मैं शङ्करजी का पवित्र चरित्र लिखकर अपनी कलंकित कलम के पापों का प्रायश्चित्त करूँगा। परमात्मा मुझे शक्ति दे कि मैं यह काम कर सकूँ, एवमस्तु।"

"मेरा एक इरादा है जो बहुत दिनों से है, और इस वार और पक्का हो गया है, जिसे जल्दी पूरा करना चाहता हूँ। यह एक ऐसा काम हो जायगा कि 'बायदो शायद'। इरादा यह है कि कविजी (शङ्करजी) की कविता पर एक विस्तृत समालोचनात्मक निबन्ध लिखूँ और ऐसा लिखूँ कि उससे अच्छा और न लिख सकूँ; बस कलम तोड़ दूँ और दवात फोड़ दूँ। हाय! आज 'कलित कलेवर' होता तो यह काम कैसा होता, यह बात जब याद आती है—और जब कोई कविता ग्रन्थ देखता हूँ तो जरूर याद आती है, और बार-बार रह-रह कर याद आती है, तो कलेजे पर साँप लोट जाता है। सहृदयता का हृदय फटने लगता है। पं० राधावल्लभजी पर खास तौर पर गुस्सा आता है कि उन्होंने ऐसा जुल्म कैसे होने दिया। गर मैंने तोबा की थी, साक़ी को क्या हुआ था।'

खैर, जो होना था हो चुका, अब जो कुछ है उसी से काम लेना होगा। पर बचे-खुचे मसाले का इकट्ठा करना भी तो 'बाबल के बुर्ज' की ईंटों के जमा करने की तरह कुछ आसान काम नहीं है। मैं जब हरदुआगंज जाता हूँ तो हमेशा यही इरादा करके जाता हूँ—इस बार ज़रूर कविजी की कविताओं का संग्रह करूँगा, पर दुर्भाग्य से कभी ऐसा नहीं हो पाता। कुछ मेरा प्रमाद, कुछ औरों की लापरवाही कुछ नहीं करने देती। डर है कि कहीं इरादा भी 'कलित कलेवर' की गति को न प्राप्त हो जाय।"

—पद्मसिंह शर्मा

आचार्य प्रवर साहित्य-महारथी स्व० श्री पं० पद्मसिंह शर्मा के उपर्युक्त शब्दों से स्पष्ट प्रतीत होता है कि उनके हृदय में पूज्य पिताजी (शङ्करजी) की जीवनी लिखने और उनकी कविताओं का संग्रह करने के लिए कितनी बलवती इच्छा और कैसी उत्कट

अभिलाषा थी । 'कलित कलेवर' पिताजी का वह कविताग्रन्थ था जिसमें उन्होंने रीतिकालीन कवियों की भाँति नख-शिख-वर्णन किया था । यह ग्रन्थ सम्पादकजी (पं० पद्मसिंह शर्मा) तथा अन्य साहित्यिक विद्वानों को अत्यन्त प्रिय था, परन्तु इसे पिताजी ने स्वयं नष्ट कर डाला, क्योंकि वे बहुत पहले लिखी हुई, अपनी इन शृङ्गार सम्बन्धिनी कविताओं को प्रकाशित नहीं कराना चाहते थे। सम्पादकजी ने ऊपर की पंक्तियों में इसी घटना की ओर संकेत किया है।

'बाबल के बुर्ज' की कुछेक ईंटें तो ज्यों त्यों कर भाई सतीशङ्कर शर्मा और भाई यज्ञदत्त शर्मा ने जमा करलीं परन्तु इनके आधार पर रचना करने वाले सम्पादकजी पिताजी से कई मास पहले ही चल बसे ! वे न पिताजी की जीवनी लिख पाये और न उनकी कविता पर 'विस्तृत समालोचनात्मक और तुलनात्मक निबन्ध' ही लिख सके ! दोनों शुभ संकल्प उनके साथ ही चले गये !

सम्पादकजी पिताजी की जीवनी लिखने का दृढ़ निश्चय बहुत पहले कर चुके थे, और इसी लिए वे उनके द्वारा सुरक्षित साहित्य-महारथियों की लगभग छह सौ चिट्ठियाँ अपने साथ नायकनगला ले गए थे। इन चिट्ठियों में ढाई सौ से अधिक चिट्ठियाँ तो आचार्य द्विवेदीजी की ही थीं। दो चिट्ठियाँ भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की शीशे में मढ़ी हुई थीं। राजा लक्ष्मणसिंहजी, राजा रामपालसिंहजी (कालाकाँकर), पं० मदनमोहन मालवीय (जब वे कालाकाँकर से निकलने वाले हिन्दुस्तान के सम्पादक थे), पं० प्रतापनारायण मिश्र, राजा कमलानन्दसिंह 'सरोज', डाक्टर काशीप्रसाद जायसवाल, राय देवीप्रसाद पूर्ण, पं० अम्बिकादत्त व्यास, पं० कुन्दनलाल शर्मा (कवि-व-चित्रकार-सम्पादक), पं० सुधाकर द्विवेदी, पं० श्रीधर पाठक, श्री रत्नाकरजी, बा० बालमुकुन्द गुप्त, पं० रुद्रदत्त शर्मा, सैयद अमीर अली मीर, पं० किशोरीलाल गोस्वामी, प्रो० रामदास गौड़, पं० रामजीलाल शर्मा, पं० माधवप्रसाद सप्रे, पं० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, कविवर सनेही, पं० नारायणप्रसाद 'बेताब' आदि अनेक विद्वानों के महत्वपूर्ण पत्र उस ढेर में थे। महाकवि अकबर के भी कुछ पत्र थे । बहुत खोजने पर भी ये पत्र नहीं मिले, न जाने कहाँ गए। ये पत्र होते तो निःसन्देह पिताजी की विस्तृत जीवनी लिखने में बड़ी सहायता मिलती।

इस संग्रह का 'शङ्कर-सर्वस्व' नाम पिताजी ने ही रक्खा था। सम्पादकजी ने 'शङ्कर-सूक्ति-संग्रह' नाम सोचा था। पिताजी के रक्खे नाम से ही पुस्तक प्रकाशित की जाती है। सम्भव हुआ तो कभी इस संग्रह का दूसरा भाग भी प्रकाशित हो सकेगा। पिताजी ने 'शङ्कर-सतसई' भी लिखी थी, जो एक दुर्घटना-वश भस्मसात् होगई। ये दोहे बड़े उत्कृष्ट और भावपूर्ण थे, इनके नष्ट हो जाने का पिताजी को अन्त तक बड़ा दुःख रहा।

मेरे दो ज्येष्ठ भाई--उमाशङ्करजी तथा रविशङ्करजी और एकमात्र बहन महाविद्या तीनों का देहान्त डेढ़ वर्ष के भीतर हुआ। मेरे एक और बड़े भाई दादा राधावल्लभजी भी, जिनको पिताजी ने पुत्र की तरह ही पाला था, उन्हीं दिनों चल बसे! सम्पादकजी का शरीर-पात भी उसी समय हुआ। इन सब मृत्युओं ने पिताजी का कलेजा हिला दिया और वे प्रत्येक क्षण मृत्यु का आवाहन करने लगे। देहान्त के साढ़े चार मास पहले उन्होंने अपनी जन्म-जयन्ती के दिन भली-चंगी हालत में कहा था--

"आयु तिहत्तर हायन भोगी,
वर्षगाँठ अब और न होगी।"

ऐसा ही हुआ। जन्म-जयन्ती (चैत्र शु० ५, स० १९८९ वि०) के ठीक साढ़ेचार महीने बाद, भाद्रपद कृष्णा ५, रविवार संवत् १९८९ वि० को पिताजी परलोक पधारे और फिर उनकी वर्षगाँठ न हुई!

'शङ्कर-सर्वस्व' के प्रारम्भ में 'विशाल भारत' के यशस्वी संपादक बन्धुवर श्रीराम शर्मा और प्रकाण्ड पण्डित साहित्याचार्य भाई श्री हरिदत्त शर्मा शास्त्री, नवतीर्थ, एम० ए० ने कुछ शब्द लिखे हैं। इसके लिए उन्हें धन्यवाद देने की रस्म अदा करना एक प्रकार से परायापन होगा। भाई सतीशङ्कर शर्मा और भाई यज्ञदत्त शर्मा के लिए तो कहा ही क्या जाय। उनका जो कर्त्तव्य था वह उन्होंने पालन किया। चि० विद्याशङ्कर शर्मा, एम० ए० और चि० विजयशङ्कर शर्मा ने अपने पितामह और प्रपितामह के इस श्राद्ध में अच्छा सहयोग दिया है। भाई रामस्वरूप शास्त्री काव्यतीर्थ को पिताजी की कितनी ही कविताएँ कण्ठाग्र थीं, जो इस संग्रह में सम्मिलित करली गई हैं। शास्त्रीजी मेरे अभिन्न मित्र और पिताजी के अनन्य भक्त हैं, उन्हें भी धन्यवाद क्यों दिया जाय।

पिताजी का देहान्त हुए १६ वर्ष हो गए और मुझे अब इतने दिनों बाद उनके श्राद्ध करने का अवसर मिला है। महाकवि मैथिलीशरण गुप्त के संकेतानुसार मैं 'शङ्कर-सर्वस्व'-प्रकाशन को पिताजी का श्राद्ध ही समझता हूँ, क्योंकि यह कार्य श्रद्धा से किया गया है, और इसके करने की बहुत दिनों से अभिलाषा थी।

आगरा के सुप्रसिद्ध पुस्तक-प्रकाशक श्री गयाप्रसाद एण्ड संस का मैं बड़ा आभारी हूं, जिन्होंने इस पुस्तक को प्रकाशित कर मुझे पिताजी का 'साहित्यिक श्राद्ध' करने में सहायता और सुविधा प्रदान की। इस फर्म के श्री रामप्रसाद अग्रवाल, बी० ए०, एल-एल० बी० और श्री जगदीश प्रसाद अग्रवाल, एम० ए०, बी० कॉम०, 'शङ्कर-सर्वस्व' के प्रकाशन में इतनी रुचि और उत्सुकता न दिखाते तो सम्भव है, यह महत्वपूर्ण कार्य अभी न हो पाता।

शङ्कर-सदन,
आगरा
गुरु-पूर्णिमा, २००८ वि०

हरिशङ्कर शर्मा

महाकवि शङ्कर

महाकवि नाथूराम शङ्कर शर्मा 'शङ्कर' हिन्दी के उन प्रतिभाशाली वश्यवाक् कवियों में से थे, जिन्होंने अपना सारा जीवन सरस्वती की आराधना और कविता-कला की साधना में लगा दिया। उनकी साहित्यिक कविताएँ सहृदयों के हृदय का हार बनी हुई हैं। शङ्करजी ने देश-भक्ति और देश-दशा पर अब से प्रायः पौन शती पूर्व वे कविताएँ लिखीं, जिन्हें आज के कवि अपनी 'उपज' या 'प्रगति-शील' कहकर पुराने कवियों की भर्त्सना किया करते हैं। समाज-सुधार-सम्बन्धी कविताएँ लिखने में तो शङ्करजी बड़े ही सिद्धहस्त थे। उनकी दार्शनिक कविताएँ पढ़कर तो दार्शनिक विद्वान् भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगते हैं। जिस समय आज के प्रगतिशील कवियों का अस्तित्व भी न था, उस समय शङ्करजी ने देश और समाज को उठाने वाली क्रान्तिकारिणी अनेक कविताएँ लिखीं थीं।

अब से साठ-सत्तर वर्ष पूर्व हिन्दी में समस्या-पूर्तियों का जोर था। तत्कालीन बड़े-बड़े कवि समस्या-पूर्तियाँ करते थे। इनमें आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी, राजा कमलानन्दसिंह 'सरोज', महा-महोपाध्याय पं० सुधाकर द्विवेदी, प० बालकृष्ण भट्ट पं० श्रीधर पाठक, राय देवीप्रसाद पूर्ण, पं० अम्बिकादत्त व्यास, विद्यावारिधि ज्वालाप्रसाद मिश्र, गोस्वामी किशोरीलालजी आदि मुख्य थे। स्वर्गीय राजा लक्ष्मणसिंह प्रायः निर्णायक होते थे। शङ्करजी भी पूर्तिकार थे। उनकी पूर्तियाँ सैकड़ों पूर्तियों में श्रेष्ठ समझी जाती थीं। उस समय की कवि-मण्डली ने उन्हें 'कविराज', 'भारत-प्रज्ञेन्दु', 'साहित्य-सुधाधर', 'साहित्य-सरस्वती', 'कवि-सम्राट्' इत्यादि लगभग दो दर्जन उपाधियाँ देकर सम्मानित किया था। 'भारत-प्रज्ञेन्दु' की उपाधि तो स्वयं स्वर्गीय राजा लक्ष्मणसिंह ने दी थी। शङ्करजी ने सोने-चाँदी के बीसियों पदक प्राप्त किये थे। घड़ी, पगड़ी, दुशाले आदि भी कितनी ही बार मिले थे। शान यह रही कि शङ्करजी घर से निकल कर शायद ही कभी बाहर गए हों। आचार्य पद्मसिंह शर्मा के शब्दों में वे 'प्रवास-भीरु' थे। उन दिनों घड़ी, पगड़ी, दुशाले और पदक-पदवियों के पुरस्कारों का बड़ा महत्व था।

इनके प्राप्त करने में शङ्करजी सब से आगे रहे। समस्या-पूर्ति करना उनकी बहुत बड़ी विशेषता थी। वे मिनटों में अच्छी से अच्छी पूर्ति कर लेते थे।

सम्भवतः १९०४-५ ई० की बात है, आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी 'सरस्वती' का सम्पादन-भार सँभाल चुके थे। 'सरस्वती' खड़ी बोली की कविताएँ निकलनी शुरू हुईं। उन्हें पढ़कर सुप्रसिद्ध हिन्दी-प्रेमी अङ्गरेज विद्वान् जार्ज ग्रियर्सन ने पूज्य द्विवेदीजी को लिखा—"सरस्वती में प्रकाशित कविताएँ रूखी-सूखी और फीकी होती हैं। क्या खड़ी बोली में सरसता नहीं आ सकती?" द्विवेदीजी महाराज खड़ी बोली के प्रबल समर्थक थे। उन्हें यह खरी बात बहुत खटकी। आपने तुरन्त शङ्करजी को लिखा—'देखिये, खड़ी बोली की कविताओं के सम्बन्ध में एक विदेशी विद्वान् क्या कहता है। अब 'सरस्वती' की लाज आपके हाथ है।' साथ ही द्विवेदीजी ने ग्रियर्सन साहब की उक्त अङ्गरेजी-चिट्ठी भी शङ्करजी के पास भेजदी। शङ्करजी व्रजभाषा के कवि थे, खड़ी बोली में उस समय तक उन्होंने बहुत थोड़ी चीजें लिखी थीं। जितनी लिखी थीं वे द्विवेदीजी को बहुत पसन्द थीं। सम्भवतः इसी आधार पर उन्होंने शङ्करजी से 'सरस्वती की लाज' रखने की अपील की। शङ्करजी ने 'सरस्वती' में लिखना शुरू किया। 'हमारा अधःपतन', 'सम्मुखोद्‌गार', 'वसन्त-सेना', 'केरल की तारा', 'अविद्यानन्द का व्याख्यान', 'पञ्च-पुकार' शीर्षक कविताएँ प्रकाशित हुईं। दस-बारह महीने बाद ग्रियर्सन साहब ने द्विवेदीजी को फिर लिखा—'ये शङ्करजी कौन हैं? इनकी कविताएँ पढ़कर मैंने अपनी सम्मति बदल ली है, और अब मैं निश्चयपूर्वक कह सकता हूँ कि खड़ी बोली में भी सुन्दर और सरस कविताएँ हो सकती हैं।' द्विवेदीजी महाराज को ग्रियर्सन साहब की इस चिट्ठी से बड़ा सन्तोष हुआ और उन्होंने उनकी यह चिट्ठी भी शङ्करजी के पास भेजदी।

अब से प्रायः साठ वर्ष पूर्व फतेहगढ़ से "कवि-व-चित्रकार" नामक लीथो में छपा एक मासिक पत्र निकलता था। उसके सम्पादक थे पं० कुन्दनलाल शर्मा। शर्माजी प्रसिद्ध हिन्दी-प्रेमी अँगरेज कलक्टर ग्राउस के हेड क्लर्क थे। इन्हीं की प्रेरणा और सहायता से 'कवि-व-चित्रकार' प्रकाशित होता था। शङ्करजी भी इस पत्र में लिखते थे। एक बार फतेहगढ़ में अखिल भारतीय कवि-सम्मेलन

हुआ, चुने हुए कुछ कवि आमन्त्रित किये गए। इस सम्मेलन का उद्देश्य अब की तरह कविता पाठ नहीं, समस्या-पूर्ति करना था। आमन्त्रित सब कवि जिनकी संख्या साठ-सत्तर के लगभग थी, एक विशाल हाल में बिठाए गए—उसी प्रकार जिस प्रकार परीक्षा-भवन में परीक्षार्थी बैठते हैं। स्वयं ग्राउस साहब और जिले के अन्य अधिकारी तथा प्रतिष्ठित विद्वान् भी मौजूद थे। कवियों को समस्या दीगई और कहा गया कि वे उसकी पूर्ति आध घंटे में करें। परन्तु शङ्करजी ने सिर्फ पन्द्रह मिनट में समस्या-पूर्ति करके रखदी और वही सर्वश्रेष्ठ सिद्ध हुई। उस समय की प्रथानुसार पूर्ति के उपलक्ष्य में पुरस्कार-स्वरूप शङ्करजी को एक बहुमूल्य घड़ी प्रदान की गई। कमरे में किसी अँगरेज़ का बनाया एक बहुत बढ़िया तैल चित्र टँगा हुआ था, उसी को लक्ष्य करके शङ्करजी ने पूर्ति की थी। पूर्ति पढ़कर ग्राउस साहब ने हँसते हुए कहा—मालूम होता है, शङ्करजी को यह तैल चित्र बहुत पसन्द है, अतः वह उन्हीं को भेंट कर दिया जाय। शङ्करजी उस चित्र को ले आए और वह उनकी बैठक में वर्षों टँगा रहा। उस समय उस चित्र का मूल्य ढाई सौ रुपये बताया गया था।

शङ्करजी के सम्बन्ध में देश के विद्वानों की बड़ी ऊँची सम्मतियाँ रही हैं। आचार्य श्री पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी ने तो लगभग ढाई सौ पत्र उन्हें लिखे थे, कितनों ही में तो शङ्करजी की कवि-प्रतिभा की भूरि-भूरि प्रशंसा की गई थी। शङ्करजी के सम्बन्ध में आचार्य द्विवेदी जी ने लिखा था—

रसिक-कुमुद-वन कलाधर, प्रतिभा-पारावार,
कविता-कानन-केसरी सहृदयता-आगार।

द्विवेदीजी महाराज की जिस लेखनी ने महाकवि कालिदास और बड़े-बड़े साहित्य-महारथियों को भी नहीं बख्शा, वही शङ्करजी को 'कविता-कानन-केसरी' और 'प्रतिभा-पारावार' (समुद्र) जैसी उपाधियों से अलङ्कृत कर उनकी सराहना कर रही है, यह कुछ साधारण बात नहीं है।

दिल्ली प्रान्तीय हिन्दी साहित्य-सम्मेलन के सभापति की हैसियत से सुप्रसिद्ध औपन्यासिक सम्राट् श्रीप्रेमचन्द्जी ने शङ्करजी के सम्बन्ध में कहा था—

'मगर यह नौहा अभी समाप्त नहीं हुआ, तीसरा मिसरा कविरत्न शङ्करजी का निर्वाण है, जिसके शोक के आंसू अभी हमारी आँखों से नहीं सूखने पाये। शायद कोई जमाना आये कि हरदुआगंज हमारा तीर्थ-स्थान बन जाय। इसमें सन्देह नहीं कि शङ्करजी आशु कवि थे और उनकी कविता का वही उद्देश्य था जो सुधारक के भाषण का होता है। पर भारतीय विनम्रता उनमें इतनी थी कि महाकवि होते हुए भी अपने को कवि कहने में भी उन्हें संकोच होता था। न नाम की भूख थी: न कीर्ति की प्यास। अपनी कुटिया में बैठे हुए जो कुछ लिखते थे, स्वान्तः सुखाय, केवल अपने हृदय के सन्तोष के लिये।'

स्वर्गीय प्रेमचन्दजी ने शङ्करजी को 'महाकवि' बताते हुए यहाँ तक कहा है कि शायद कोई जमाना आवे कि हरदुआगंज—शंकरजी की जन्म-भूमि—हमारा तीर्थ-स्थान बन जाय।

साहित्याचार्य पं० पद्मसिंह शर्मा, आचार्य श्री पं० शालग्राम शास्त्री, विद्वद्वर डाक्टर काशीप्रसाद जायसवाल, सम्पादकाचार्य श्रीगणेशशंकर विद्यार्थी, महामहोपाध्याय पं० गौरीशङ्कर हीराचन्द ओझा, महामहोपाध्याय राजगुरु पं० गोपीनाथ शास्त्री, महामहोपाध्याय प० आर्यमुनिजी, प्रसिद्ध विद्वान् प्रो० रामदास गौड़, पं० रामजीलाल शर्मा आदि तो महाकवि शंकर की कविताओं पर मुग्ध थे उन्हें उनकी कविता में सदैव नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा और मौलिकता के ही दर्शन होते थे।

यहाँ हम गुरुवर श्री काशीनाथजी महाराज की सम्मति उद्धृत करने का लोभ संवरण नहीं कर सकते। गुरुवर काशीनाथजी संस्कृत के सूर्य थे। वे अपने युग में काशी के सर्व-श्रेष्ठ पंडित समझे जाते थे। उनके विद्वान् शिष्यों की संख्या सैकड़ों है। आचार्य पद्मसिंह शर्मा और साहित्याचार्य शालग्राम शास्त्री भी उन्हीं के प्रधान शिष्य थे। व्याकरण, काव्य, दर्शन, पुराण, इतिहास, साहित्य सभी के वे प्रकाण्ड पण्डित और उद्भट विद्वान् थे। गुरुजी पक्के सनातन धर्मावलम्बी और महामना मालवीयजी महाराज के परम श्रद्धेय थे। आपने शङ्करजी की कविताओं पर प्रसन्न होकर निम्नलिखित आशीर्वाद भेजा था—

शंकरं प्रणमन् काशीनाथोऽहं द्विजसत्तमः
काव्य-दर्शनसंजात-चमत्कारो निवेदये।

नूनं 'सरस्वती' नाथूरामशंकर पंडितः,
अन्यथैदृश पद्यानि को निर्मिमीत मानवः।

गुरुवर काशीनाथजी महाराज कहते हैं—शङ्करजी निःसन्देह 'सरस्वती' हैं। अन्यथा मनुष्य तो इस प्रकार की कविता कर ही नहीं सकता। शङ्कर 'मानव' नहीं प्रत्युत 'सरस्वती' के साक्षात अवतार हैं।

शङ्करजी के सम्बन्ध में युग के ज्वलन्त नक्षत्र कविवर श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' की नीचे लिखी पंक्तियां भी पढ़ने योग्य हैं। नवीनजी अपने एक मुद्रित भाषण में, जो एक विराट् कवि-सम्मेलन के सभापति की हैसियत से दिया था, कहते हैं—

"स्वर्गनिवासी प० नाथूराम शङ्कर शर्मा हमारे साहित्य के उन निर्मात्ताओं में थे, जिन्होंने हमारी साहित्यिक गतानुगति के आडम्बर को छिन्न-विछिन्न करने की दशा में पहले पहल क़दम उठाया था। वे शब्दों के स्वामी, भाषा के अधीश्वर, मुहाविरों के सिरजनहार और साहित्य के अखाड़े के अक्खड़ पहलवान थे। पूजार्ह शङ्करजी में शब्द-निर्माण की क्षमता असाधारण रूप से विद्यमान थी। जिस वक्त वे किचकिचा कर लिखते थे, तो उनके शब्द ऐसे होते थे कि पढ़ते-पढ़ते पाठक स्वयम् दाँत किटकिटाने लगता था। जिस तरह स्वर्गीय अकबर इलाहाबादी अपने रंग के अनूठे कवि हो गये हैं, उसी तरह कविवर शङ्करजी का रंग भी निराला है और उन्हें अभी तक किसी ने नहीं पाया है। शङ्करजी ने उस समय लिखना शुरू किया जबकि हम में से बहुतेरे साहित्य-सेवी ककहरे का अभ्यास कर रहे थे। उस समय देश में एक नव विधान की प्राणोदना देश की आत्मा को अनुप्राणित कर रही थी। महर्षि स्वामी दयानन्द की सागर गम्भीर वाणी ने कौम के एक बड़े तबक़े को विचलित और आन्दोलित कर दिया था। सामाजिक हृदय एक नवीन भावना से कम्पित हो रहा था। राष्ट्र के उस नेत्रोन्मीलन के युग में, प्रभात की उस बेला में, प्रथम रवि-रश्मि-स्नात उस घटिका में जिन विहगों ने अपने विभासे, भैरव, भैरवी और आसावरी के नव जीवनप्रद स्वरों में हमें उद्बोधन के, जागरण के विनाश और नव निर्माण के गीत सुनाये उनमें पूजनीय स्वर्गीय प० नाथूराम शङ्कर शर्मा भी थे। उनकी दिवंगत आत्मा हमें सत् साहित्य-निर्माण की ओर प्रेरित करती रहे—यही हमारी हार्दिक प्रार्थना है।"

महाकवि शङ्कर छन्दः शास्त्र के उद्भट विद्वान् थे । वे अपनी कविता के मात्रिक छन्दों में भी बराबर वर्ण रखते थे । यह बात जितनी कहने, सुनने और लिखने में सरल है उतनी ही करने में कठिन । हिन्दी काव्य-संसार में आजतक किसी ने भी इस कड़े नियम का निर्वाह नहीं किया परन्तु शङ्करजी ने अपने पूरे काव्य-ग्रन्थ 'अनुराग रत्न' (प्रथम संस्करण) में यह नियम पूरी तरह निभाया है । कवि लोग जान सकते हैं कि इस नियम का निर्वाह खाँड़े की धार पर चलने या लोहे के चने चबाने के समान है। सुप्रसिद्ध नाटककार श्री प० नारायणप्रसाद 'बेताब' बड़े कवि और शायर भी थे। पिंगलशास्त्र के तो वे आचार्य ही माने जाते थे। बहुत दिन हुए बेताबजी ने 'पद्य-परीक्षा' नामक एक पुस्तक लिखी थी। इसमें अनेक कवियों की कविताओं को उन्होंने पिंगल की कसौटी पर कसा था । सब में कुछ न कुछ दोष दिखाई दिया परन्तु शङ्करजी की कविता इस कसौटी पर खरी उतरी । इस लिये उक्त पुस्तक का समर्पण बेताबजी ने शङ्करजी को ही किया और लिखा—

'समुद्र-मन्थन में अमृत, लक्ष्मी, कामधेनु इत्यादि निकले तो सब लेने को हो गये, जब विष निकला तो 'शङ्कर' के सिवा उसे ग्रहण करने के लिये कोई सामर्थ्यवान सिद्ध न हुआ । साहित्य-सागर से भी अनेक ग्रन्थ-रत्न निकल रहे हैं, सादर समर्पण हो रहे हैं। परन्तु इस ग्रन्थ पद्य-परीक्षा नहीं, गरल-ग्रन्थि के ग्रहण करने के लिये कौन समर्थ हो सकता है । इसलिये कविता-कामिनी कान्त शङ्कर कवि, मैं इन विषमय पन्नों को बला की तरह आपके गले डालता हूं।

न थी चिन्ता जो होती भेंट कुछ कोमल मधुर हलकी,
झिलेगी किससे शङ्कर के सिवा गर्मी हलाहल की।

लगभग ४५ वर्ष हुए, ज्वालापुर (हरिद्वार) में, एक बहुत बड़ी विद्वत्सभा हुई थी। श्री पं० पद्मसिंह शर्मा उसके प्रधान मन्त्री थे। उस सभा के विद्वानो ने शङ्करजी की काव्य-साधना के उपलक्ष्य में उन्हें 'कविता-कामिनी-कान्त' की उपाधि दी थी । यह उपाधि एक स्वर्णपदक पर इस प्रकार अङ्कित है—

कविता-कामिनी-कान्तः श्री नाथूराम शङ्करः
ज्वालापुरार्य विदुषां सभया सान्मतेतराम्।

शारदा पीठाधीश्वर जगद्गुरु श्री शङ्कराचार्य महाराज महाकवि शङ्कर की कविता के बड़े प्रेमी थे। आपने शङ्करजी को अपनी पीठ की ओर से 'कवि-शिरोमणि' की उपाधि प्रदान की थी।

सुप्रसिद्ध कलाकोविद और विद्वान् श्रीरायकृष्णदासजी ने हमें बताया कि स्वर्गीय श्रीजयशङ्कर प्रसाद कविवर शङ्कर के छन्द सम्बन्धी पांडित्य के बड़े प्रशंसक और उनकी शैली के अनुयायी थे। कविवर निरालाजी और दिनकरजी ने शङ्करजी के प्रति कई बार श्रद्धाञ्जलियाँ अर्पित की हैं। अन्य महाकवियों ने भी उन्हें सराहा है।

महाकवि शङ्कर का हृदय देशभक्ति से भरपूर था। उन्होंने इस विषय पर जो कविताएँ लिखी हैं, उनसे यह बात स्पष्ट जानी जा सकती है। वे सम्प्रदायवाद के कट्टर विरोधी थे। उनकी राय में वैदिक धर्म ही मानव-धर्म था और उसीसे सब का कल्याण सम्भव था। २६ वर्ष की आयु में शङ्करजी ने निम्न- लिखित सवैया लिखा था :—

बर वैदिक बोध बिलाय गयो,
छल के बल की छबि छूट परी,
पुरुसारथ,-साहस, मेल मिटे,
मत-पन्थन के मिस फूट परी,
अधिकार भयो परदेसिन को,
धन-धाम-धरा पर लूट परी,
कवि शङ्कर आरत भारत पै,
भय-भूरि अचानक टूट परी!

उपर्युक्त सवैया के शब्द-शब्द में कवि शंकर की देश के लिये तड़प भरी हुई है। उनका अन्तरात्मा छल-छद्म और मत-पन्थ-जन्य अनेकता और परदेशियों द्वारा धन, धाम एवम् धरा को लुटते देखकर चीख उठता है। पाठक देखें कि छब्बीस वर्ष की आयु में नवयुवक शङ्कर को भारतीय पराधीनता कितनी असह्य और अपमानजनक प्रतीत हो रही है। इन्हीं दिनों शंकरजी ने "कहा मेरा सब करते हैं" शीर्षक एक हास्यरस की कविता लिखी थी। इसमें देशोन्नति सम्बन्धी अन्य अनेक बातों के साथ यह भी था—

भोजन भेज विदेसन को,
घर - भरें कबाड़ मँगाय,

था दरिद्रदाता उद्यम की
सम्पति कहाँ समाय।
गरीबों का धन हरते हैं,
कहा मेरा सब करते हैं।

इसी कविता में शङ्करजी ने विज्ञापनबाजों को फटकारते हुए लिखा है—

बेल्यूपेबिल के बिकवैया,
मन में राखें आँट,
घर बैठे लोगन को लूटें,
झूठे नोटिस बाँट,
बिसासी गाँठ कतरते हैं,
कहा मेरा सब करते हैं।

इस समय पढ़ने-सुनने में ये बातें बहुत साधारण-सी लगती हैं, परन्तु इनका महत्व यही है कि ये शङ्करजी द्वारा अब से प्रायः छासठ-सड़सठ वर्ष पूर्व लिखी गई हैं, जबकि इस ओर बहुत ही कम ध्यान दिया जाता था।

१९०७ ई० में बंग-भंग हुआ। सारे देश में असन्तोष की अग्नि धधक उठी! अनेक क्रान्तिकारी पैदा होगए। शङ्करजी ही उस युग के उग्र प्रभाव से कैसे अछूते रह सकते थे। इसी समय से उन्होंने स्वदेशी वस्त्र पहनना शुरू किया और जीवन-भर कभी विदेशी वस्त्र नहीं पहना। इन्हीं दिनों लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक को देशभक्ति के अपराध में कारागार दण्ड दिया गया था। उससे दुःखित होकर शङ्करजी ने नीचे लिखा छन्द रचा था। यह छन्द 'बरस की' समस्या पूर्ति में था और लोकमान्य के 'मराठी' केसरी में भी उद्धृत हुआ था—

शोक महासागर में जीवन-जहाज आज
भारत का डूबेगा रही न बात बस की,
धारती है भार तीस कोटि मन्दभागियों का
हाय-हाय मेदिनी तू नेक भी न धसकी,
टूट गया शङ्कर अखण्ड उपदेश-दण्ड,
दिव्य देशभक्ति की पताका आज खसकी,

तिलक-वियोग-विष बरस रहा हैं अब
सुकवि न चरचा करेंगे नव रस की।

लोकमान्य तिलक के देहावसान पर भी शङ्करजी ने बड़े सुन्दर भाव व्यक्त किये हैं, देखिये—

बानिक बिगाड़ा पृथ्वीराज ने प्रभुत्व त्याग
स्रोत फिर शङ्कर सुधार का बहा नहीं।
पापी जयचन्द की कुचाल का कुयोग पाय,
संकट सहे था पर इतना सहा नहीं।
पूरे परतन्त्र को स्वराज्य-दान देगा कौन,
गोरों ने दया का अधिकारी भी कहा नहीं,
मुकुट-विहीन जिसे देखते हैं आज उस
भारत के भाल पै तिलक भी रहा नहीं।

× × × ×

इसी प्रकार कुछ पंक्तियाँ आपने और भी लिखी थीं—

अरे रँग पड़ गया पीला कलेवर लाल तेरे का,
नहीं कुल-केसरी गरजे किसी भूपाल तेरे का।
उजेला अब नहीं होता मुकुट रवि बाल तेरे का,
न छोड़ा हाय, ब्रह्मा ने तिलक भी भाल तेरे का,
डरे मत इस अधोगति के प्रपञ्चों को पजारेंगे,
भलाई को न भूलेंगे, तुझे भारत सुधारेंगे!

शङ्करजी यों तो सभी नेताओं के भक्त रहे थे, परन्तु लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक और भारत-केसरी लाला लाजपतराय से वे बहुत प्रभावित थे। असहयोग-आन्दोलन छिड़ने पर वे महात्मा गाँधी के भी बड़े भक्त बन गए, एक बार गाँधीजी ने ऋषि दयानन्द को 'असहिष्णु' लिख दिया था। इस पर शङ्करजी गाँधीजी से असन्तुष्ट हुए और उनके विरुद्ध उन्होंने एक कवित्त भी लिखा, जिसके अनुकूल-प्रतिकूल काफी चर्चा हुई, परन्तु शङ्करजी के हृदय में महात्मा गाँधी के प्रति श्रद्धा के भाव जरा भी कम न हुए और वे उन्हें निरन्तर अपना गुरु तथा श्रद्धेय मानते रहे। १९२९ ई० में जब गाँधीजी अलीगढ़ पहुँचे तो शङ्करजी की प्रेरणा तथा प्रार्थना पर वे हरदुआगंज भी पधारे थे। शङ्करजी महात्माजी के चरणों में

नतमस्तक हुए और महात्माजी भी उनसे मिलकर प्रसन्न हुए। शङ्करजी ने बड़ी भीड़ में खड़े होकर अपनी ओजस्विनी कविता द्वारा महात्मा गाँधी का हार्दिक स्वागत किया और उन्हें थैली भेंट की। यह प्रथम और अन्तिम अवसर था, जब शङ्करजी ने सभा में खड़े होकर किसी व्यक्ति की वन्दना की हो। प्रचुर प्रलोभन दिये जाने पर भी उन्होंने कभी किसी धनी मानी या नरेश की प्रशंसा के गीत नहीं गाए। उस समय शङ्करजी ने यह दोहा भी पढ़ा था—

श्री गाँधी गुरु का फले असहयोगमय मन्त्र,
भारत लक्ष्मीनाथ हो पाय स्वराज्य स्वतन्त्र।

महात्मा गाँधी के आदेशानुसार रौलट बिल के विरोध में जो आन्दोलन हुआ, उसका नेतृत्व शङ्करजी ने अपने क्षेत्र में बड़ी योग्यता और निर्भयता से किया। हरदुआगंज जैसे छोटे नगर में सहस्रों ग्राम-वासियों को एकत्र कर बड़े-बड़े जुलूस निकाले, विराट् सभाएँ कीं और उष्णोत्साह पूर्ण आग उगलने वाले भाषण दिये। अलीगढ़ में और अलीगढ़ से पाँच-पाँच मील तक सभा-बन्दी की राजाज्ञा हुई तो हरदुआगंज ही समस्त राजनैतिक हलचलों का केन्द्र बन गया क्योंकि वह अलीगढ़ से सात मील दूर है। शङ्करजी के कारण जनता में काफ़ी निर्भयता और राजनैतिक चेतना फैली।

असहयोग-आन्दोलन के समय शङ्करजी ने कितनी ही राष्ट्रिय कविताएँ लिखीं, उस समय वे जो कुछ लिखते उसी रंग में लिखते थे। नौकरशाही को लक्ष्य में रखकर आपने "अटकत हैं" समस्या की कैसी सुन्दर पूर्ति की है--

नौकरों की शाही सभ्यता का गला काटती हैं,
गाँधी के सँगाती अँखियों में खटकत हैं।
भारत को लूट कूटनीति की उजाड़ रही,
न्याय के भिखारी ठौर-ठौर भटकत हैं।
जेलों में स्वदेश-भक्त हिंसाहीन सज्जनों को—
पेटपाल[1] पातकी पिशाच पटकत हैं।
कौन पै पुकारें अब 'शङ्कर' बचाले तुही,
गोरे और गोरों के गुलाम अटकत हैं।

दूसरी पूर्ति में आपने उस समय की पुलिस को फटकारा था, देखिये कैसी करारी मार है,—उस ज़माने में पुलिस की इस प्रकार खरी और कड़ी आलोचना करना बड़े साहस का काम था।

गोरों के गुलाम अनुयायी काले हाकिमों के
गोल बाँध गुण्डे ललमुण्डे मटकत हैं।
झूठा बनते हैं, जान-माल को रखाने वाले,
कौन मानता है सही, साँचे हटकत हैं।
घेर-घेर लाते घूंस खाते हैं, घसीटते हैं,
लोहू जनता का गटागट्ट गटकत हैं।
पाप करते हैं डरते हैं नहीं शङ्कर से,
भाई, ये हमारे हम ही से अटकत हैं।

शङ्करजी बड़े निर्भय थे। आर्यसमाजी होने के कारण उन्हें बड़ी बड़ी आर्थिक हानियाँ सहनी पड़ीं, बरसों बिरादरी से बहिष्कृत रहे, तीखे वाग्बाणों का लक्ष्य बनना पड़ा, परन्तु वे अपने निश्चित पथ से बाल बराबर भी विचलित नहीं हुए। अन्त में सब नत मस्तक हो शङ्करजी के भक्त और मित्र बन गए। इसी सम्बन्ध में १९०६-७ की एक घटना का उल्लेख कर देना अप्रासंगिक न होगा। क्रान्तिकारी मिस्टर एच० एल० वर्मा (श्री होतीलाल वर्मा) अलीगढ़ आर्यसमाज के वैदिक आश्रम में आकर ठहरे, और उन्होंने वहाँ के विद्यार्थियों में बम बनाने की विधि का प्रचार किया। छपा हुआ पर्चा भी बाँटा गया। उन्हीं दिनों लाला लाजपतराय का भी देश-निष्कासन हुआ था। वर्माजी और लालाजी दोनों ही आर्यसमाजी थे, अतः जिले के आर्यसमाजों और आर्यसमाजियों पर सरकार की कड़ी दृष्टि होना स्वाभाविक था। इस आपत्तिकाल में कितने ही आर्यसमाजी तो इस्तीफ़े देकर आर्यसमाज से अलग हो गए परन्तु शङ्करजी उस समय भी निर्भयतापूर्वक आर्यसमाज की सेवा करते रहे। इससे आर्यसमाजियों को बड़ा बल मिला।

महाकवि शङ्कर के सम्बन्ध में जो कुछ ऊपर लिखा गया है, उसका उद्देश्य उनकी प्रशंसा करना नहीं है। कवि या साहित्यकार की प्रशंसा तो उसकी रचनाओं से ही होती है। फिर स्वर्गीय आत्माओं के लिये तो प्रशंसा या अप्रशंसा कोई अर्थ ही नहीं रखती। इन पंक्तियों के लिखने से केवल यह प्रयोजन है कि जिस महाकवि ने इतनी महान् साहित्य साधना की, जिसकी काव्य-मर्मज्ञों में इतनी प्रतिष्ठा और श्रद्धा है, उसके सम्बन्ध में आधुनिक इतिहास लेखकों ने न्याय नहीं किया। वस्तुतः बात यह है कि प्रारम्भ

में जिन-जिन विद्वानों ने आधुनिक हिन्दी साहित्य के इतिहास की रूप-रेखा रची उन्होंने बड़ा श्लाघ्य काम किया, परन्तु यह काम बहुत जल्दी में किया गया। फिर इस पर विचार या अनुसन्धान करने के लिए सम्भवतः उन लेखकों को समय नहीं मिला। नक़लची इतिहास-लेखकों ने उन्हीं पुस्तकों के आधार पर बिना सोचे-समझे मक्खी पर मक्खी मार दी। 'शङ्करजी साम्प्रदायिक कवि थे, उनकी रचनाओं में आर्यसमाजीपन है, उनका दृष्टिकोण व्यापक नहीं'-इत्यादि। इन इतिहासकारों से कोई पूछे तो सही—आपने शङ्करजी की कौन-कौन-सी पुस्तकें और कविताएँ पढ़ी हैं। जगद्गुरु शङ्कराचार्य और संस्कृत के सूर्य गुरुवर काशीनाथजी तो शङ्करजी की कविता की इतनी प्रशंसा करते हैं, आचार्य द्विवेदीजी ने उन्हें 'प्रतिभा-पारावार' और 'कविता-कानन केसरी' कहा है, आचार्य पद्मसिंह शर्मा ने उन्हें 'कविता-कामिनी कान्त' की उपाधि दी। समझ में नहीं आता कि नक़लची इतिहास लेखक अपनी संकीर्ण सम्मति के लिये क्या आधार रखते हैं। सब इतिहासों में प्रायः एक से ही शब्द और एक-सी ही सम्मतियाँ, वही बँधी गत। मानो आर्यसमाजी होना कोई पाप है, आर्यसमाज के नामपर कुछ लिखने से साहित्य-हत्या हो जाती है। सूर और तुलसी, राम और कृष्ण अथवा पौराणिक गाथाओं पर भक्ति भाव भरी कविताएँ कर सकते हैं, परन्तु यदि शङ्करजी ने दयानन्द पर कुछ लिख दिया या वैदिक सिद्धान्तों पर कुछ कह दिया तो वे सम्प्रदायवादी होगये! कबीर कुप्रथाओं और मिथ्या भ्रमों का भण्डा फोड़ कर सकते हैं, यदि शङ्करजी ने ऐसी ही कोई बात लिखदी तो वे 'कवि' नहीं रहे, उपदेशक बन गये। कितने आश्चर्य और दुःख की बात है। नक़लची इतिहासकारों ने यह अन्याय शङ्करजी के साथ ही नहीं किया अपितु आचार्य पद्मसिंह शर्मा के सम्बन्ध में भी ऐसी ही क्षुद्रता से काम लिया है। उनकी लेखन-शैली और विद्वत्ता की भी उचित सराहना नहीं की हाँ, अपने इष्ट-मित्रों और शिष्य-भक्तों की 'वाह-वाह' करने में पूरी उदारता दिखाई है।

महाकवि शङ्कर और आचार्य पद्मसिंह शर्मा को हम समीप से जानते हैं, इसीलिए हम उनके सम्बन्ध में कह रहे हैं। इनके अतिरिक्त ऐसे और भी साहित्यकार हैं जिनकी इन इतिहास-लेखकों

ने उपेक्षा या अवहेलना करने में कोई कमी नहीं की। हम इसे इतिहास-लेखकों का अनौचित्य ही कहेंगे। हिन्दी में आधुनिक युग के सर्वाङ्ग सम्पन्न इतिहास की अत्यन्त आवश्यकता है—ऐसा इतिहास जिसमें साहित्यकारों का पूरा स्वरूप दिखाया जाय और उनके अच्छे, बुरे या साधारण होने का निर्णय स्वयम् पाठकों पर छोड़ा जाय।

आगरा, श्रीराम शर्मा,

१५ अगस्त, १९५१ [विशालभारत-सम्पादक]

शङ्करजी का काव्य

प्रखर प्रतिभा-सर्वस्व महाकवि शङ्कर के 'शङ्कर-सर्वस्व' का प्रथम भाग पाठकों के सामने है। यह सर्वस्व 'गीतावली', 'कविता कुञ्ज', 'समस्या-पूर्तियाँ', 'दोहावली' और 'विविध' इन पाँच भागों में विभक्त है। पाँचों भागों के विषय नाम से ही प्रकट हैं। कहीं-कहीं पर सर्वस्व-सम्पादक परमादरणीय श्री प० हरिशङ्कर शर्मा ने अपनी टिप्पणियाँ देकर कविता-रस-पिपासुओं को रसास्वादन में और भी साहाय्य प्रदान कर दिया है। महाकवि राजशेखर ने जो कविता के भेद दिखाए हैं, उनके अनुसार शङ्करजी की कविता को 'नारिकेल पाक' कहा जा सकता है। 'शङ्कर-सर्वस्व' की कविताएँ अधोलिखित वर्गों में विभक्त की जा सकती हैं—चिन्मयाराधन, सगुण-कीर्तन, विनय, गुरु-गरिमा, अन्योक्तियाँ, दार्शनिक विवेचन, शिक्षा, देश-दर्शन, अनुरागात्मक, वियोग-वर्णन, लोक-लीला, हास्य, दयानन्द, पर्व, विधवा-समस्या, बाल-विनोद, भारत देश, कृषक इत्यादि।

महाकवि शङ्कर की ये कविताएँ प्रत्येक रस और छन्द की उदाहरणीभूत हैं। आपने प्रायः सभी छन्दों और रसों का उपयोग किया है। शिखरिणी और द्रुत विलम्बित आदि संस्कृत-छन्दों में भी आपने कविता की है। शङ्करजी छन्दःशास्त्र के महान् मर्मज्ञ और काव्य-साहित्य के प्रकाण्ड पण्डित थे। आपकी कविता में अलङ्कारों का भी बड़ा सुन्दर और समीचीन प्रयोग हुआ है। इस 'सर्वस्व' के गूढ़ रहस्यों का यदि गम्भीरतापूर्वक पर्यालोचन किया जाय, तो उसमें कवि के व्यापक पाण्डित्य, विस्तृत अध्ययन, वश्यवाकत्व, बहुश्रुतत्व और वैदिक सिद्धान्तों के प्रति अप्रतिम आस्था का अनायास ही परिचय मिल जाता है। अनेक स्थलों पर महाकवि ने वेद, उपनिषद् और शास्त्रों के दुरूह भावों का सरल और सुन्दर विवेचन किया है। आपकी कविताओं के कितने ही स्थल तो प्राचीन संस्कृत कवियों की टक्कर के हैं। समस्या-पूर्तियों में तो महाकवि शङ्कर की प्रतिभा-प्रभा बड़े ही समुज्ज्वल और सुन्दर रूप में दिखाई देती है। आपकी कल्पना-वल्लरी पूर्ण रूप से पल्लवित और विकसित हुई है। कोमल

कान्त पदावली, सुन्दर शब्द-योजना, चुस्त मुहावरे शङ्करजी की कविता में बड़े भले प्रतीत होते हैं।

महाकवि शङ्कर का जन्म चैत्र शुक्ला ५, संवत् १६१६ वि० को हरदुआगंज (अलीगढ़) के गौड़ ब्राह्मण-परिवार में हुआ था। जन्म का नाम कृष्णचन्द्र था। इनके पैदा होने के पूर्व इनके कई भाई बहन मर चुके थे; उस समय की अन्ध परम्परानुसार माता-पिता ने इनकी नाक छिदवा कर 'नथुआ' (नाथूराम) नाम रख दिया। बड़े होने पर इन्होंने 'शङ्कर' अपने नाम के साथ स्वयम् जोड़ लिया; यही कविता का उपनाम भी हुआ। इनके पिता का नाम पण्डित रूपराम शर्मा और माता का जीवनी देवी था। पिता देवी (शक्ति) के परम उपासक थे। शङ्करजी की माता इन्हें डेड़ वर्ष का छोड़ कर चल बसी थीं, मातृ-सुख वंचित् शङ्कर का लालन-पालन नानी और बूआ ने किया। आरम्भ में हिन्दी-उर्दू पढ़ायी गयी फिर फारसी में भी अच्छी योग्यता प्राप्त करली। ये इतिहास और भूगोल सम्बन्धी बातें प्रायः कविता में लिख कर याद किया करते थे। इनके बाल्यकाल के तीन मुख्य मित्र थे, रामजी, बल्ली और गोविन्दा। रामजी को सावधान करने के लिए एक दिन इन्होंने नीचे लिखी तुकबन्दी की थी। यही दोहा इनकी प्रथम रचना है—

अरे यार सुन रामजी, लोभी तेरी जात,
तनक-तनक-से दूध पै, मा को पकरे हाथ।

इस प्रकार १३ वर्ष की उम्र से ही शङ्करजी ने कविता करनी शुरू करदी थी। पहले उर्दू में लिखना शुरू किया फिर हिन्दी में। बचपन की उर्दू-कविता का एक नमूना देखिये—

नक़ाब उलटे जो अपने बामे बरीं पै वह खुश जमाल आया,
तो बहरे ताज़ीम सर झुकाए, नज़र फ़लक पर हिलाल आया।

शङ्करजी के बचपन में मुशायरों का बड़ा जोर था। हरदुआगंज में प्रायः प्रतिमास मुशायरा होता था। बाहर से भी कुछ शायर आते थे। इन मुशायरों में शङ्करजी भी पहुँच जाते, परन्तु इनकी ओर कोई देखता भी न था। कुछ सुनाना चाहते तो बालक समझ कर लोग इनकी बात टाल देते थे। एक बार शङ्करजी ने मिन्नत-खुशामद करके थोड़ा समय ले लिया और नीचे लिखो शब्दाडम्बरपूर्ण निरर्थक पंक्तियाँ पढ़ डालीं—

ज़मन ग़बीरो शक़ो का कलज़ुल
इधर हमारे उधर तुम्हारे।
तुल्फ़े तकीज़ा ख़िज़रे वनन्नुल,
इधर हमारे उधर तुम्हारे।

इन पंक्तियों को सुन कर सब शायर चकरा गए, और एक शायर साहब पूछने लगे—लड़के, तू किससे ये लिखवा लाया है। इस पर शङ्करजी ने हँसते हुए कहा—

शायरे अशआर मुहमिल,
उर्फ़ नाथूराम नाम,
शेख़सादी भी न समझे,
जिस सखुनवर का कलाम।

बालक शङ्कर के मुँह से ये पंक्तियाँ सुनते ही सारे शायर हँस पड़े और पीठ ठोककर उन्हें शाबाशी दी। फिर तो शंकरजी मुशायरों में बुलाये जाने लगे और उन्हें भी शेरें सुनाने का मौक़ा मिलने लगा।

हरदुआगंज में पढ़-लिखकर शङ्करजी जीविका की खोज में कानपुर पहुँचे, वहाँ उनके मौसा थे। मौसाजी ने उन्हें नक्शानवीसी और पैमाइश का काम सिखाकर वहीं नहर के दफ़्तर में नौकर करा दिया। कुछ दिन नक़्शानवीसी का काम करने के बाद वे सबओवरसियर होगये और बड़ी कुशलता से काम करने लगे। नहर के कई अँगरेज़ अफ़सरों को उन्होने हिन्दी भी पढ़ाई क्योंकि उस समय दफ़्तर में "मुंशी नाथूराम" के सिवा और कोई अच्छी हिन्दी न जानता था।

यों तो शङ्करजी हरदुआगंज में ही ऋषि दयानन्द के दर्शन कर चुके थे, परन्तु कानपुर में इन्हें उनके कई व्याख्यान सुनने का अवसर मिला। इन व्याख्यानों का शङ्करजी पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि वे कानपुर-आर्यसमाज के सदस्य बन गए। कानपुर में ही प्रसिद्ध विद्वान् आचार्य श्री पं० देवदत्त शास्त्री से आपने संस्कृत पढ़ा। पं० प्रतापनारायण मिश्र से तो आप वहाँ प्रायः नित्य ही मिलते और उनके 'ब्राह्मण' नामक मासिक पत्र के लिये लेखादि भी लिखते थे। कभी-कभी तो इन्हें "ब्राह्मण" का पूरा ही सम्पादन करना पड़ता था। शङ्करजी सात वर्ष और छह मास कानपुर रहे। एक दिन एक स्वाभिमान का प्रश्न उपस्थित होने पर आपने सरकारी सेवा से

त्याग-पत्र दे दिया और आप अनूपशहर आगये। वहाँ दो वर्ष तक आपने आयुर्वेद का अध्ययन किया। इसके पश्चात् हरदुआगंज आकर चिकित्सा-कार्य प्रारम्भ कर दिया। नहरवालों ने नौकरी के लिए कईवार आपको बुलाया, परन्तु फिर आपकी उस ओर रुचि न हुई। एक सफल चिकित्सक के रूप में शङ्करजी शीघ्र ही लोक-प्रिय हो गए। कई पुराने रोगियों के ऐसे सफल इलाज हुए कि आपके 'पीयूष पाणित्व' पर लोगों का पूरा विश्वास होगया और हिन्दू-मुसलमान सब ही आपका आदर करने लगे। शङ्करजी के दो ही काम थे - चिकित्सा और कविता। चिकित्सा से जो समय बचता उसका उपयोग साहित्य-सेवा में किया जाता था। तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं में कविता प्रकाशित होने के कारण साहित्य-क्षेत्र में भी आपकी खूब ख्याति हो गई थी।

शङ्करजी ने प्रायः सभी विषयों पर और सभी छन्दों में कविताएँ की हैं। आप रससिद्ध कवि थे। रसों पर आपका पूरा अधिकार था। किसी समस्या की सब रसों में सुन्दर पूर्ति कर देना आपके लिए एक साधारण सी बात थी। सभी रसों में आपने बड़ी सफलता से रचनाएँ की हैं। 'अनुराग-रत्न', 'शङ्कर सरोज', 'गर्भ रण्डा रहस्य' आदि आपके प्रकाशित काव्य ग्रन्थ हैं। 'भारतभट्टभगण्त' नामक व्यंग्य-साहित्य की पुस्तक भी आपने लिखी थी, जो प्रकाशित नहीं हो सकी।

समस्या-पूर्ति करने में शङ्करजी बड़े दक्ष थे। मिनटों में बड़ी सुन्दर पूर्तियाँ कर लेते थे। संस्कृत और फ़ारसी की कविताओं के हिन्दी अनुवाद भी आपने बड़ी सफलता से किये हैं। सम्पादकजी (आचार्य पद्मसिंह शर्मा) आपसे ऐसे अनुवाद प्रायः कराया करते थे। एक बार सम्पादकजी ने निम्नलिखित शेर पढ़कर कहा— कविजी इसका अनुवाद कीजिए। (शङ्करजी से आप "कविजी" ही कहा करते थे)।

इश्क़ अव्वल दर दिले माशूक़ पैदा मी शवद,
तान सोज़द शमअके परवाना शैदा मी शवद।

शङ्करजी ने इस शेर का निम्नलिखित सुन्दर अनुवाद बड़ी शीघ्रता से कर दिया।

पहले तिय के हीय में उपजत प्रेम-उमंग,
आगे बाती बरत है पीछे जरत पतंग।

पूर्ति सुनकर सम्पादकजी दङ्ग रह गए और उन्होंने शङ्करजी की "विलास-बही" में अपनी लेखनी से उसी समय लिखा—"ऊपर के फ़ारसी शेर का यह उत्तम अनुवाद मेरी प्रार्थना पर कविजी ने सिर्फ़ चार मिनट में कर दिया। धन्य प्रतिभा!"

सम्पादकजी ने हज़रते दाग़ का नीचे लिखा शेर पढ़ा और कविजी से उसका हिन्दी-अनुवाद करने को कहा—

रुख़े रौशन के आगे शमअ रखकर वह यह कहते हैं,
उधर जाता है या देखें इधर परवाना आता है।

शङ्करजी ने इस शेर का भी चार-छह मिनट में ही बड़ा सुन्दर अनुवाद करके सुना दिया—

एक ओर तेरो बदन चन्द्र दूसरी ओर,
जाय न कितहू बीच में नाचत फिरे चकोर।

शङ्करजी ने फ़ारसी-कविताओं के हिन्दी अनुवाद ही नहीं किये, उर्दू ज़बान में कवित्त भी बड़ी सफलता से लिखे हैं। देखिये—

बाग़ की बहार देखी मौसमे बहार में तो,
दिले अन्दलीब को रिझाया गुलेतर से।
हम चकराते रहे आसमाँ के चक्कर में,
तो भी लौ लगी ही रही माह की महर से।
आतिशे मुसीबत ने दूर की कुदूरत तो,
बात की न बात मिली लज़्ज़ते शकर से।
'शङ्कर' नतीजा उस हाल का यही है बस,
सच्ची आशिक़ी में नफ़ा होता है ज़रर से।

उर्दू के उक्त कवित्त में प्रवाह, गति और शब्द-विन्यास आदि कैसे सुन्दर हैं। उर्दू के ऐसे और भी कितने ही छन्द शङ्करजी ने लिखे हैं अर्थात् उर्दू में भी वे बड़ी अच्छी शायरी करते थे। देखिये, यह रुबाई कितनी अच्छी है।

ऐ अहले हिन्द अब तो उठो खूब सो चुके,
कर प्यार तनज़्ज़ुल पै तरक़्क़ी को खो चुके।
शङ्कर जला दो जल्द ग़ुलामी के जाल को,
राहत रही न, तुख़्म मुसीबत के बो चुके।

शङ्करजी उर्दू के महाकवि अकबर के बड़े भक्त थे। उनकी कविताओं को बार बार पढ़ते और सराहते थे। महाकवि अकबर के मरने पर आपने नीचे लिखी रुबाई लिखकर उनके सुयोग्य पुत्र के पास भेजी थी—

न रखना हो क़यामत का
न ज़ाहिर हो पयम्बर को,
सकूनत पाक जन्नत में
मिले अल्लाह अकबर को।

शङ्करजी की यह रुबाई तो बहुत ही प्रसिद्ध है। इसे वे बार-बार पढ़ा करते थे—

बुढ़ापा नातवानी ला रहा है
ज़माना ज़िन्दगी का जा रहा है,
किया क्या और आगे क्या करेगा
अख़ीरी वक़्त दौड़ा आ रहा है।

शङ्करजी का निम्नलिखित दोहा कितना भावपूर्ण है—

बाल, युवा औ' वृद्ध को सुधा, सुरा, विष देन,
काढ़े कञ्चन कलश कुच रूप-सिन्धु मथि मैन।

रूप-सिन्धु को मथकर कामदेव ने कैसे विचित्र कञ्चन-कलश निकाले हैं, जिनमें बालकों के लिए अमृत, युवकों के लिए सुरा और वृद्धों के लिए विष भरा हुआ है।

'अटकत हैं' समस्या की पूर्ति में शङ्करजी ने जो निम्नलिखित छन्द रचा है, उसे पढ़कर तो सहृदय पाठक आनन्द विभोर हो जाते हैं।

आनन की ओर चले आवत चकोर मोर -
दौर-दौर बार-बार बेनी झटकत हैं।
बैठ-बैठ शङ्कर उरोजन पै राजहंस -
मोतिन के हार तोर-तोर पटकत हैं।
झूम-झूम चाखन को चूम-चूम चंचरीक,
लटकी लटन में लिपट लटकत हैं।
आज इन बैरिन सों बन में बचावे कौन,
अबला अकेली में अनेक अटकत हैं।

शङ्करजी ने अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन करने में भी कमाल किया है। किसी वियोगिनी की आह निकलने पर कैसे कैसे भयंकर उत्पात हो सकते हैं, उनकी आशंका मात्र से ही हृदय काँपने लगता है। ज़रा नीचे लिखे कवित्त का मुलाहिज़ा कीजिए।

'शङ्कर' नदी-नद-नदीसन के नीरन की,
भाप बन अम्बर ते ऊँची चढ़ जायगी।
दोनों ध्रुव छोरन लों पल में पिघलकर,
घूम-घूम धरनी धुरी-सी बढ़ जायगी।
झारेंगे अँगारे ये तरनि, तारे, तारापति,
सारे व्योम-मण्डल में आग मढ़ जायगी।
काहू बिधि, बिधि की बनावट बचेगी नाहिं,
जो पै वा वियोगिनि की आह कढ़ जायगी।

एक छोटा दोहा और भी देखिये—

मुदे न राखत दीठ त्यों खुले न राखत लाज,
पलक-कपाट दुहून के पल-पल साधत काज।

नवोढ़ा नायिका है, दर्शनेच्छा इतनी प्रबल है कि प्रियतम की ओर विना देखे रहा नहीं जाता, और उधर नवोढात्व के कारण लाज भी इतनी प्रबल है कि क्षणभर भी नजर भर कर देखते नहीं बनता। इधर पलकरूपी किवाड़ हैं, जो उक्त दोनों भावों के बन्दे हैं। कभी खुल जाते और कभी बन्द हो जाते हैं।

शृंगार ही नहीं, प्रायः सभी रसों में शङ्करजी ने सफलतापूर्वक कविताएँ लिखी हैं, जिन्हें पाठक इस ग्रन्थ में पढ़ेंगे। शान्त रस सम्बन्धी एक कविता देखिये—

शङ्कर अखण्ड एक अक्षर की एकता में,
स्वाभाविक साधन अनेकता का साधा है।
तारतम्यता के साथ विश्व की बनावट में,
पोल और ठोस का प्रयोग आधा-आधा है।
नाम रूप ज्ञान से क्रिया की कर्म कल्पना से,
नित्य निरुपाधि चिदानन्द में न बाधा है।
सामाधिक धारणा में ऐसा ध्रुव ध्यान है तो,
पुरुष मुकुन्द है प्रकृति प्यारी राधा है।

दार्शनिक लोग तो इस पद्य को पढ़कर आनन्द से उछल पड़ेंगे और कहेंगे कि शङ्करजी ने किस सुन्दरता से अपने दार्शनिक भावों की अभिव्यक्ति की है।

आचार्य पद्मसिंह शर्मा हरदुआगंज से आगरा नागरी-प्रचारिणी सभा के कवि-सम्मेलन में सम्मिलित होने आरहे थे। शङ्करजी के लिए भी साग्रह निमन्त्रण था, परन्तु वे न आसके। सम्पादकजी बोले—अच्छा कविजी, आगरा नहीं चल रहे तो न सही, समस्या-पूर्तिरूपी अपना प्रसाद तो वहाँ के लिए दे दीजिये। समस्या थी—'चाँदनी शरद की'। शङ्करजी ने केवल छह-सात मिनट में इस समस्या की नीचे लिखी पूर्ति करके देदी।

देखिये इमारतें मज़ार दुनिया के सारे,
रोज़े ने कहो तो शान किसकी न रद की।
हीरा, पुखराज, मोतियों की दर दूर कर,
शङ्कर के शैल की भी श्वेतिमा ज़रद की।
शौकत दिखादी जमुना के तीर शाहजहाँ,
आगरे ने आबरू इरम की गरद की,
धन्य मुमताज बेगमों की सरताज,
तेरे नूर की नुमायश है चाँदनी शरद की।

चाँदनी को मुमताज के नूर की नुमायश बताकर शङ्करजी ने कैसा अद्भुत कवि-कौशल दिखाया है।

'सरस्वती की महावीरता' शीर्षक कविता में शङ्करजी का निम्न-लिखित छन्द कितना भाव-भरा एवं महत्त्वपूर्ण है।

मान-दान माघ को महत्व-दान मम्मट को,
दान कालिदास को सुयश का दिला चुकी।
रामामृत तुलसी को काव्य-सुधा केशव को,
राधिकेश-भक्ति-रस सूर को पिला चुकी।
मुख्य मान-पान देश-भाषा-परिशोधन का,
भारत के इन्दु हरिचन्द को खिला चुकी।
सुकवि-सभा में महावीरता सरस्वती की,
शङ्कर-से दीन मतिहीन को मिला चुकी।

महाकवि शङ्कर प्रगतिशील कवि थे। उन्होंने अपनी शृङ्गारी कविताओं में भी शिष्टता का पूरा ध्यान रक्खा है। देश, समाज

और साहित्य को उठाने के लिए अब से प्रायः पौन शती पूर्व शङ्करजी ने ऐसी अनेक कविताएँ लिखी हैं, जो कुछ प्रगतिशील कवियों द्वारा आज लिखी जारही हैं। किसानों की दुर्दशा पर आपने बहुत पहले लिखा था—और उन पर लगे हुए 'कर-भार' को भुजंग बताया था, जो उनकी सुख सम्पन्नता को दिन दहाड़े डस रहा है। देखिये—

कुछ दीन किसान कमाय रहे
हल का हलका फल पाय रहे
इनको कर-भार भुजंग हुआ
बस भारत का रस भंग हुआ

× × ×

जल का कर बीज-ब्याज पोता
भूलें न किसान भूमिजोता
लाखों खलियान डालते हैं
ज्यों-त्यों कर पेट पालते हैं

ज्ञानी-विज्ञानियों की दुर्दशा पर तरस खाते हुए शङ्करजी कहते हैं—

जो वस्तु नयी निकालते हैं
भूलों की भूल टालते हैं
भटकें वे हाय रोटियों को
चिथड़े न मिलें लँगोटियों को

दीन-दरिद्रों की दशा देखकर तो शङ्करजी का हृदय रो पड़ता है और उनके मुँह से अनायास ही निकलता है—

कस पेट अकिञ्चन सोय रहे
बिन भोजन बालक रोय रहे
चिथड़े तक भी न रहे तन पै
धिक धूल पड़े इस जीवन पै

और देखिये, दरिद्रता का करुण चित्र शङ्करजी किन शब्दों में अङ्कित करते हैं—

दुखड़ों की भरमार यहाँ सुख-साज नहीं है
किसका गोरस-भात मुठी-भर नाज नहीं है

भटकें चिथड़े धार घने पट पास नहीं है
कुनबे-भर में कौन अधीर उदास नहीं है

× × ×

बालक चोखे खान-पान को अड़जाते हैं
खेल-खिलौने देख पिछाड़ी पड़ जाते हैं
वे मनमानी वस्तु न पाकर रो जाते हैं
हाय, हमारे लाल सुबकते सो जाते हैं

× × ×

छप्पर में बिन बाँस घने एरण्ड पड़े हैं
बरतन का क्या काम घड़ों के खण्ड पड़े हैं
खाट कहाँ दस-पाँच फटे-से टाट पड़े हैं
चकिया की भिर फोड़ पटीले पाट पड़े हैं

सम्प्रदायवाद, गुरुडम धूर्त्तता को धिक्कारते हुए शङ्करजी कहते हैं—

मत-पन्थ असंख्य असार बने
गुरु लोलुप, लण्ठ, लवार बने
शठ सिद्ध, कुधी कविराज बने
अनमेल अनेक समाज बने

इतना ही नहीं, भारत की शस्त्र-हीनता अर्थात् निहत्थेपन पर भी शङ्करजी को बड़ा क्षोभ होता है। वे बड़े दुःख और आश्चर्य के साथ कहते हैं—

जिसके जन-रक्षक शस्त्र रहे
उसके कर हाय निरस्त्र रहे
रणजीत शरासन टूट गया
इषुवर्ग यशोधर छूट गया

भारत की विवशता, असमर्थता और पराधीनता से दुःखित होकर नीचे लिखे पद्य में शङ्करजी ने कैसी मर्मान्तक वेदना प्रकट की है—

बिन शक्ति समृद्धि-सुधा न रही
अधिकार गया वसुधा न रही
बल-साहस-हीन हताश हुआ
कुछ भी न रहा सब नाश हुआ

शङ्करजी अबसे पचास-साठ वर्ष पूर्व लिखी अपनी कविता में रिश्वतखोर अफ़सरों को बुरी तरह फटकारते हैं—

अति उन्नत राज-कर्मचारी,
जिनके कर बाग है हमारी,
वेतन भरपूर पा रहे हैं,
फिर भी कुछ घूस खा रहे हैं।

× × ×

करो चाकरी घूस खाया करो,
मिले वेतनों को बचाया करो!

सूदखोर पूँजीपतियों को भी शङ्करजी ने काफ़ी डाट बताई है। वे धनियों द्वारा पीड़न और शोषण एक क्षण के लिए भी नहीं सह सकते।

धरणीश, धनी, समृद्धि-शाली
अलमस्त पड़े समस्त खाली
जड़ जङ्गम जीव नाम के हैं
विषयी न विशेष काम के हैं
गढ़ गौरव का गिरा रहे हैं
उलटे हम हाय जा रहे हैं

× × ×

भरपेट कड़ा कुसीद खाना
परतन्त्र-समूह को सताना
इसको कुल-धर्म जानते हैं
यश उन्नति का बखानते हैं
धनधींग धनी कमा रहे हैं
उलटे हम हाय जा रहे हैं

× × ×

अमीरो, धुआँधार छोड़ा करो
पड़े खाट के बान तोड़ा करो
मज़ेदार मूँछें मरोड़ा करो
निठल्ले रहो काम थोड़ा करो
चबाते रहो पान, दौरे, डली
न विज्ञान फूला न विद्या फली

नीचे लिखी कविता भी देखिये—

लगातार पूँजी बढ़ाते रहो
कमाते रहो व्याज खाते रहो
न कंगाल का पिण्ड छोड़ा करो
लहू लीचड़ों का निचोड़ा करो
कहो दाल यों छातियों पै दली
न विज्ञान फूला न विद्या फली

× × ×

रुई, नाज, देशी दिया कीजिये,
विदेशी खिलौने लिया कीजिये,
हवेली-घरों को सजाया करो,
पड़े मस्त बाजे बजाया करो।

× × ×

पराई जमा मारनी हो जहाँ,
अजी काढ़ देना दिवाला वहाँ,
किसी का टका भी चुकाना नहीं,
न थोथे उड़ाना थुकाना नहीं।

शङ्करजी की व्यापक दृष्टि से झूठे गवाह भी नहीं बच सके। वे उन्हें लताड़ते हुए कहते हैं—

गवाही कभी ठीक देना नहीं
कहीं सत्य से काम लेना नहीं
भले मानसों को सताया करो
खरे खूसटों को बचाया करो

शिल्पकला की दुर्दशा देखकर शङ्करजी को बड़ा दुःख है। वे बड़ी ईर्ष्या के साथ कहते हैं—

देशी शिल्पकार दुख भोगें बैठ रहे मन मार,
देखो दस्तकार परदेशी सुख से करें विहार।
उन्नतिशील विदेशी ऊलें कर उद्यम-व्यापार,
हम खाली रोते हैं उनकी ओर निहार निहार।

कूपमण्डूकता के विरुद्ध भी शङ्करजी ने काफ़ी लिखा है। समुद्रयात्रा-निषेध को वे देश की उन्नति के लिए बहुत बाधक

समझते थे । निम्नलिखित दो पंक्तियों में कैसे सुन्दर भाव व्यक्त किये गये हैं ।

> रहे कूप-मण्डूक न देखा विशद विश्व-बिस्तार ,
> हाय हमारी रोक-टोक पै पड़ी न अबलों छार ।

अभिप्राय यह है कि ऐसा कोई नैतिक, राजनैतिक, सामाजिक या धार्मिक प्रसंग नहीं रहा जिस पर महाकवि शङ्कर की दूर-दर्शिनी दृष्टि न गयी हो । निःसन्देह वे क्रान्तदर्शी कवि थे । उन्होंने जो कुछ लिखा मानव-कल्याण-कामना से लिखा । कर्तव्यवश उन्हें सामाजिक दूषण आदि कितनी ही बातों का तीव्र खंडन भी करना पड़ा, परन्तु हित-दृष्टि से—समाज को उन्नत और विशुद्ध बनाने के विचार से । कवि व्यक्तिगत राग द्वेष से परे होता है, वह जो कुछ कहता, दूसरों की भलाई और प्राणिमात्र की कल्याण-कामना से कहता है । शङ्करजी की गणना भी ऐसे ही विश्वबन्धुत्व-प्रसारक महाकवियों में है ।

शङ्करजी ने "कलित कलेवर" नामक एक काव्य-ग्रन्थ की रचना की थी, जिसमें बड़ी सुन्दरता से नख-शिख का वर्णन किया गया था । परन्तु यह पुस्तक उन्होंने स्वयं ही नष्ट करदी ! नष्ट करने का कारण यह था कि वे बुढ़ापे में शृङ्गार-रस की कविताओं को अपने नाम से प्रकाशित कर उनका प्रचार होना पसन्द न करते थे । यदि आज "कलित कलेवर" होता तो निःसन्देह वह हिन्दी काव्य साहित्य के लिए शङ्करजी की एक अनुपम देन सिद्ध होता ।

शङ्करजी को कितने ही नरेशों ने कई बार बुलाया, परन्तु वे कहीं नहीं गए । १९१० या ११ ई० में छतरपुर-नरेश स्वर्गीय श्री विश्वनाथ-सिंहजी की प्रार्थना और उनके तत्कालीन दीवान तथा सुप्रसिद्ध साहित्यकार राव राजा श्यामविहारी मिश्र के आग्रह पर वे पाँच दिन के लिए छतरपुर गये थे । शङ्करजी का सत्संग लाभ कर छतरपुर नरेश श्री विश्वनाथसिंहजी बड़े प्रभावित और प्रसन्न हुए थे, और जब तक जीवित रहे, बराबर शङ्करजी से पत्र-व्यवहार करते रहे ।

छतरपुर-यात्रा में एक बड़ी मजेदार बात हुई । शङ्करजी और उनके प्रधान शिष्य स्व० दादा राधावल्लभ शर्मा जब छतरपुर पहुँचे

तो उनका बड़े स्नेह से स्वागत किया गया और दोनों महमान उनकी इच्छानुसार नगर से दूर एक उद्यान में ठहराये गए। वहाँ कोठी में फ़र्श और फ़रनीचर तो काफ़ी थे, परन्तु पलँग एक ही था। कर्मचारियों की भूल अथवा उपेक्षा से पहले दिन प्रकाश और खान-पान की भी उचित व्यवस्था न हुई। सवेरा होते ही शङ्करजी ने राज्य के तत्कालीन दीवान श्री पं० श्यामविहारी मिश्र को लिख भेजा—

> छोटे कर्मचारियों की चूक बड़ी भूल नहीं,
> चारों ओर रावरे प्रबन्ध की बड़ाई है।
> मन्दिर बड़े में मन्द दीपक प्रकाश करे,
> सारी रात श्यामता तिमिर ने दिखाई है।
> दूध जल-मिश्रित में बूरे का मिठास कहाँ,
> तन्दुल नवीन खाँड़ खादर की खाई है।
> देव कवि शङ्कर विहारी किस भाँति बने,
> दो हम दुपाए पर एक चारपाई है।

कहने की आवश्यकता नहीं कि कवित्त के पहुँचते ही मिश्रजी शङ्करजी के पास आए तथा असुविधा के लिए क्षमा-याचना की और तुरन्त समुचित व्यवस्था करदी। महाराज विश्वनाथसिंह के कानों तक भी किसी प्रकार यह बात पहुँच गई, और उन्होंने भी शङ्करजी से क्षमा-याचना की। शङ्करजी और महाराज का वार्त्तालाप नित्य कई-कई घण्टे होता था।

स्वर्गीय राजकुमार श्री रणवीरसिंहजी और युवराज श्री रणञ्जयसिंहजी के अत्यधिक आग्रह से दो दिन के लिए शङ्करजी अमेठी भी गए थे। जीवन-भर में शङ्करजी ने सम्भवतः दो-तीन ही यात्राएँ और की होंगी; नहीं तो वे प्रायः अपने घर पर ही रहे।

शङ्करजी को हिन्दी और हिन्दू शब्द से बड़ी चिढ़ थी। उनका कहना था कि हिन्दी-हिन्दू शब्द हमारे नहीं, दूसरों ने इन्हें हमारे मत्थे मढ़ा है। इनका अर्थ बहुत ख़राब है, इसीलिए महाकवि तुलसीदासजी ने मुग़ल-शासन में जन्म लेकर भी अपने ग्रन्थों में इन शब्दों का प्रयोग नहीं किया।

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का सभापतित्व स्वीकार करने के लिए शङ्करजी से कई वार प्रार्थना की गई, परन्तु उन्होंने सभापति बनना स्वीकार न किया, और कहा कि जब तक सम्मेलन के साथ हिन्दी

शब्द रहेगा, मैं उसकी यह सेवा न कर सकूँगा। एकबार तो सम्मेलन के प्रधान मन्त्री स्व० पं० रामजीलाल शर्मा, प्रो० रामदास गौड़ और पं० पद्मसिंह शर्मा विशेष रूप से शङ्करजी के पास इसीलिये पधारे थे कि वे किसी प्रकार सम्मेलन का सभापतित्व स्वीकार करलें, परन्तु शङ्करजी अपने उक्त विचार पर अटल रहे। हाँ, बहुत आग्रह करने पर वे देहली हिन्दी साहित्य-सम्मेलन के अवसर पर आयोजित, अखिल भारतवर्षीय कवि-सम्मेलन के सभापति अवश्य बने थे। हिन्दी-हिन्दू के सम्बन्ध में शङ्करजी के ये विचार उचित थे या अनुचित इसका विवेचन करने की यहाँ आवश्यकता नहीं, परन्तु बात ऐसी ही थी।

महाकवि शङ्कर सच्चे साहित्य-साधक थे। वे जब तक जीवित रहे, हरदुआगंज में साहित्य सेवियों का आवागमन बना रहा। उन्हें आतिथ्य करने में बड़ा आनन्द आता था। वे अपने अतिथियों की सेवा-शुश्रूषा स्वयं करते थे। उनके कितने ही मित्र तो हफ्तों हरदुआगंज में निवास करते थे। आचार्य पद्मसिंह शर्मा की तो उनसे बहुत ही घनिष्ठता थी। एक बार महाकवि रत्नाकरजी भी पधारे थे और इन्होंने अपने कविता-पाठ द्वारा आनन्द-वर्षा की थी। उस समय आचार्य पद्मसिंह शर्मा और श्री पं० उदित मिश्र भी वहाँ मौजूद थे। उक्त तीनों महानुभावों के शुभागमन की सूचना पाकर शङ्करजी ने कहा था—

आहा भाग्य-भानु शङ्कर का, होगा 'उदित' धन्य भगवान,
प्रेम-भाव के 'रतनाकर' में, विकसेगा उर-पद्म-समान।

दो-तीन दिन खूब साहित्य-चर्चा रही। रत्नाकरजी ने अपने गंगावतरण काव्य तथा अपनी कुछ अन्य स्फुट कविताओं को स्वयम् पढ़कर सुनाया। उन दिनों 'देव और विहारी' के सम्बन्ध में खूब चर्चा चल रही थी। शङ्करजी विहारी के तरफदार थे, और पं० पद्मसिंह शर्मा तो विहारी के जबर्दस्त वकील ही थे। प्रसंग वश शङ्करजी कह उठे—

न जी जाल की जल्पना से भरें
सखा सत्य के झूठ से क्यों डरें
विहारी के आगे परी देवकी
नहीं नाचती तो कहो क्या करें

'शङ्कर-सर्वस्व' ——

बुध बनारसीदास चतुर्वेदी चल घर से,
प्रेम पसार सबन्धु मिले आकर शंकर से।
तरुण वृद्ध का योग मिली यों गरमी सरदी,
सरस अनुष्ण शीत शक्ति समता में भर दी।
कर दूर दुरंगी द्वैध की अटल एकता हो गई,
हरिशंकर के भी पास जो उमग आगरा को गई।

'शंकर'

२-१-१९२५ ई०

महाकवि शङ्करजी का हस्त-लेख

इन पंक्तियों को सुनकर हँसी का फव्वारा फूट निकला! रत्नाकरजी तो हँसते-हँसते लोट-पोट हो गये।

सुप्रसिद्ध पत्रकार श्री पं० बनारसीदास चतुर्वेदी अपने अनुज स्व० प्रो० रामनारायण चतुर्वेदी एम० ए० सहित १९२५ ई० में शङ्करजी से मिलने हरदुआगंज गए थे। शङ्करजी चतुर्वेदीजी से भले प्रकार परिचित थे, वे चतुर्वेदीजी से मिलकर तथा उनकी श्रवण-सुखद व्रजभाषा सुनकर बड़े प्रसन्न हुए। चतुर्वेदीजी की सरलता और सात्विकता ने तो शङ्करजी को बहुत ही प्रभावित किया। रामनारायणजी उन दिनों विद्यार्थी थे। प० बनारसीदासजी हरदुआ-गंज से चलकर श्री हरिशङ्कर शर्मा के पास आगरा आए। उस समय शङ्करजी ने लिखा था—

बुध बनारसीदास चतुर्वेदी चल घर से,
प्रेम पगार सबन्धु मिले आकर शङ्कर से।
तरुण-वृद्ध का योग मिली यों गरमी-सरदी,
गरम अनुष्णाशीत शक्ति समता में भरदी।
कर दूर दुरंगी द्वैध की अटल एकता होगई,
हरिशङ्कर के भी पास वह उमँग आगरा को गई।

महाकवि शङ्कर बड़े सहृदय थे। लोभ-लालच तो उनके पास भी न फटका था। वे अपनी जीविका चिकित्सा द्वारा चलाते थे। साहित्यिक व्यवसाय में तो पत्र-पत्रिकाओं में लिखने के बदले में वे कुछ भी न लेते थे। गरीबों की चिकित्सा मुफ्त करते थे। धनियों से भी कोई फ़ीस निश्चित न थी। जिसने जो दे दिया—ले लिया; न दिया तो माँगा नहीं। वे ओषधियाँ न बेचते थे। रोगियों को दो-दो, चार-चार पैसे के नुसख़े लिख देते जिन्हें वे बाज़ार से ख़रीद कर लाभ उठाते थे।

मूल्यवान ओषधियाँ शङ्करजी ने हरदुआगंज के कुछ धनी लोगों के यहाँ मँगवा दी थीं जो गरीबों को मुफ्त मिलती रहती थीं। महीने में सैकड़ों रोगियों का उन्हें इलाज करना पड़ता था और सभी उनकी चिकित्सा में पूरा विश्वास रखते थे। परमात्मा ने उनके हाथ में बड़ा यश दिया था, वे पीयूष-पाणि वैद्य थे। दूर-दूर के रोगी हरदुआगंज आकर उनकी चिकित्सा से लाभ उठाते थे। वर्ष में कितने ही तो डाक्टरों का भी वे इलाज करते थे। शङ्करजी ऐसे सफल

चिकित्सक थे कि यदि वे व्यापार के रूप में अपना कार्य करते तो बहुत धन कमा लेते, और अपना विशाल भवन बना जाते, परन्तु इनका जन्म तो समाज-सेवा के लिये हुआ था। जीवन-भर एक फूटी-सी कोठरी में टूटे-से छप्पर के नीचे पड़े रहे, और धन-संग्रह की कभी चिन्ता न की।

सन् १६१२ ई० की बात है, शङ्करजी का 'अनुराग-रत्न' छप रहा था। वे उसका समर्पण काव्यकानन-केसरी श्री प० पद्मसिंह शर्मा को करना निश्चित कर चुके थे। इतने में एक नरेश के यहाँ से प्रस्ताव आया कि यदि 'अनुराग-रत्न' उक्त राजा को समर्पित कर दिया जाय, तो वे ग्रन्थ की छपाई के अतिरिक्त पाँच सहस्र रुपया और भेंट कर देंगे। इष्ट-मित्रों ने बड़ा जोर दिया कि शङ्करजी उक्त प्रस्ताव को स्वीकृत करलें। स्वयम् प० पद्मसिंह शर्मा ने भी बड़े आग्रहपूर्वक कहा—'मैं तो आपका भक्त हूँ, मुझे इस ग्रन्थ-रत्न के अर्पण करने की आवश्यकता नहीं। इन राजा साहब को ही इसे समर्पित कर दीजिए। अच्छा है, कुछ अर्थ लाभ हो जायगा।' जब इस विषय में बहुत आग्रह और अनुनय-विनय किया गया तो शङ्करजी सजलनयन हो वाष्पावरुद्ध कण्ठ से बोले—

"मैं तो अपनी किताब सम्पादकजी (प० पद्मसिंह शर्मा) कूँई समर्पित करूँगो, जो काव्य के मर्मज्ञ एँ। धन के पीछें, भैय्या! मोकूँ दबाओ मत, बिचारो राजा कविता कूँ कहा जानें।" शङ्करजी की ऐसी बातें सुन कर सब चुप होगए और 'अनुराग-रत्न' प०पद्मसिंह शर्मा को ही समर्पित किया गया।

शङ्करजी के सम्बन्ध में एक स्वतन्त्र ग्रन्थ लिखने की आवश्यकता है। इन दस-बीस पृष्ठों में तो संक्षिप्त परिचय ही दिया जा सकता है। उनके सम्बन्ध की दो-चार बातें और कह कर हम इस लेख को समाप्त करेंगे।

बुढ़ापे में शङ्करजी की नेत्रज्योति बहुत ही मन्द पड़ गई, और आँखों में नीला मोतिया उतर आया था। बहुत आग्रह करने पर आप दिल्ली के किसी डाक्टर को दिखाने गए। प० पद्मसिंह शर्मा भी साथ थे। डाक्टर ने निराशा सूचित की। सम्पादकजी इससे बहुत दुखी हुए। परन्तु शङ्करजी ने उन्हें सान्त्वना देते हुए डाक्टर के मकान पर ही निम्नलिखित दोहा बना कर सुनाया—

हाथ जोड़ बूढ़े शङ्कर से कहता है कविता वाला,
होकर सूर भजो केशव को लेकर तुलसी की माला।

दोहा सुन कर उदास शर्माजी उछल पड़े। शङ्करजी ने छोटी-सी पंक्ति में सूर, तुलसी और केशव को कितनी सुन्दरता और सार्थकता से फ़िट किया है।

शङ्करजी महाकवि तो थे ही, वक्ता भी बड़े अच्छे थे। कभी-कभी गद्य भी लिखा करते थे। हिन्दी में कितने ही छन्द विना नाम के थे, उनका आपने नामकरण कर दिया। इनमें मिलिन्दपाद, राजगीत और शङ्कर-छन्द मुख्य हैं। शङ्करजी स्वाध्यायशील बड़े थे। वे किसी ग्रन्थ को साधारण रीति से यों ही नहीं पढ़ जाते—बल्कि उसका नियमानुसार अध्ययन करते थे। संस्कृत, हिन्दी, उर्दू, फ़ारसी की उन्होंने कई सहस्र पुस्तकें पढ़ी थीं। दर्शन, इतिहास, पुराण और साहित्य के वे बड़े अच्छे पण्डित थे। शङ्करजी अंगरेज़ी न जानते थे, परन्तु उन्होंने अंगरेज़ी के कई प्रसिद्ध ग्रंथ दूसरों से सुने-समझे थे। स्वाध्याय का उन्हें एक व्यसन-सा था।

जब शङ्करजी २२–२३ वर्ष के थे, तब उन्होंने 'बहारे चमन' और 'हरिश्चन्द्र' नामक दो नाटक लिखे थे, जो उस समय बड़ी सफलता से अभिनीत हुए। हरिश्चन्द्र नाटक देखने को तो दस-बारह सहस्र जनता एकत्र हुई थी। 'बहारे-चमन' तत्कालीन नवाब छतारी को बहुत पसन्द आया था। नवयुवक शङ्कर को बुला कर नवाब साहब ने बड़ी दाद दी थी। यह नाटक स्वयं शङ्करजी के निर्देश में अभिनीत हुआ था।

शङ्करजी ने सैकड़ों कवियों तथा साहित्यिकों को प्रोत्साहन दिया। इनमें से कितने ही तो ऐसे नवयुवक थे, जो आगे चलकर हिन्दी के प्रसिद्ध कवि तथा साहित्यकार हुए। नवयुवक 'सनेही' की कविताओं को पढ़ कर शङ्करजी को उनके उज्ज्वल भविष्य की आशा होगई थी, और वह चरितार्थ भी हुई। आगे चल कर 'सनेही' जी हिन्दी के महाकवि हुए। 'त्रिशूल' नाम से भी इन्होंने बहुत कविताएँ लिखीं। जब इन्हें खन्ना-पुरस्कार मिला तो शङ्करजी ने यह दोहा लिखकर खन्नाजी के पास भेजा था—

शङ्कर कविता क्या लिखे क्या पावे उपहार,
इक्यावन तो ले चुका शङ्कर का हथियार।

शङ्कर के हथियार—त्रिशूल को ही जब पुरस्कार मिल गया, तो शङ्कर को क्या आवश्यकता है।

शङ्करजी रामचरित-मानस के बड़े भक्त थे। उन्होंने इस ग्रन्थ तथा 'सत्यार्थ-प्रकाश' को चौदह बार पढ़ा था और सदैव उन्हें उनमें नवीनता ही प्रतीत हुई थी वे कहा करते थे, जिसे सुलेखक, सुकवि और साहित्यकार बनना हो, उसे रामचरित-मानस का पारायण अवश्य करना चाहिए। आत्म सुधार के लिए भी यह काव्य अनमोल है। शङ्करजी रामचरित मानस पर भाष्य लिखना चाहते थे, परन्तु शारीरिक और पारिवारिक संकटों के कारण उनकी यह इच्छा पूर्ण न हो सकी।

महाकवि शङ्कर को अपने अन्तिम दिनों में पारिवारिक कष्ट बहुत भोगने पड़े। उनकी एक मात्र पुत्री का देहान्त हुआ, पौत्री मरी और चार पुत्रों में से दो युवा पुत्र नौ महीने के भीतर-भीतर चल बसे। पत्नी की मृत्यु पहले ही हो चुकी थी। इन सब संकटों को शङ्करजी ने बड़े धैर्य के साथ सहा ; फिर भी उनके संवेदनाशील हृदय को गहरी चोट लगी और उनका स्वास्थ्य दिनोंदिन जर्जर होता गया, नेत्र-ज्योति मन्द पड़ गई, परन्तु कविता-शक्ति ज्यों की त्यों बनी रही। पुत्र की चिता जल रही थी ; और आप श्मशान में बैठे, पुत्र-वियोग-वज्राघात से आहत होकर कविता रच रहे थे।

> छीन 'शङ्करा' सुमति 'शारदा', तिमिर 'महाविद्या' पर गेरा,
> शुद्ध 'उमा' बिन अस्त होगया, हाय ज्ञान-'रवि' शङ्कर तेरा।

शङ्करा (पत्नी), शारदा (पोती), महाविद्या (पुत्री), उमा (उमाशङ्कर = ज्येष्ठ पुत्र) और रवि (रविशङ्कर = द्वितीय पुत्र) के स्वर्गगामी होने का उल्लेख उक्त पद्य में है। साथ ही एक और दार्शनिक भाव की ओर भी संकेत किया गया है।

शङ्करजी तीन मास तक रोग-शैया पर पड़े रहे। दूर-दूर के मित्र और भक्त दर्शन के लिए आते थे। शङ्करजी सब से यही कहते थे, 'मैं अपने जीवन के दो फल मानता हूँ। एक मैंने ऋषि दयानन्द के दर्शन किये हैं, दूसरे कुछ तुकबन्दी कर लेता हूँ।' उस समय जो आता उसे रामचरित मानस पढ़ने की सम्मति देते और महात्मा गाँधी की सफलता के लिए शुभ कामना करते हुए भगवान् से देश के शीघ्र

स्वतन्त्र होने की प्रार्थना करते। मृत्यु से पाँच मास पूर्व अपनी जन्म-गाँठ मनाते हुए आपने कहा था और अपने मित्रों को पत्रों में भी लिखा था —

'आयु तिहत्तर हायन भोगी,
वर्षगाँठ अब और न होगी।'

शङ्करजी की भविष्य-वाणी सफल हुई और वे अपनी अगली जन्म-गाँठ मनाने के लिए जीवित न रहे। भाद्रपद कृष्णा ५ संवत् १९८९ वि०, तदनुसार २१ अगस्त १९३२ ई० को जन्म-भूमि हरदुआ-गंज में आपका देहान्त होगया। आपकी मृत्यु से हिन्दी-जगत् और सामाजिक संसार को बड़ा दुःख हुआ। देश के सभी साहित्य-महारथियों, आर्यनेताओं, आर्यसमाजों और पत्र-पत्रिकाओं ने महाकवि शङ्कर की विमुक्त आत्मा के लिए श्रद्धाञ्जलियाँ अर्पित कीं। भारत से बाहर भी जहाँ-जहाँ आर्यसमाज थे, शङ्करजी की मृत्यु पर शोक मनाया गया। सैकड़ों शोक-सहानुभूति सूचक-पत्र और शताधिक-तार उनके वियोग में प्राप्त हुए। हरदुआगंज निवासियों और समीपवर्ती ग्रामीण जनता ने शङ्करजी के उठजाने का बड़ा दुःख माना।

शङ्करजी बड़े ही विनम्र, मिलनसार और स्नेहशील थे। आचार्य पद्मसिंह शर्मा के शब्दों में वे प्रेम के परमाणुओं से बने हुए थे। जब कोई मित्र या अतिथि उनके यहाँ आता तो हर्ष का ठिकाना न रहता। और जब वह विदा होता तो शङ्करजी आँखों में आँसू भर लाते और दूर तक उसे पहुँचाने जाते। आग्रह कर-करके वह अतिथियों को रोकते और अपने प्रेममय व्यवहार द्वारा उसका आतिथ्य करते। निश्चय ही वे साहित्य के सूर्य आतिथ्य तथा सहृदयता के सागर और सबसे बढ़कर आदर्श मानव थे। निस्संदेह विधाता ने उनकी रचना प्रेम के परमाणुओं से की थी। विज्ञापन की दुनिया से दूर, उन्हें सदैव अपनी कुटिया में रहना ही पसन्द था। वे प्रेम के पुञ्ज और विनय की मूर्ति थे। अपने को सदैव 'कवि-कुल-किंकर' लिखा करते और अपनी कविता को 'तुकबन्दी' कहते थे। उन्होंने आत्मपरिचय देते हुए निम्नलिखित विनम्रतापूर्ण पद्य रचा है। उसके एक-एक अक्षर से उनकी विनम्रता और विनयशीलता प्रकट होती है।

पढ़ विद्या भरपूर न पण्डितराज कहाया,
बन बलधारी शूर न यश का स्रोत बहाया।
उद्यम को अपनाय न धन का कोप कमाया,
जीवन में सदुपाय न सेवक-भाव समाया।
हाँ, कुछ भी गौरव-कञ्ज का सौरभ उड़ा न चूक है,
धिक्कूप हरदुआगंज का शङ्कर शठ मण्डूक है।

एकवार दिल्ली में अखिल भारतीय कवि-सम्मेलन का सभापतित्व करने शङ्करजी गये थे, यह कवि-सम्मेलन बड़ा सफल हुआ, दूसरे दिन मुशायरा हुआ इसकी 'तरह' थी।

"दर्दे दिल कुछ बढ़ गया,
दर्दे जिगर कुछ कम हुआ।"

उर्दू के शायरों ने इस तरह पर बड़े जौहर दिखाये, किन्तु शङ्करजी ने केवल एक पंक्ति लिखकर भेजदी थी, इसकी बराबरी कोई न कर सका। वह इस प्रकार है—

बीबी आएगी नहीं, पर कल पिसर आ जायगा,
दर्दे दिल कुछ बढ़ गया, दर्दे जिगर कुछ कम हुआ।

शङ्करजी ने इस एक पंक्ति में कमाल कर दिया है। बीबी दिलरुबा है, उसके न आने का समाचार दिलके दर्द को बढ़ाने वाला है। पिसर (पुत्र) लख्ते जिगर है, इसलिए उसके आने का समाचार जिगर के दर्द को कम करने वाला है। कितनी अच्छी सूक्ति है। इसका मुक़ाबला कोई भी शायर न कर सका।

सम्पादकजी ने एक दिन नीचे लिखे श्लोक का अनुवाद करने के लिये शङ्करजी से कहा। वहाँ क्या देर थी, बात की बात में अनुवाद कर दिया, देखिये—

नपुंसकमितिज्ञात्वा प्रियायै प्रेषितं मनः,
तत्तु तत्रैव रमते हताः पाणिनीना वयम्।

मन चञ्चल और नपुंसक है
इस भाँति विचार बसीठ बनाया।
वह पास गया जिसके उसने
खुल खेल खिलाय वहीं बिरमाया।

निशि बीत गयी पर भामिनि को
अबलों कवि शङ्कर साथ न लाया।
रट पाठ महामुनि पाणिनि का
हमने फल हाय भयानक पाया।

सम्पादकजी के अनुरोध से शङ्करजी ने एक और पुराने श्लोक का अनुवाद किया, जो नीचे दिया जाता है।

इन्दिरा के बाप दानवीर महासागर से,
भूमि सींचने को नीर माँग-माँग लाते हैं।
करते हैं औरों का असीम उपकार तो भी,
धौरे धन याचना की श्यामता दिखाते हैं।
स्वारथी भिखारी ऐसे दृश्य देखते हैं तो भी,
दानियों के द्वार पर माँगने को जाते हैं।
'शङ्कर' विसार लाज ओजहीन आनन पै,
हाय-हाय! कालिमा कलङ्क की लगाते हैं।

आगरा,
अनन्त चतुर्दशी,
२००८

—हरिदत्त शास्त्री, एम० ए०
(साहित्याचार्य, वेदान्ताचार्य, नवतीर्थ)

श्रद्धाञ्जलियाँ

काशी के प्रकाण्ड पण्डित

संस्कृत-सूर्य गुरुवर श्री पं० काशीनाथ शास्त्री

शंकरं प्रणमन् काशीनाथोऽहं द्विजसत्तमः
काव्य-दर्शन-संजात-चमत्कारो निवेदये
नूनं 'सरस्वती' नाथूरामशंकर पण्डितः
अन्यथेदृश पद्यानि को निर्मिमीत मानवः

आचार्य श्री पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी

रसिक कुमुद वन कलाधर, प्रतिभा-पारावार,
कविता-कानन-केसरी, सहृदयता-आगार।

स्वर्गवासी 'शङ्करजी' मेरे मित्र ही नहीं, साहित्य-सेवा में वे मेरे सहायक भी थे। मैं उनका ऋणी हूं। वे महाकवि तो थे ही सज्जन-शिरोमणि भी थे। अपने देश और अपनी भाषा के वे भावुक भक्त थे। उनके प्रति ये वचन-पुष्प अर्पण करके मुझे बड़ा सन्तोष है।

आचार्य श्री पं० पद्मसिंह शर्मा

महाकवि शङ्करजी का काव्य हिन्दी-साहित्य में अपना जोड़ नहीं रखता। जिस दृष्टि से देखिये, हिन्दी भाषा में एक आश्चर्य काव्य है। शङ्करजी छन्दःशास्त्र के अद्वितीय आचार्य है। अलङ्कारों की अधिकता, रस और भाव की बहुलता, विषय-वर्णन की विचित्रता, चमत्मार की चारुता आदि काव्य-अंगों से शङ्करजी का काव्य देदीप्यमान है। उनके काव्य को पढ़कर 'जहाँ न जाय रवि, वहाँ जाय कवि' की कहावत चरितार्थ हो जाती है। निस्सन्देह इसे नव-नवोन्मेषशालिनी कवि-प्रतिभा का चतुरस्र विकास ही समझना चाहिए। महाकवि शङ्कर की कविता के विषय में कुछ अधिक कहना मिट्टी के तेल की बत्ती से रत्नराशि की नीराजना (आरती) करना है। मेरा तो रोम-रोम शङ्करजी की कविता का आजन्म भक्त है। मैं तो उन्हें न सिर्फ़ वर्तमान हिन्दी-कवियों में सर्वश्रेष्ठ महाकवि मानता हूँ,

बल्कि अनेक अंशों में, प्राचीन कवियों से भी अच्छा समझता हूँ। यह मेरा हार्दिक भाव है। शङ्करजी की लेखनी से जो कुछ निकलता है, साँचे में ढला होता है। वे उन रससिद्ध कवियों में हैं, जिनके विषय में योगिराज भर्तृहरि ने कहा है—

जयन्ति ते सुकृतिनो रससिद्धाः कवीश्वराः
नास्ति येषां यशः काये जरा मरणजं भयम्।

साहित्याचार्य श्री पं० शालग्राम शास्त्री

शङ्करजी की कविता का तो कहना ही क्या। एक-से-एक बढ़कर भावपूर्ण है। जो लोग छन्दःशास्त्र में निपुण हैं, उनके विनोद के लिये शङ्करजी की कविता में बहुत कुछ सामान है। यों तो शङ्करजी की कविता में अनेक रसों और भावों की छटा है, किन्तु करुण और हास्य-रस की पुष्टि अत्यन्त सुन्दर हुई है। हास्य-रसपूर्ण अन्योक्तिमय उपदेश देने में शङ्करजी की लेखनी बड़ी निपुण है। यमक और अनुप्रासों के हुरदंग में प्रसाद गुण को अछूता रखना आप के ही विशाल शब्द-भण्डार का काम है। अर्थ और सौन्दर्य की शुद्धि भी कुछ कम नहीं है। विचार भी सामाजिक, नैतिक, आर्थिक, धार्मिक, दार्शनिक, देश-आचार विषयक, नवीन तथा प्राचीन सब ढंग के रंग में बड़े ही कौशल से रँग कर अङ्कित किये हैं। शङ्करजी हिन्दी के समुज्ज्वल रत्न थे। यदि आप कविता के युग में उत्पन्न हुए होते तो निस्सन्देह किसी राज-सभा के रत्न होते। शङ्करजी के काव्य के विषय में हमारी ईश्वर से प्रार्थना है—

चित्रोद्भास विचित्र वर्ण महिम प्राप्तः प्रसादप्रदो
जाग्रज्ज्योतिरकज्जलो गुण-गणस्यूतोऽर्थ सार्थो वहः
चित्ते, चक्षुषि,, वाचि, वक्षसि लसन्स्वान्तः प्रियाऽय सतां
ध्वान्तौघं विनिहन्तु शंकरकवेरप्रत्न रत्नोदयः।

राष्टकवि श्री मैथिलीशरण गुप्त

महाकवि शङ्करजी के परलोक-गमन का समाचार पढ़कर ऐसा जान पड़ता है, मानो हम लोग गुरुजन से वंचित् हो गये। इससे अधिक मैं क्या कहूँ। वह चमत्कारिणी प्रतिभा लेकर शान्तिधाम को गये। उनकी विस्तृत जीवनी से हमें लाभ उठाने का अवसर मिलना चाहिए और इस प्रकार उनका श्राद्ध कार्य करना चाहिए।

औपन्यासिक-सम्राट् श्रीयुत प्रेमचन्दजी

शायद कोई ज़माना आये कि हरदुआगंज (शङ्करजी की जन्म-भूमि) हमारा तीर्थ स्थान बन जाय। शङ्करजी आशुकवि थे, पर भारतीय विनम्रता इतनी थी कि महाकवि होते हुए भी अपने को कवि कहने में भी उन्हें संकोच था। न नाम की भूख थी ; न कीर्ति की प्यास। अपनी कुटिया में बैठे हुए जो कुछ लिखते, स्वान्तः-सुखाय, केवल अपने हृदय के सन्तोष के लिये।

प्रताप के प्रतापी सम्पादक

अमरशहीद स्वर्गीय श्री गणेशशङ्कर विद्यार्थी

कवि शङ्कर में ज़बरदस्त मौलिकता है। अपनी कविता में उन्होंने जो भाव प्रकट किये हैं, उनमें विद्युद्वेग और उनकी प्रतिभा देखते ही बन पड़ती है। साधारण से साधारण समस्या में दार्शनिक भाव भरदेना आपकी सब से बड़ी खूबी है। आपका अध्ययन बहुत विशाल है। आपने अपने काव्य-रत्नों द्वारा हिन्दी-साहित्य-भंडार को जिस श्रेष्ठता से भरा है, उसके लिए हिन्दी-संसार सदा आपका आभारी रहेगा। महाकवि शङ्कर अपनी काव्य-कृतियों द्वारा हमारे मानस-भवन में सदैव विचरण करते रहेंगे।

सम्पादकाचार्य श्री पं० रुद्रदत्त शर्मा

महाकवि शङ्कर प्राचीन और अर्वाचीन काव्य-कलाओं को प्रभावित करने में दैवी शक्ति रखते हैं। काव्य-प्रिय लोग उनके काव्य को पढ़कर फिर आधुनिक अन्य कुकाव्यों को आप ही फीका समझने लगेंगे, क्योंकि—

पीत्वा पयः शशिकरद्युति दुग्ध-सिन्धोः
क्षारं जलं जलनिधेर्रसितुं क इच्छेत्

कवि सम्राट्

श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'

महाकवि शङ्कर हिन्दी साहित्य के एक विशाल स्तम्भ और मेरे पूज्य मित्र थे। उनकी मृत्यु से हिन्दी संसार की जो क्षति हुई है, उसकी पूर्ति होती दृष्टिगत नहीं होती।

महामहोपाध्याय—

श्री पं० गौरीशङ्कर हीराचन्द ओझा

महाकवि शङ्कर की कविताएँ बड़ी हृदयहारिणी हैं। वे सभी विषयों पर बड़ी सफलता से लिखते रहे हैं। गम्भीर दार्शनिक विषयों पर जो कुछ उन्होंने लिखा है, वह बहुत ही महत्वपूर्ण और सहृदय पाठक को प्रभावित करने वाला है। मैंने तो उन्हें युग का महान् कवि—क्रान्तदर्शी कवि समझा है। वे शब्दों के सम्राट् और भावों के अधिपति थे।

प्रसिद्ध विद्वान् और साहित्यकार

श्री श्यामविहारी मिश्र, श्री शुकदेवविहारी मिश्र

महाकवि शङ्कर जैसे परमोत्कृष्ट कवि की स्मृति का जितना आदर हो सके थोड़ा है। उन्होंने अपनी पीयूष वर्षिणी रचनाओं से संसार को जितना आनन्द एवम् लाभ पहुंचाया है, वह अकथनीय है।

डाक्टर काशीप्रसाद जायसवाल, एम० ए०

शङ्करजी नयी पद्य-रचना के मूल आचार्यों में हैं। वे पुरानी और नई कविता के लिए सेतु समान हैं। उनकी कविता पढ़ने से कविता की सदुक्तियाँ मन और स्मृति को पद्माकर और दीनदयालु के पास खींच ले जाती हैं। छन्दों की प्रचुरता से केशव की सुध आती है। आपकी कविता के विषय भक्ति, वेदान्त, समाज सुधार, धर्म-सुधार प्रभृति हैं। शङ्करजी ने अपनी कविता द्वारा सद्वचनों को वेदपाठी के पवित्र शब्दों की तरह सुनाकर देश को कृतार्थ किया है।

महाकवि श्री पं० गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही', 'त्रिशूल'

स्वर्गीय शङ्करजी के ही प्रसाद से हम लोग काव्य-जगत में बोल-चाल की भाषा को प्रधानता देने में सफल हुए हैं। जैसा ओज उनकी कविता में रहता था, वैसा आज दुर्लभ है। वे अपनी रचनाओं में देश और समाज को कभी नहीं भूलते थे। वास्तव में

मैं तो उनके चरण चिह्नों पर चलने वालों में से एक हूँ। आज से ४६ वर्ष पहले मेरी एक रचना की प्रशंसा करके उन्होंने मेरा उत्साह बढ़ाया था, इसका मुझे आज तक गर्व है।

स्व० महाकवि पं० श्रीधर पाठक

शङ्करजी की कथन-शैली अपने ढंग की निराली है और भाव कुछ पुराने और कुछ नये सम्मिलित हैं, जिनमें बहुत कुछ चेतावनी, प्रोत्साहन और उपदेश पाये जाते हैं, जिनसे प्रौढ़ पाठकों को निज-निज रुचि अनुसार आनन्द प्राप्त होता है। शङ्करजी के कविता-पाठ से चित्त में सच्चा आनन्दोल्लास उत्थित होता है।

हिन्दी और संस्कृत के प्रसिद्ध विद्वान्

श्री सेठ कन्हैयालालजी पोद्दार

स्वर्गीय आशु कवि श्री शङ्करजी उन प्रतिभाशाली गण्य मान्य महाकवियों में थे, जिनके रिक्त स्थान की पूर्ति होना असम्भव नहीं तो महान् दुःसम्भव तो अवश्य ही है। शङ्करजी की कविता-कृतियों के दर्शन मात्र से मैं उनकी आराधना करता रहा हूँ।

श्री पं० बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'

शङ्करजी शब्दों के स्वामी, भाषा के अधीश्वर, मुहाविरों के सिरजनहार और साहित्य के अक्खड़ पहलवान थे। पूजार्ह शङ्करजी में शब्द-निर्माण की क्षमता असाधारण रूप से विद्यमान थी। जिस तरह स्वर्गीय अकबर इलाहाबादी अपने ढंग के अनूठे कवि हो गये हैं, उसी तरह कविवर शङ्करजी का रंग भी निराला है और उन्हें अभी तक किसी ने नहीं पाया है। राष्ट्र के उस नेत्रोन्मीलन के युग में, प्रभात की उस बेला में, प्रथम रवि-रश्मि-स्नात उस घटिका में जिन विहगों ने अपने विभास, भैरव, भैरवी और आसावरी के नव-जीवन-प्रद स्वरों में उद्बोधन के, जागरण के, विनाश और नव निर्माण के गीत सुनाये, उनमें पूजनीय स्वर्गीय पं० नाथूरामशंकर शर्मा भी थे। उनकी दिवंगत आत्मा हमें सत्साहित्य की ओर प्रेरित करती रहे, यही हमारी हार्दिक प्रार्थना है।

सुप्रसिद्ध साहित्यकार

श्री पं० उदयशंकर भट्ट

हिन्दी के अन्यतम प्राचीन कवि श्री शङ्करजी के स्थान की क्षति-पूर्ति कभी हो सकेगी, ऐसी आशा नहीं है। श्री शङ्करजी का कविता-क्षेत्र हिन्दी संसार में अपना अनूठा एवम् हृदयग्राही स्थान रखता है। मैं बचपन से इनकी कविता का प्रेमी रहा हूँ।

डाक्टर श्री धीरेन्द्र वर्मा, एम० ए०

अध्यक्ष–हिन्दी विभाग, प्रयाग विश्वविद्यालय

शङ्करजी की कवितायें हिन्दी काव्य में अनोखा स्थान रखती हैं। उनकी अधिकांश आधुनिक कवितायें प्राचीन परिपाटी को लिये हुए हैं। कुछ राजनीतिक प्रभावों से प्रभावित हैं। शङ्करजी ने समाज की शेष समस्त समस्याओं की ओर अपनी अभूतपूर्व शैली में हिन्दुओं का ध्यान आकर्षित किया था।

श्री रमाकान्त मालवीय

प्रधान-मन्त्री, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

हिन्दी साहित्य के पुराने सेवक तथा खड़ी बोली के कवि-सम्राट् शङ्करजी का देहावसान हो गया, यह महान् दुःख की बात है। कवि-सम्राट् श्री शङ्करजी ने हिन्दी साहित्य की खड़ी बोली द्वारा जो सेवा की है, वह हिन्दी संसार के कोने-कोने में दिखाई पड़ती है। हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन प्रयाग ने उनके स्वर्गारोहण का संवाद सुन प्रयाग निवासी हिन्दी प्रेमी जनता की एक महती सभा कर शोक-सहानुभूति-सूचक प्रस्ताव पास किया।

श्री बालकृष्ण राव, आई० सी० एस०

शङ्करजी बड़े लोकप्रिय और सुप्रसिद्ध कवि थे। उनकी गणना हिन्दी के महाकवियों में उचित रूप से की जाती थी। खड़ी बोली के कविता-क्षेत्र में वे अग्रगण्य थे। छन्दःशास्त्र सम्बन्धी उनका ज्ञान असीम था। ओज, प्रवाह, गांभीर्य और सूक्ष्मदर्शिता उनकी कविता

के विशेष गुण हैं। एक विशेषता शङ्करजी में यह थी—जो अन्यत्र देखने में नहीं आती—वे मात्रिक और मुक्तक छन्दों में भी समान वर्ण रखते थे। रीतिकाल के कई पुराने और प्रसिद्ध कवियों की अपेक्षा उनका काव्य-कौशल उत्कृष्ट था। शङ्करजी के उठजाने से हिन्दी-साहित्याकाश का एक देदीप्यमान नक्षत्र अस्त हो गया।

गीतावली

मङ्गलाचरण

जो सर्वज्ञ, सुकवि, सुखदाता, विश्व-विलास-विधाता है,
जो नव द्रव्य-योग उमगाता, शुद्ध एक रस पाता है।
अपनाते हैं जिस अक्षर को क्षणिक रूप, क्षर नाम,
शंकर, उस प्यारे शंकर को कर कर जोड़ प्रणाम।

ओमाराधन

ओमनेक बार बोल,
प्रेम के प्रयोगी ।

है यही अनादि नाद, निर्विकल्प निर्विवाद,
भूलते न पूज्यपाद, वीतराग योगी ।

वेद को प्रमाण मान, अर्थ-योजना बखान,
गारहे गुणी सुजान, साधु स्वर्गभोगी ।

ध्यान में धरें विरक्त, भाव से भजें सुभक्त,
त्यागते अघी अशक्त, पोच पाप-रोगी ।

शंकरादि नित्य नाम, जो जपे विसार काम,
तो बने विवेक-धाम, मुक्ति क्यों न होगी ।

ओमर्थज्ञान

ओमक्षर अखिलाधार,
जिसने जान लिया ।

एक, अखण्ड, अकाय, असङ्गी, अद्वितीय, अविकार,
व्यापक, ब्रह्म, विशुद्ध विधाता, विश्व, विश्वभरतार—
को पहचान लिया ।

भूतनाथ, भुवनेश, स्वयंभू, अभय, भावभण्डार,
नित्य, निरञ्जन, न्यायनियन्ता, निर्गुण, निगमागार—
मनु को मान लिया ।

करुणाकन्द, कृपालु, अकर्त्ता, कर्महीन करतार,
परमानन्द, पयोधि, प्रतापी, पूरण, परमोदार—
से सुखदान लिया ।

सत्य सनातन श्रीशंकर को समझा सबका सार,
अपना जीवन-बेड़ा उसने भवसागर से पार—
करना ठान लिया ।

विश्वरूप ब्रह्म

यों शुद्ध सच्चिदानन्द,
ब्रह्म को बतलाता है वेद।

केवल एक अनेक बना है, निर्विवेक सविवेक बना है,
रूपहीन बन गया रँगीला लोहित, श्याम, सफेद।

टिका अखण्ड समष्टि रूपसे, खण्डित विचरे व्यष्टि रूपसे,
जड़-चैतन्य विशिष्ट रूपसे रहे अभेद-सभेद।

पूरण प्रेम-पयोधि प्रतापी, मङ्गल-मूल महेश मिलापी,
सिद्ध एकरस सर्व-हितैषी, कहीं न अन्तर, छेद।

विश्व-विधायक विश्वम्भर है, सत्य सनातन श्रीशंकर है,
विमल विचारशील भक्तों के, दूर करे भ्रम-खेद।

कर्तार-कीर्तन

पूरण पुरुष परम सुखदाता,
हम सब को करतार है।

मंगल-मूल अमंगल हारी, अगम अगोचर अज अविकारी,
शिव सच्चिदानन्द अविनाशी, एक अखण्ड अपार है।

बिन कर करे, चरण बिन डोले, बिन दृग देखे, मुख बिन बोले,
बिन श्रुति सुने, नाक बिन सूँघे, मन बिन करत विचार है।

उपजावे, धारे, संहारे, रच-रच बारम्बार बिगारे,
दिव्य दृश्य जाकी रचना को यह सारो संसार है।

प्राण प्राण को, जीवन जी को, स्वाभाविक स्वामी सब ही को,
इष्ट देव साँचे सन्तन को, शंकर को भरतार है।

जागती ज्योति

निरखो नयन ज्ञान के खोल,
प्रभु की ज्योति जगमगाती है।

देखो, दमक रही सब ठौर, चमके नहीं कहीं कुछ और,
प्यारी हम सब की सिरमौर, उज्ज्वल अंकुर उपजाती है।

जिसने त्यागे विषय-विकार, मन में धारे विमल विचार,
समझा सदुपदेश का सार, उस को महिमा दरसाती है।

जिसको किया कुमति ने अन्ध, बिगड़ा जीवन का सुप्रबन्ध,
कुछ भी रहा न तप का गन्ध, झलके, पर न उसे पाती है!

जिसने झंझट की झर झेल, परखे जड़-चेतन के खेल,
अपना किया निरन्तर मेल, शंकर उसको अपनाती है।

निर्लेप ब्रह्म

तुझ में रहे सर्व संघात,
फिर भी सबसे न्यारा तू है।

उमगा ज्ञान-क्रिया का मेल, ठानी गौणिक ठेलमठेल,
खोला चेतन-जड़ का खेल, इसका कारण सारा तू है।

उपजा सारहीन संसार, आकर चार, अनेकाकार,
जिनमें जीवों के परिवार, प्रकटे पालनहारा तू है।

सब का साथी, सबसे दूर, सब में पाता है भरपूर,
कोमल, कड़े, क्रूर, अक्रूर, सब का एक सहारा तू है।

जिन पै पड़े भूल के फन्द, क्या समझेंगे वे मतिमन्द,
उन को होगा परमानन्द, शंकर जिन का प्यारा तू है।

परमात्मा का प्यार

जगदाधार दयालु उदार,
जिस पर पूरा प्यार करेगा।

उसकी बिगड़ी चाल सुधार, सिर से भ्रम का भूत उतार,
दे कर मङ्गलमूल विचार, उसमें उत्तम भाव भरेगा।

दैहिक, दैविक, भौतिक ताप, दाहक दम्भ कुकर्म-कलाप,
अगले-पिछले सञ्चित पाप, लेकर साथ प्रमाद मरेगा।

कर के तन, मन, वाणी शुद्ध, जीवन धार धर्म-अविरुद्ध,
बनकर बोध-विहारी बुद्ध, दुस्तर मोह-समुद्र तरेगा।

अनुचित भोगों से मुख मोड़, अस्थिर विषय-वासना छोड़,
बन्धन जन्म-मरण के तोड़, शंकर मुक्त-स्वरूप धरेगा।

हिरण्यगर्भ

सुख-दाता तू प्रभु मेरा है।
तेरी परम शुद्ध सत्ता में, सब का विशद बसेरा है।
सुख-दाता तू प्रभु मेरा है।
केवल तेरे एक देश ने, घटक प्रकृति का घेरा है।
सुख-दाता तू प्रभु मेरा है।
तू सर्वस्व सकल जीवों का, किस पर प्यार न तेरा है।
सुख-दाता तू प्रभु मेरा है।
दीनबन्धु तेरी प्रभुता का, जड़-मति शंकर चेरा है।
सुख-दाता तू प्रभु मेरा है।

प्रभु का रुद्र रूप

जिस अविनाशी से डरते हैं,
भूत, देव, जड़, चेतन सारे।

जिसके डर से अम्बर बोले, उग्र मन्द गति मारुत डोले,
पावक जले, प्रवाहित पानी, युगल वेग वसुधा ने धारे।

जिसका दण्ड दसों दिस धावे, काल डरे, ऋतु-चक्र चलावे,
बरसें मेघ, दामिनी दमके, भानु तपे, चमकें शशि-तारे।

मन को जिसका कोप डरावे, घेर प्रकृति को नाच नचावे,
जीव कर्म-फल भोग रहे हैं, जीवन, जन्म-मरण के मारे।

जो भय मान धर्म धरते हैं, शंकर कर्म-योग करते हैं,
वे विवेक-वारिधि बड़ भागी, बनते हैं उस प्रभु के प्यारे।

सत्य विश्वास

जिस में तेरा नहीं विकास,
ऐसा कोई फूल नहीं है।

मैंने देख लिया सब ठौर, तुझ-सा मिला न कोई और,
सब का एक तुही सिरमौर, इस में कुछ भी भूल नहीं है।

तुझ से मिल कर करुणा-कन्द, मुनिवर पाते हैं आनन्द,
तेरा प्रेम सच्चिदानन्द, किस को मंगल-मूल नहीं है।

प्रेमी भक्त प्रमाद विसार, माँगें मुक्ति पुकार-पुकार,
सब का होगा सर्व सुधार, जो पै तू प्रतिकूल नहीं है।

सत्य सनातन धर्म

हे जगदीश देव, मन मेरा—
सत्य सनातन धर्म न छोड़े।

सुख में तुझ को भूल न जावे, नेक न संकट में घबरावे,
धीर कहाय अधीर न होवे, तमक न तार क्षमा का तोड़े।

त्याग जीव के जीवन-पथ को, टेढ़ा हाँक न दे तन-रथ को,
अति चञ्चल इन्द्रिय-घोड़ों को, भ्रम से उलटी बाग न मोड़े।

होकर शुद्ध महा व्रत धारे, मलिन किसी का माल न मारे,
धार घमण्ड क्रोध-पाहन से, हा न प्रेम-रस का घट फोड़े।

ऊँचे विमल विचार चढ़ावे, तप से प्रातिभ ज्ञान बढ़ावे,
हठ तज मान करे विद्या का, शंकर श्रुति का सार निचोड़े।

हितकारी नाथ

हितकारी तुझ-सा नाथ,
न अपना और कहीं कोई।

शुद्ध किया पानी से तन को, सत्यामृत से मैले मन को,
बुद्धि मलीन ज्ञान-गंगा में बार-बार धोई।

ज्वलित ज्योति विद्या की जागी, रही न भूल अविद्या भागी,
कर्म-सुधार, मोह की माया खोज-खोज खोई।

मार तपोबल के अंगारे, पातक-पुञ्ज पजारे सारे,
उमगा योग आत्मा अपना भाव भूल भोई।

शंकर पाय सहारा तेरा, होगा सिद्ध मनोरथ मेरा,
दीनदयालु इसी से मैंने प्रेम-बेलि बोई।

अभिलाषा

ऐसी अमित कृपा कर प्यारे ।
मेघ महा भ्रम के उड़ जावें तर्क-पवन के मारे,
दिव्य ज्ञान-दिनकर के आगे खिलें न दुर्मत-तारे ।
संचित सिद्ध सुधारें हम को, छूटें अवगुण सारे,
उमगे न्याय-नीति की महिमा, विकसें भाव हमारे ।
रहें न जन पौरुप के प्रेमी सुख-समाज से न्यारे,
डूब मरें संकट-सागर में, पतित प्रेम-हत्यारे ।
अबतो सुन पुकार पुत्रों की, हे पितु पालन हारे,
शंकर क्या हम-से बहुतेरे, अधम नहीं उद्धारे !

व्याकुल-विलाप

हे प्रभु मेरी ओर निहार ।
एक अविद्या का अटका है, पचरङ्गी परिवार,
मेल मिलाय एषणा तीनों, करती हैं कुविचार ।
काट रहे कामादि कुचाली, धार कुकर्म-कुठार,
जीवन-वृक्ष खसाया, सूखा पौरुप-पाल-पसार ।
घेर रहे वैरी विषयों के, बन्धन रूप विकार,
लाद दिये सब ने पापों के, सिर पर भारी भार ।
जो तू करता है पतितों का, अपनाकर उद्धार,
तो शंकर मुझ पापी को भी, भव-सागर से तार ।

अबोध अधम

मुझ-सा कौन अबोध अधम है !

समता मिटी सत्व-रज-तम की, गौणिक विकृति विषम है,
सुखद विवेक-प्रकाश कहाँ है, नरक-रूप भ्रम-तम है ।
मन में विषय-विकार भरे हैं, तन में अकड़ न कम है,
रहा न प्रेम-विलास वचन में, तनक न त्रिक संयम है ।
विकट वितण्डावाद निगम है, कपट जटिल आगम है,
ंगल मूल मनोरथ अपना, अनुपकार अनुपम है ।
प्रब कुछ धर्म-भाव उपजा है, यह अवसर उत्तम है,
ार करुणा-सागर शंकर का, न्याय न निपट नरम है ।

हताश

डगमग डोले दीनानाथ,
नैया भव-सागर में मेरी ।

मैंने भर-भर जीवन-भार, छोड़े तन-बोहित बहुबार,
पहुँचा एक नहीं उस पार, यह भी काल-चक्र ने घेरी ।
टूटा मेरुदण्ड-पतवार, कर-पग-पाते चलें न चार,
मानी मन-माझी ने हार, दरसे दुर्गति-रात अँधेरी ।
ऊलें अघ, झष-नक्र, भुजङ्ग, झटकें-पटकें ताप-तरङ्ग,
मिलकर कर्म-पवन के सङ्ग, तरणी भरती है चकफेरी ।
ठोकर मरणाचल की खाय, फट कर डूब जायगी हाय,
शंकर अबतो पार लगाय, सेरी मार सही बहुतेरी ।

विनय

विधाता तू हमारा है, तुही विज्ञान दाता है,
बिना तेरी दया कोई, नहीं आनन्द पाता है।
तितिक्षा की कसोटी से, जिसे तू जाँच लेता है,
उसी विद्याधिकारी को, अविद्या से छुड़ाता है।
सताता जो न औरों को, न धोखा आप खाता है,
वही सद्भक्त है तेरा, सदाचारी कहाता है।
सदा जो न्याय का प्यारी, प्रजा को दान देता है,
महाराजा, उसी को तू, बड़ा राजा बनाता है।
तजे जो धर्म को, धारा, कुकर्मों की बहाता है,
न ऐसे नीच-पापी को, कभी ऊँचा चढ़ाता है।
स्वयंभू शंकरानन्दी, तुझे जो जान लेता है,
वही कैवल्य सत्ता की, महत्ता में समाता है।

सद्गुरु-महिमा

श्रीगुरु गूढ़ ज्ञान के दानी।
देख सर्व-संघात ब्रह्म की अटल एकता जानी,
भेदों से भरपूर अविद्या भूल-भरी पहचानी।
एक वस्तु में तीन गुणों को मायिक महिमा मानी,
ठोस-पोल की तारतम्यता, मूल प्रकृति ने ठानी।
देश, दिशा, आकाश, काल, भू, मारुत, पावक, पानी,
इनके साथ जीव की जागी, ज्योति मनोरस सानी।
छोटा-सा उपदेश दिया है, बढ़िया बात बखानी,
तो भी मूढ़ नहीं समझेंगे, शङ्कर कूट कहानी।

सद्गुरु-गौरव

जिसमें सत्य सबोध रहेगा,
कौन उसे सद्गुरु न कहेगा।

जो विचार विचरेगा मन में, अर्थ बसेगा वही वचन में,
भेद न होगा कर्म-कथन में, तीनों में रस एक बहेगा।

सद्गुण-गण-गौरव तोलेगा, पोल कपट-छल की खोलेगा,
जय प्रमाण-प्रण की बोलेगा, मार मार-भट की न सहेगा।

मोह-महासुर से न डरेगा, कुटिलों में ऋजु भाव भरेगा,
उन्नति के उपदेश करेगा, गैल अधोगति की न गहेगा।

धर्म सुधार अधर्म तजेगा, योग-सिद्ध शुभ साज सजेगा,
शंकर को धर ध्यान भजेगा, दुःख-हुताशन में न दहेगा।

गुरु-गौरव

श्री गुरुदेव दयालु हमारे,
बड़भागी हम सेवक सारे।

बाल ब्रह्मचारी बुध नीके, जीवनमुक्त सुधाम सुधी के,
साँचे शुभचिन्तक सब ही के, विरति-वाटिका के रखवारे।

धर्मवीर सागर साहस के, रसिया सामाजिक सुख-रस के,
दिन-नायक उपदेश-दिवस के, मोह महातम टारन हारे।

दीपक पर-उपकार-सदन के, दावानल अवगुण-गण-वन के,
पंचानन अघ-ओघ मृगन के, कीरति-कामिनि के चखतारे।

ध्रुव सम्राट समाधि-धरा के, रक्षक रानी-ऋतम्भरा के,
प्रेमी अपरा और परा के, परम सिद्ध शङ्कर के प्यारे।

गजेन्द्र-मोक्ष

वाह सतगुरु, वाह सतगुरु, वाह सतगुरु वाह !

मोह मारग में डरो-सो, फिरत व्याकुल बावरो-सो,
काल-केहरि को सतायो जीव-कुञ्जर-नाह—
भूलो बोध-वन की राह।

आधि-आतप ने तपायो, योनि-सरिता-तीर आयो,
जन्म, जीवन, मरण जा में, अमित आप अथाह—
आवागमन प्रबल प्रवाह।

आस-प्यास न रोक पाई, घुस परो धारा मझाई,
द्वन्द्व दल-दल माहिं जूझो, कर्म-बन्धन ग्राह—
कर आखेट को उत्साह।

करि कियो बलहीन अरिने, आपके उपदेश-हरिने,
धाय धरि छिन में छुड़ायो, मेट दारुण दाह—
शङ्कर कछु न राखी चाह।

कर भला होगा भला

अब तो चेत भला कर भाई।

बालकपन में रहा खिलाड़ी, निकल गई तरुणाई,
बहुत बुढ़ापे के दिन बीते, उपजी पर न भलाई।
धर्म, प्रेम. विद्या, बल, धन की, करी न प्रचुर कमाई,
इनके विना बटोर न पाई, सुयश बगार बड़ाई।
पिछले कर्म बिगाड़ चुका है, अगली विधि न बनाई,
चलने की सुधि भूल रहा है, सुमति समीप न आई।
संकट काट नहीं सकती है, कपट-भरी चतुराई,
ब्रह्म-ज्ञान बिन हाय किसी ने, शङ्कर सुगति न पाई।

नरक-निदर्शन

हम सब एक पिता के पूत

हा ! विशाल मानव-मण्डल में, उपजे उद्धत ऊत,
मान लिये इन मतवालों ने, भिन्न-भिन्न मत-भूत ।
सामाजिक बल को लग बैठी, छल की छूत अछूत,
जल कर जाति-पाँति ने तोड़ा, सुख-साधन का सूत ।
प्रभुता पाय दहाड़ रहे हैं, सबल रुद्र के दूत,
पिण्ड पड़ी कुटिला कुनीति की, रोष-भरी करतूत ।
भड़क रही तीनों नरकों में, अड़ की आग अकूत,
शंकर कौन बुझावे इस को, बिन विवेक-जीमूत ।

आत्म-शोधन

बिगड़ा जीवन-जन्म सुधार

खेल न खेल मूढ़-मण्डल में, कर विवेक पर प्यार,
छल-बल छोड़ मोह-माया के हितकर सत्य पसार ।
बन्धन काट कड़े विषयों के, वश कर मन को मार,
अस्थिर भोग भोग मत भूले, सब को समझ असार ।
छाक न छल से छीन पराई, बाँट सुकृति-उपहार,
मत सोचे अपकार किसी का, करले पर-उपकार ।
पल-भर भी भूले मत भाई, हरि को भज हर बार,
चेत, चार फल देगा तुझको, शंकर परम उदार ।

अर्थाभिमानी

तेरे अस्थिर हैं सब ठाठ,
इन पर क्यों घमण्ड करता है ।

भिक्षुक और मेदिनीनाथ, भव तज भागे रीते हाथ,
क्या कुछ गया किसी के साथ, तो भी तू न ध्यान धरता है ।

उतरी लड़काई की भंग, टूटा तरुणाई का तंग,
जमने लगा जरा का रंग, भूला नेक नहीं डरता है ।

होगा मरण-काल का योग, तुझ से छूटेंगे सुख-भोग
आकर पूछेंगे पुर-लोग, अब क्यों अभिमानी मरता है ।

प्यारे चेत प्रमाद विसार, करले औरों का उपकार,
शंकर-स्वामी को उर धार, यों सद्भक्त जीव तरता है ।

पछतावा

रस चाट चुका लघु जीवन का,
पर लालच हा न मिटा मन का ।

गत शैशव उद्धत ऊल गया, उमगा नव यौवन फूल गया,
उपजाय जरा तन भूल गया, अटका लटका सटकापन* का ।

कुल में सविलास विहार किये, अनुकूल घने परिवार किये,
विधि के विपरीत विचार किये, धर ध्यान वधू-वसुधा-धन का ।

पिछले अपराध पछाड़ रहे, अब के अघ, दोष दहाड़ रहे,
उर दुःख अनागत फाड़ रहे, भभका भय शोक-हुताशन का ।

रच ढोंग प्रपञ्च पसार चुका, सब ठौर फिरा झख मार चुका,
शठ शंकर साहस हार चुका, अब तो रट नाम निरंजन का ।

---

*सटकापन=लाठी के सहारे डगमगा कर चलना

निषिद्धोन्नति

रहोरे साधो,
उस उन्नति से दूर।

जिस के साथी लघु छाया के, उपजे ताड़ खजूर,
फलखौआ ऊँचे चढ़ते हैं, गिरें तो चकनाचूर।

जिस से मान बढ़े मूढ़ों का, पण्डित बने मजूर,
आदर पावे बास बसा की, ठोकर खाय कपूर।

जिस के द्वारा उच्च कहाये, कृपण, कुचाली, क्रूर,
मुक्ता बने न्याय-सागर के, हठ-सर के शालूर।

जिस के ऊँट नीचता लादें, यश चाहें भरपूर,
हा! शंकर पापी बन बैठे, पुण्य-समर के शूर।

धर्मधुरन्धर

ध्रुवता धार धर्म के काम,
धोरी धीर-वीर करते हैं।

करते उत्तम कर्मारम्भ, सुकृती गाड़ें सुकृतस्तम्भ,
नामी निरभिमान निर्दम्भ, दुष्टों से न कभी डरते हैं।

लचण अनुत्साह के झाड़, उर आलस्यासुर का फाड़,
कतरें कठिनाई की आड़, संकट औरों के हरते हैं।

प्यारे पौरुष प्रेम पसार, विचरें विद्या-बल विस्तार,
बाँटें निज कृत आविष्कार, उद्यम देशों में भरते हैं।

प्रेमी पूरा सुयश कमाय, ब्रह्मानन्द महा फल पाय,
शंकर स्वामी के गुण गाय, ज्ञानी शोक-सिन्धु तरते हैं।

उलाहना

चूका चाल अचेत अनारी,
नारायण को भूल रहा है।

जीवन, जन्म वृथा खोता है, वीज अमङ्गल के बोता है,
खेल पसार मोह-माया के, अङ्गों के अनुकूल रहा है।

यह मेरा है, वह तेरा है, ममता-परता ने घेरा है,
झंझट-झगड़ों के झूले पै, झकझोटों में झूल रहा है।

भोग-विलास रसीले पाये, दारा-पुत्र मिले मनभाये,
मानो मृग-तृष्णा के जल में, व्योम-पुष्प-सा फूल रहा है।

शंकर अन्त-काल आवेगा, कुछ भी साथ न लेजावेगा,
झूठी उन्नति के अभिमानी, क्यों कुसंग में ऊल रहा है।

उपालम्भ

दुर्लभ नर-तन पाय के,
कुछ कर न सका रे।

घोर कुकर्म महा पापों से, पल-भर भी पछताय के,
ठग डर न सका रे।

हा ! प्यारे मानव-मण्डल में, सुकृति-सुधा बरसाय के,
यश भर न सका रे।

वैदिक देवों के चरणों पै, सेवक सरल कहाय के,
सिर धर न सका रे।

दीन-बन्धु शंकर स्वामी से, मन की लगन लगाय के,
भव तर न सका रे।

बेड़ा पार

अब तो वाद-विवाद विसार।

वीर बहाय जाति-जगती पर प्रेम-सुधा की धार,
धारा में नीकी करनी की नयी नवरिया डार।

तू केवट बन ता करनी को दान-वेणु कर धार,
जीवन के वासर पथिकन को गिन-गिन पार उतार।

पर उपकार-भार भर रीते रहें न साधन हार,
वेतस के मिस तोहि मिलेंगे मनमाने फल चार।

ऐसो ही उपदेश देत हैं वेद पुकार-पुकार,
शंकर औसर पै मत चूके करले बेड़ा पार।

संशयात्मा

हमने असार संसार को, छोड़ा पर छोड़ न पाया।

कर सत्संग चरित्र सुधारे,
भोग-विलास विसारे सारे,
रहे लोक-लीला से न्यारे—
मार विचार-कुठार को, भ्रम का शिर फोड़ न पाया।

मेल समोद महाव्रत मन में,
धरि मुनि-वेश बसे कानन में,
ध्यान लगाय योग-साधन में—
मथ कर ज्ञानागार को, पीयूष निचोड़ न पाया।

पाँचों भूतों को पहचाना,
मिला जीव का ठीक ठिकाना,
जड़-चेतन-मय सब जग जाना—
अविनाशी करतार को, अपने में जोड़ न पाया।

परम सिद्ध ऋषिराज कहाये,
नित सुकर्म-सागर में न्हाये,
अब तो दिवस अंत के आये—
जन्म-मरण के तार को कवि शंकर तोड़ न पाया

जीवन-काल

जीवन बीत रहा अनमोल,
इसको कौन रोक सकता है।

चलता काल टिके कब हाय, सटके सब को नाच नचाय,
लपका लपके किसे न खाय, अस्थिर नेक नहीं थकता है।

हायन, मास, पक्ष सित-श्याम, तैथिक मान रात-दिन याम
भागें घटिका-पल अविराम, क्षण को भी न पैर पकता है।

सरकें वर्तमान बन भूत, गति का गहे अनागत सूत,
त्रिकली, द्रुतगामी, रविदूत, किसकी छाक नहीं छकता है।

सब जग दौड़े इसके साथ, लगता हा, न विपल भी हाथ,
सुनलो रंक और नरनाथ, शंकर वृथा नहीं बकता है॥

जीवन-धन

लुट गयो धींग धनी धन तेरो।

मंजिल दूर पोच रथ पै चढ़ि, घर ते चलो अबेरो,
सूरज अस्त भयो मारग में, कियो न रैन बसेरो।

आधी रात भयानक बन में, तोहि नींद ने घेरो,
चपल तुरंग अचानक चौंके, स्यन्दन सर में गेरो।

सूत-पूत कीचड़ में कचरो, जीवत बचौ न चेरो,
तू अपनी पूँजी लै भागो, अटको आय लुटेरो।

छिन में छीन कमाई सारी, रीते हाथ खदेरो,
सो न रह्यो अब जाहि कहत हो, शंकर मेरो-मेरो।

बुढ़ापा

कैसो कठिन बुढ़ापो आयो।

बल बिन अंग भए सब ढीले, सुन्दर रूप नसायो,
पटके गाल, गिरे दाँतन को, केशन पै रँग छायो।
हाले शीश, कमान भई कटि, टाँगन हूँ बल खायो,
काँपे हाथ बोदरी के बल, डगमग चाल चलायो।
ऊँचो सुने धूँधरो दीखे, वस्तु-बोध हलकायो,
मन में भूल भरी त्यों तन में, रोग-समूह समायो।
डील भयो बेडौल डोकरा, नाम खोय पद पायो,
नाना आदि बाल-मण्डल में, नाना भाँति कहायो।
नातेदार कुटुम्ब परोसी, सबने मान घटायो,
कढ़त न प्राण पेट पापी ने, घर-घर नाच नचायो।
पास न झाँकत पूत-पतोहू, पौरी में पधरायो,
बूँद-बूँद जल, टूक-टूक को, ताँस-ताँस तरसायो।

वे दिन !

कहाँ गए वे दिन बुढ़िया बोल !

तब तू धारत ही या तन पै, सुन्दर रूप अतोल,
अब तो जंग जरा की लागी, उड़ गयो जोबन-झोल।
श्वेत भए सारे कच कारे, पटके कलित कपोल,
भूल गए नैना कमनैती, भूल गए कुच गोल।
जिन पै वारत हे जीवन धन, मन की खिड़की खोल,
आज न ताकत तिन अंगन को, वे रसिया बिन मोल।
अब क्यों डगमगाति डोलति है, इत-उत डामाडोल,
सब तज भज शंकर स्वामी को, पीट प्रेम को ढोल।

विगत यौवना

बीता यौवन तेरा,
बुढ़िया बीता यौवन तेरा ।

धौरा रङ्ग जमाय जरा ने, कृष्ण कचों पर फेरा,
झाड़े दाँत, गाल पटकाये, करडाला मुख झेरा ।

आँखों में टेढ़ी चितवन का, बीर न रहा बसेरा,
फीका आनन-मण्डल मानो, विधु बदली ने घेरा ।

*झोंझ बया के-से कुच झूले, फाड़ मदन का डेरा, +
अब तो पास न झाँके कोई, रसिया रस का चेरा ।

चेत बुढ़ापे को मत खोवे, करले काम सबेरा,
अपनाले शंकर स्वामी को, मंत्र समझले मेरा ।

*घोंसला ×कञ्चुकी

बस बीतचुके !

चलोगे बाबा,
अब क्या प्रभु की ओर !

खेल पसारे बालकपन में, उकसे रहे किशोर,
आगे चल कर चन्द्रमुखी के, चाहक बने चकोर ।

पकड़े प्राणप्रिया वनिता ने, बतलाये चित-चोर,
मारे कन्दुक मदन-दर्प के, गोल उरोज कठोर ।

दुहिता-पुत्र घने उपजाये, भोग बटोर-बटोर,
अगुआ बने बढ़े कुनबा के, पकड़ा पिछला छोर ।

पटके गात्त अङ्ग सब झूले, अटके संकट घोर,
शंकर जीत जरा ने जकड़े, उतरी मद की खोर ।

सौन्दर्य की दुर्दशा

नवेली अलवेली उठ बोल !

वेणी-नागिन विकल पड़ी है, शिथिल माँग मुख खोल,
खंजरीट मृग खोल रहे हैं, नयन-सुयश की पोल ।

लाल अधर बिम्बा-फल सूखे, पड़ गये पीत कपोल,
दशन-मोतियों की लड़ियों का, अब न रहा कुछ मोल ।

कंबु-कण्ठ-कल-कण्ठ न कूके, दबकी दमक अतोल,
गड़ें न रसियों की छतियों में, कठिन पयोधर गोल ।

परखी सब कोमल अङ्गों में, अकड़ टटोल-टटोल,
हा ! शंकर क्या अब न बजेगा, मदन-विजय का ढोल ।

गर्दभ-दुर्दृश्य

घूरे पर घबराय रहा है,
देखो रे इस व्याकुल खर को !

और घने रासभ चरते थे, धँगने धार पेट भरते थे,
छोड़ इसे अनखाय कुम्हारी, सब को हाँक ले गई घर को ।

आगे गुड़हर, घास नहीं है, गढ़ली पोखर पास नहीं है,
हा ! पानी बिन तड़प रहा है, लोटे-पोटे इधर-उधर को ।

लीद लपेटा विकल पड़ा है, चक्र काँच का निकल पड़ा है,
मूत कीच में उछल रही है, ओछी पूँछ डुलाय चमर को ।

घायल घोर कष्ट सहता है, ठौर-ठौर शोणित बहता है,
मार मक्खियाँ भिनक रही हैं, काट रहे हैं कीट कमर को ।

कुक्कुर लंगड़ तोड़ चुके हैं, वायस अँखियाँ फोड़ चुके हैं,
गीदड़ अंतड़ी काढ़ चुके हैं, ताक रहे हैं गिद्ध उदर को ।

मरण-काल ने दीन किया है, अवगति ने बल-हीन किया है,
मींच घींच धर भींच रही है, खींच रही है प्रेत-नगर को ।

जीवन खेल खिलाय चुका है, भोग-विलास बिलाय चुका है,
जीव-हंस अब उड़ जावेगा, त्याग पुराने तन-पञ्जर को।
ऐसा देख अमंगल इसका, कातर चित्त न होगा किस का,
तज अभिमान भजो रे भाई, करुणा-सिन्धु सत्य शंकर को।

जीवनान्त

बारी अब अन्त काल की आई।

भोग-विलास-भरे विषयों की, करता रहा कमाई,
आज साज सब देने पर भी, टिकता नहीं घड़ी-भर भाई।
व्याकुल वनिता ने अँसुओं की, आकर धार बहाई,
पास खड़ा परिवार पुकारे, रोक न सकी सनेह-सगाई।
लगे न ओषधि कविराजों ने, मारक व्याधि बताई,
नेक न चेत रहा चेतन को, बिछुड़ी गैल गमन की पाई।
प्राण-पखेरू तन-पंजर से, भागा कुछ न बसाई,
काल पाय हम सब की होगी, हा शंकर इस भाँति बिदाई।

मृतक शरीर

घर में रहा न रहने वाला।

खोल गया सब द्वार किसी में, लगा न फाटक-ताला,
आय निशंक अदृष्ट बली ने, घेर-घसीट निकाला।
जाने किस पुर की बाखर में, अबकी बार बिठाला,
हा ! प्रासादिक परिवर्तन का, अटका कष्ट-कसाला।
ढंग बिगाड़ दिया मन्दिर का, अंग-भंग कर डाला,
श्रीहत हुआ अमंगल छाया, कहीं न ओज-उजाला।
शंकर ऐसे पर-बन्धन से, पड़े न पल को पाला,
आग लगे इस बन्दी-गृह में, मिले महा सुख-शाला।

मरण

घर को छोड़ गयो घर वारो।

बारह बाट आज कर डारो, अपनो कुनबा सारो,
भोग-बिलास बिसार अकेलो, आप निशंक सिधारो।
शोभा दूर भई बाखर की, धाय धँसो अँधियारो,
चारों ओर उदासी छाई, दिपत न एकहु द्वारो।
आओ रे मिल मित्र-मिलापी, इत-उत खोज निहारो,
कौन देश में जाय बिराजो, कौन गैल गहि प्यारो।
अब काहू बिधि नाहिं मिलेगो, मिट गयो मेल हमारो,
शंकर या सूने मन्दिर को, धीरज धार पजारो।

महा निद्रा

अरी उठ खेल हमारे संग।

आँखें खोल बोल अलबेली, उर उपजाय उमंग,
ऐसो खेल पसार सहेली, होय अलख लख दंग।
करि, केहरि, कपोत, काकोदर, कोकिल, कीर, कुरंग,
कलश, कंज, कोदण्ड, कलाधर, कर सब को रस भंग।
सेज बिसार धरा पर पौढ़ी, उठत न एकहु अंग,
कलित कलेवर को कर डारो, क्यों बिन कोप कुढंग।
अस्त भयो बगराय ताप-तम, शंकर मोद-पतंग,
मुँद गए शोक-सरोज-कोश में, प्रेमिन के मन भ्रंग।

प्रयाण पर अन्योक्ति

है परसों रात सुहाग की,
दिन वर के घर जाने का।

पीहर में न रहेगी प्यारी, हा ! होगी हम सब से न्यारी,
चलने की करले तैयारी, बन मूरति अनुराग की—
धर ध्यान उधर जाने का।

पातिव्रत से प्यारे पति को, जो पूजेगी धार सुमति को,
तो न विसारेगी दुर्गति को, लगन लगा अति लागकी—
प्रण रोप निडर जाने का।

गंगा पावे सत्य वचन की, यमुना आवे सेवा तन की,
हो सरस्वती श्रद्धा मन की, महिमा प्रकट प्रयाग की—
रच रूपक तर जाने का।

शंकर-पुर को तू जावेगी, सुख-संयोगामृत पावेगी,
गीत महोत्सव के गावेगी, सुधि विसार कुल-त्याग की—
सखी सोच न कर जाने का।

अन्योक्ति से उपदेश

सजले साज सजीले सजनी,
मान विसार मनाले वर को।

गौरव-अंगराग मलवाले, मेल-मिलाप तेल डलवाले,
न्हाले शुद्ध सुशील-सलिल से, काढ़ कुमति-मैली चादर को।

ओढ़ सुमति की उज्ज्वल सारी, सद्‌गुण-भूषण धार दुलारी,
सीस गुँदाय नीति-नाइन से, कर टीका करुणा-केसर को।

आदर-अंजन आँज नवेली, खाकर प्रेम-पान अलबेली,
धार प्रसिद्ध सुयश की शोभा, दमकाले आनन सुन्दर को।

मेरी बात मान अवसर है, यौवन-काल बीतने पर है,
तू यदि अब न रिझावेगी तो, फिर न सुहावेगी शंकर को।

विदा

सांची मान सहेली परसों,
पीतम लेबे आवेगो री !

मात-पिता भाई-भौजाई, सबसों राख सनेह-सगाई,
दो दिन हिल-मिल काट यहाँ से—फिर को तोहि पठावेगो री !

अबको छेता नाहिं टरेगो, जानों पिय के संग परेगो,
हम सब को तेरे बिछुरन को—दारुण शोक सतावेगो री !

चलने की तैयारी करले, तोशा बाँध गैल को धरले,
हालाहाल बिदा की बिरियाँ—को पकवान बनावेगो री !

पुर-बाहर लौं पीहर वारे, रोवत संग चलेंगे सारे,
शङ्कर आगे-आगे तेरो—डोला मचकत जावेगो री !

अपूर्व चिन्तन

कौन उपाय करूँ पिय प्यारो,
साथ रहै पर हाथ न आवे ।

चहुँ दिसि दौरी द्वन्द्व मचायो, अचल अचञ्चल पकड़ न पायो,
खुलत न खेलत खेल खिलाड़ी, मोहि खिलौना मान खिलावे ।

पल-भर को कबहूँ न बिसारै, हिल-मिल मेरो रूप निहारै,
रसिक शिरोमणि मो विरहिनि को, हा, अपनो मुखड़ा न दिखावे ।

माया-मय मनमोहन हारे, अद्भुत योग-वियोग पसारे,
या विहार थल के भोगन को, आप न भोग, मोहि भुगावे ।

करि हारी साधन बहुतेरे, होत न सिद्ध मनोरथ मेरे,
दोष कहा शंकर स्वामी को, कुटिल कर्म-गति नाच नचावे ।

पिय-मिलन

आज अली बिछुरो पिय पायो,
मिट गये सकल कलेश री !

सागर, ताल, नदी, नद-नारे, ग्राम, नगर, गिरि-कानन सारे,
एक न छोड़ो ढूँढफिरी मैं, भटकी देश-बिदेश री !
मैं बिरहिनि ऐसी बौरानी, सीखत डोली कपट कहानी,
घेर-घेर लोगन बहकाई, कर कोरे उपदेश री !
बीत गई सारी तरुनाई, पर प्यारे की थाँग न पाई,
खोजत-खोजत मो दुखिया के, धौरे है गए केश री !
योगी एक अचानक आयो, जिन मेरो भरतार बतायो,
सो शङ्कर साँचो हितकारी, भ्रम-तम-पटल-दिनेश री !

योग पर अन्योक्ति

आज मिला बिछुड़ा बर मेरा,
पाया अचल सुहाग री !

भभका बेग वियोगानल का, स्रोत जलाया धीरज-जल का,
डूबी सुरत-प्रेम-सागर में, बुझी न उर की आग री !
इत-उत थाँग लगाती डोली, ठगियों की ठनगई ठठोली,
हुआ न सिद्ध मनोरथ तो भी, और बढ़ा अनुराग री !
ठौर-ठौर भटकी-भटकाई, सुधि न प्राण-वल्लभ की पाई,
साहस ने पर हार न मानी, लगी लगन की लाग री !
एक दया-निधि ने कर दाया, तुरत ठिकाना ठीक बताया,
पहुँची पास पिया शंकर के, इस बिधि जागे भाग री !

योगोद्धार

मिल जाने का ठीक ठिकाना—
अब तो जानारे।

बैठ गया विज्ञान-कोष पै, गुरु-गौरव का थाना,
प्रेम-पन्थ में भेड़चाल से, पड़ा न मेल मिलाना,
बदला बानारे, अब तो जानारे।

मतवालों की भाँति न भावे, वाद-विवाद बढ़ाना,
समता ने सारे अपनाये, किस को कहूँ बिराना,
महिमा गानारे, अब तो जानारे।

विद्याधार वेद ने जिस को, ब्रह्म विशुद्ध बखाना,
भागी भूल आज उस प्यारे, शंकर को पहचाना,
मिलना ठानारे, अब तो जानारे।

तोते पर अन्योक्ति

तोते तू तेरे करतब ने
इस बन्धन में डाला है रे!

सुन सीखे जो शब्द हमारे, उनको बोल रहा है प्यारे,
मिट्ठू तुझे इसी कारण से, कनरसियों ने पाला है रे!

हा! कोटर में बास नहीं है, प्यारा कुनबा पास नहीं है,
लोह-तीलियों का घर पाया, अटका कष्ट-कसाला है रे!

सुआ सैकड़ों पढ़ने वाले, पकड़ बिल्लियों ने खा डाले,
तू भी कल कुत्ते के मुख से, प्राण बचाय निकाला है रे!

पञ्जे नहीं छुड़ा सकते हैं, हाय न पंख उड़ा सकते हैं,
चोंच न काटेगी पिंजड़े को, शंकर ही रखवाला है रे!

सद्सम्मेलन

पाया सदसदुभय संयोग

चतुर चातुरी से कर देखो, अमित यत्न उद्योग,
इनका हुआ न है न होगा अन्तर युक्त वियोग।
कोन मिटावे जड़-चेतन का, स्वाभाविक अतियोग,
ठोस-पोल के अलग न होगी, वृथा उपाय-प्रयोग।
अटका यही सकल जीवों से, बाधक-बन्धन-रोग,
जीवन, जन्म-मरण के द्वारा, रहे कर्म-फल भोग।
जीवनमुक्त महापुरुषों के, मान अमोग नियोग।
धार विवेक बुद्ध बनते हैं, शंकर बिरले लोग।

कूटोक्ति

कुछनहीं, कुछ में समाया कुछ नहीं,
कुछ न कुछ का भेद पाया, कुछ नहीं।
एकरस कुछ है नहीं कुछ दूसरा,
कुछ नहीं बिगड़ा, बनाया कुछ नहीं।
कुछ न उलझा, कुछ नहीं के जाल में,
कुछ पड़ा पाया, गमाया कुछ नहीं।
बन गया कुछ और से कुछ और ही,
जान कर कुछ भी जनाया कुछ नहीं।
कुछ न मैं, तू कुछ नहीं, कुछ और है,
कुछ नहीं अपना, पराया कुछ नहीं।
निधि मिली जिसको न कुछके मेलकी,
उस अबुध के हाथ आया कुछ नहीं।
वह वृथा अनमोल जीवन खो रहा,
धर्म-धन जिसने कमाया कुछ नहीं।
अब निरन्तर मेल शंकर से हुआ,
कर सकी अनमेल माया कुछ नहीं।

भूल की भरमार

भारी भूल में रे,
भोले भूले-भूले डोलें।

डाल युक्ति के बाट न जिसको, तर्क-तुला पर तोलें,
अन्धों की अटकल से उसको, टेक टिकाय टटोलें।

पाय प्रकाश सत्य सविता का, आँख उलूक न खोलें,
अभिमानी अन्धेर अधम की, जाग-जाग जय बोलें।

पोच प्रपञ्च पसार प्रमादी, झंझट को झकझोलें,
स्वर्ग-सहोदर प्रेमामृत में, वज्र वैर-विष घोलें।

हम तो शठता त्याग सँगाती, सदुपदेश के होलें,
शंकर समता की सरिता में, तन, मन, वाणी धोलें।

वेदान्त-विलास

बाँके बिहारी की बाजी बँसुरिया।

वंशी की तानें सुनें सारी-सखियाँ,
साड़ी सजें धौरी, कालो, सिंदुरिया।

देखे-दिखावे जिसे रास-रसिया,
फोड़े उसीकी रसीली कमुरिया।

सोवै न जागे न देखे न सपना,
प्यारी की चौथी अवस्था है तुरिया।

माया के धागे में मनके पिरोये,
न्यारा नहीं कोई माला से गुरिया।

सत्ता पखुरियों की फूलों में फूली,
फूलों की सत्ता में पाई पखुरिया।

राजा कहाता है जो सारे ब्रज का,
ऊधो, उसे कैसे मानें मथुरिया।

टेढ़ी न भावे त्रिभंगी ललन को,
सोधी करी शंकरा-सी कुबरिया।

हेत्वाभास

साधन धर्म का रे,
कर्माभास न हो सकता है।

पैर पसार प्रसुप्तों के-से, कपटी सो सकता है,
निद्राहीन बोध विषयों का, कभी न खो सकता है।

पढ़-पढ़ बोझा सद्ग्रन्थों का, पढुआ ढो सकता है,
बिन विज्ञान परा विद्या का, बीज न बो सकता है।

भक्त कहाने को ठाकुर का, ठग भी रो सकता है,
क्या शंकर के प्रेमामृत में, चञ्चु भिगो सकता है।

आत्मा और परमात्मा

अजन्मा न आरम्भ तेरा हुआ है, किसी से नहीं जन्म मेरा हुआ है।
रहेगा सदा अन्त तेरा न होगा, किसी काल में नाश मेरा न होगा।
खिलाड़ी खुला खेल तेरा रहेगा,
मिटेगा नहीं मेल मेरा रहेगा।

अजा को अकेली न तू छोड़ता है, मुझे भी जगज्जाल में जोड़ता है।
न तू भोग भोगे बना विश्व-योगी, किया कर्म-योगी मुझे भोग भोगी।
निराला न तेरा बसेरा रहेगा,
मिटेगा नहीं मेल मेरा रहेगा।

निराकार, आकार तेरा नहीं है, किसी भाँति का मान मेरा नहीं है।
सखा, सर्व संघात से तू बड़ा है, मुझे तुच्छता में समाना पड़ा है।
उजाला रहेगा : अँधेरा रहेगा,
मिटेगा नहीं मेल मेरा रहेगा।

अनेकत्व होगा न एकत्व तेरा, न एकत्व होगा अनेकत्व मेरा
न त्यागे तुझे शक्ति सर्वज्ञता की, लगी है मुझे व्याधि अल्पज्ञता की
दुई का घटाटोप घेरा रहेगा,
मिटेगा नहीं मेल मेरा रहेगा।

तुझे बन्ध-बाधा सताती नहीं है, मुझे सर्वदा मुक्ति पाती नहीं है
प्रभो, शंकरानन्द आनन्द दाता, मुझे क्यों नहीं आपदा से छुड़ाता
दया-दान का दीन चेरा रहेगा,
मिटेगा नहीं मेल मेरा रहेगा।

मङ्गलोद्गार

गारे-गारे मंगल बार-बार।

धर्म धुरीण धीर व्रतधारी, उमग योग-बल धार-धार।
गारे-गारे मंगल बार-बार।

ठौर-ठौर अपने ठाकुर को, निरख प्रेम-निधि बार-बार।
गारे-गारे मंगल बार-बार।

तर भवसिन्धु आप औरों में, अभय भाव भर तार-तार।
गारे-गारे मंगल बार-बार।

माँग दयालु देव शंकर से, चतुर, चार फल चार-चार।
गारे-गारे मंगल बार-बार।

कविता-कुञ्ज

प्रार्थना-पञ्चक

१

द्विज वेद पढ़ें, सुविचार बढ़ें, बल पाय चढ़ें, सब ऊपर को,
अविरुद्ध रहें, ऋजु पन्थ गहें, परिवार कहें, वसुधा-भर को,
ध्रुव धर्म धरें, पर दुःख हरें, तन त्याग तरें, भव-सागर को,
दिन फेर पिता, वरदे सविता, करदे कविता, कवि शंकर को।

२

विदुषी उपजें, क्षमता न तजें, व्रत धार भजें, सुकृती वर को,
सधवा सुधरें, विधवा उबरें, सकलंक करें न किसी घर को,
दुहिता न बिकें, कुटनी न टिकें, कुलबोर छिकें, तरसें दर को,
दिन फेर पिता, वरदे सविता, करदे कविता, कवि शंकर को।

३

नृपनीति जगे, न अनीति ठगे, भ्रम-भूत लगे, न प्रजाधर को,
झगड़े न मचें, खल-खर्व लचें, मद से न रचें, भट संगर को,
सुरभी न कटें, न अनाज घटें, सुख-भोग डटें, डपटें डर को,
दिन फेर पिता, वरदे सविता, करदे कविता, कवि शंकर को।

४

महिमा उमड़े, लघुता न लड़े, जड़ता जकड़े, न चराचर को,
शठता सटके, मुदिता मटके, प्रतिभा भटके, न समादर को,
विकसे विमला, शुभ कर्म-कला, पकड़े कमला, श्रम के कर को,
दिन फेर पिता, वरदे सविता, करदे कविता, कवि शंकर को।

५

मत-जाल जलें, छलिया न छलें, कुल फूल फलें, तज मत्सर को,
अघ दम्भ दबें, न प्रपंच फबें, गुरु मान नबें, न निरक्षर को,
सुमरें जप से, निरखें तप से, सुर-पादप से, तुझ अक्षर को,
दिन फेर पिता, वरदे सविता, करदे कविता, कवि शंकर को।

ईश्वर-प्रणिधान

१

अज, अद्वितीय, अखण्ड, अक्षर, अर्यमा, अविकार है,
अभिराम, अव्याहत, अगोचर, अग्नि, अखिलाधार है,
मनु, मुक्त, मंगलमूल, मायिक, मानहीन, महेश है,
करतार, तारक है तुही यह वेद का उपदेश है।

२

वसु, विष्णु, ब्रह्मा, बुध, बृहस्पति, विश्वव्यापक, बुद्ध है,
वरुणेन्द्र, वायु, वरिष्ठ, विश्रुत, वन्दनीय, विशुद्ध है,
गुणहीन, गुरु, विज्ञान-सागर, ज्ञान-गम्य, गणेश है,
करतार, तारक है तुही यह वेद का उपदेश है।

३

निरुपाधि, नारायण, निरञ्जन, निर्भयामृत, नित्य है,
अत्ता, अनादि, अनन्त, अनुपम, अन्न, जल, आदित्य है,
परिभू, पुरोहित, प्राण, प्रेरक, प्राज्ञ, पूज्य, प्रजेश है,
करतार, तारक है तुही यह वेद का उपदेश है।

४

कवि, काल, कालानल, कृपाकर, केतु, करुणा-कन्द है,
सुखधाम, सत्य, सुपर्ण, सच्छिव, सर्व-प्रिय, स्वच्छन्द है,
भगवान, भावुक-भक्त-वत्सल, भू, विभू भुवनेश है,
करतार, तारक है तुही यह वेद का उपदेश है।

५

अव्यक्त, अकल, अकाय, अच्युत, अंगिरा, अविशेष है,
श्रीमच्छुभाशुभशून्य, शंकर, शुक्र, शासक, शेष है,
जगदन्त, जीवन, जन्मकारण, जातवेद, जनेश है,
करतार, तारक है तुही यह वेद का उपदेश है।

शंकर-कीर्तन

१

हे शंकर कूटस्थ अकर्ता, तू अजरामर, अत्ता है,
तेरी परम शुद्ध सत्ता की सीमारहित महत्ता है,
जड़ से और जीव से न्यारा जिसने तुझको जाना है,
उस योगीश महाभागी ने पकड़ा ठीक ठिकाना है।

२

हे अद्वैत, अनादि, अजन्मा, तू हम सबका स्वामी है,
सर्वाधार, विशुद्ध, विधाता, अविचल अन्तर्यामी है,
भक्ति-भावना की ध्रुवता से जो तुझ को अपनाता है,
वह विद्वान, विवेकी, योगी, मनमाना सुख पाता है।

३

हे आदित्य, देव, अविनाशी, तू करतार हमारा है,
तेजोराशि, अखण्ड प्रतापी, सबका पालन हारा है,
जो धर ध्यान धारणा तेरी प्रेम-भाव में भरता है,
तू उस के मस्तिष्क-कोष में ज्ञान-उजाला करता है।

४

हे निर्लेप निरञ्जन, प्यारे तू सब कहीं न पाता है,
सब में पाता है पर सारा सब मे नहीं समाता है,
जो संसार-रूप रचना में ब्रह्म-भावना रखता है,
वह तेरे निर्भेद भाव का पूरा स्वाद न चखता है।

५

हे भूतेश महाबल धारी, तू सब संकट-हारी है,
तेरी मंगलमूल दया का जीव-यूथ अधिकारी है,
धर्म धार जो प्राणी तुझ से पूरी लगन लगाता है,
विद्या, बल देता है उसको, भ्रम का भूत भगाता है।

६

हे आनन्द महासुख दाता, तू त्रिभुवन का त्राता है,
मुक्तक, माता, पिता हमारा, मित्र, सहायक, भ्राता है,
जो सब छोड़ एक तेरा ही, नाम निरन्तर लेता है,
तू उस प्रेमाधार पुत्र को, मंत्र, बोध, बल देता है।

७

हे बुध, जातवेद, विज्ञानी, तू वैदिक बल दाता है,
कर्मोपासन, ज्ञान इन्हीं से जीवन जीव बिताता है,
जो समीपता पाकर तेरी जो कुछ जी में भरता है,
अर्थ समझ लेता है जैसा वह वैसा ही करता है।

८

हे करुणासागर के स्वामी, तू तारक पद पाता है,
अपने प्रिय भक्तों का बेड़ा पल में पार लगाता है,
तेरी पारहीन प्रभुता से जिसका जी भरजाता है,
वह योगी संसार-सिन्धु को मोह त्याग तर जाता है।

९

हे सर्वज्ञ, सुबोध-विहारी, तू अनुपम, विज्ञानी है,
तेरी महिमा गुरुलोगों ने वचनातीत बखानी है,
जिसने तू जाना जीवन को संयम-रस में साना है,
उस संन्यासी ने अपने को सिद्ध मनोरथ माना है।

१०

हे सुविश्वकर्मा, शिव, स्रष्टा, तू कब ठाली रहता है,
निर्विराम तेरी रचना का, स्रोत सदा से बहता है,
जो आलस्य विसार विवेकी, तेरे घाट उतरता है,
उस उद्योगशील के द्वारा सारा देश सुधरता है ।

११

हे निर्दोष प्रजेश प्रजा को, तू उपजाय बढ़ाता है,
तेरे नैतिक दण्ड न्याय से जीव कर्म-फल पाता है,
पक्षपात को छोड़ पिता जो राज-धर्म को धरता है,
वह सम्राट् सुधी देशों का सच्चा शासन करता है।

१२

हे जगदीश, लोक-लीला के तू सब दृश्य दिखाता है,
जिनके द्वारा हम लोगों को शिल्प अनेक सिखाता है,
जिसको नैसर्गिक शिक्षा का पूरा अनुभव होता है,
वह अपने आविष्कारों से बीज सुयश के बोता है।

१३

हे प्रभु यज्ञ, देव, आनन्दी तू मंगलमय होता है,
तप्त भानु-किरणों से तेरा होम निरन्तर होता है,
जो जन तेरी भाँति अग्नि में हित से आहुति देता है,
वह सारे भौतिक देवों से दिव्य सुधा-रस लेता है।

१४

हे कालानल, काल, अर्यमा, तू यम, रुद्र कहाता है,
धर्म-हीन दुष्टों के दल में दुःख-प्रवाह बहाता है,
जो तेरी वैदिक पद्धति से टेढ़ा-तिरछा चलता है,
वह पापी, उद्दण्ड, प्रमादी, घोर ताप से जलता है।

१५

हे कविराज वेदमंत्रों के तू कविकुल का नेता है,
गद्य, पद्य, रचना की मेधा दिव्य दया कर देता है,
सर्व काल तेरे गुण गाता जो कवि-मण्डल जीता है,
शंकर भी है अंश उसी का ब्रह्म-काव्य-रस पीता है।

ब्रह्म-विवेकाष्टक

१

एक शुद्ध सत्ता में अनेक भाव भासते हैं
भेद-भावना में भिन्नता का न प्रवेश है,
नानाकार द्रव्य, गुण धारी मिले नाचते हैं
अन्तर दिखाने वाले देश का न लेश है,
औपाधिक नाम-रूप-धारा महा माया मिली
माया मानी जीव जुड़े मायिक महेश है,
न्यारे न कहाओ, बनो ज्ञानी, मिलो शंकर से
सत्यवादी वेद का यही तो उपदेश है।

२

आदि, मध्य, अन्तहीन भूमा भद्र भासता है
पूरा है, अखण्ड है, असंग है, अलोल है,
विश्व का विधाता परमाणु से भी न्यारा नहीं
विश्वता से बाहरी न ठोस है न पोल है,
एक निराकार ही की नानाकार कल्पना है
एकता अतोल में अनेकता की तोल है,
भेद हीन नित्य में सभेदों की अनित्यता है
खोजले तू शंकर जो ब्रह्म की टटोल है।

३

एक में अनेकता, अनेकता में एकता है
एकता, अनेकता का मेल चकाचूर है,
चेतना से जड़ता को, जड़ता से चेतना को
भिन्न करे कौनसा प्रमाता महाशूर है,
ठोस को न छोड़े पोल, पोल को न त्यागे ठोस
ठोस नाचती है, टिकी पोल से न दूर है,
भावरूप सत्ता में असत्ता है, अभाव रूप
शंकर यों अत्ता में महत्ता भरपूर है ।

४

सत्यरूप सत्ता की महत्ता का न अन्त कहीं
नेति-नेति बार-बार वेद ने बखानी है,
चेतन स्वयंभू सारे लोकों में समाय रहा
जीव प्यारे पुत्र हैं प्रकृति महारानी है,
जीवन के चारों फल बांटे भक्त योगियों को
पूरण प्रसिद्ध ऐसा दूसरा न दानी है,
शंकर जो राजा-महाराजों का महेश उसी
विश्वनाथ ब्रह्म की बड़ाई मन मानी है।

५

पावकसे रूप, स्वाद पानी से, मही से गन्ध
मारुत से छूत, शब्द अम्बर से पाते हैं,

खाते हैं अनेक अन्न, पीते हैं पवित्र पेय
रोम, पाट, छाल, तूल, ओढ़ते, बिछाते हैं,
अन्य प्राणियों को जाति-योग से मिले हैं भोग
ज्ञान-सिद्ध साधनों से मानव कमाते हैं,
शंकर दयालु दानी देता है दया से दान
पाय-पाय प्यारे जीव जीवन बिताते हैं।

६

माने अवतार तो अनंगता की घोषणा है
अंगहीन सारे अंगियों का सिरमौर है,
पूजें प्रतिमा तो विश्व-व्यापकता बोलती है,
नारायण स्वामी का ठिकाना सब ठौर है,
खोजें घने देवता तो एकता निषेध करे
एक महादेव कोई दूसरा न और है,
अन्तको प्रपंच ही में पाया शुद्ध शंकर जो
भावना से भिन्न है न श्याम है, न गौर है।

७

एक मैं ही सत्य हूँ, असत्य मुझे भासता है
ऐसी अवधारणा, अवश्य भूल भारी है,
पूजते जड़ों को, गुण गाते हैं मरों के सदा
कर्म अपनाये महा चेतना बिसारी है,
मानते हैं दिव्य दूत, पूत, प्यारे शंकर के
जानते हैं नित्य निराकार तनधारी है,
मिथ्या मत वालों को सचाई कब सूझती है
ब्रह्म के मिलाप का विवेकी अधिकारी है।

८

योग-साधनों से होगा चित्त का निरोध और
इन्द्रियों के दर्प की कुचाल रुक जावेगी,
ध्यान-धारणा के द्वारा सामाधिक धर्म धार
चेतना भी संयम की ओर झुक जावेगी,

मूढ़ता मिटाय महामेधा का बढ़ेगा वेग
तुच्छ लोक-लालच की लीला लुक जावेगी,
शंकर से पाय परा विद्या यों मिलेंगे मुक्त
बन्धन की वासना अविद्या चुक जावेगी।

नैसर्गिक शिक्षा

१

जिस की सत्ता भाँति-भाँति के भौतिक दृश्य दिखाती है,
जीवों को जीवन धारण के नाना नियम सिखाती है।
सर्व नियन्ता, सर्व हितैषी वह चेतन भुवनेश,
नैसर्गिक विधि से देता है हम सब को उपदेश।

२

न्यायशील शंकर जीवों से कहिये क्या कुछ लेता है,
सुखदा सामग्री का सब को दान दया कर देता है।
सर्व सृष्टि-रचना को देखो नयन सुमति के खोल,
ठौर-ठौर शिक्षा मिलती है गुरु-मुख से बिन मोल।

३

देखो भानु अखण्ड प्रतापी तम को मार भगाता है,
तेज हीन तारा-मण्डल में उज्ज्वल ज्योति जगाता है।
ज्ञान-उजाला बाँट रहा है यों प्रभु परम सुजान,
तत्व तेजधारी बनते हैं भ्रम-तम त्याग अजान।

४

तारे भी तम-तोप रात में दिव्य दृश्य दरसाते हैं,
चन्द्र-बिम्ब की भाँति उजाला बाँट सुधा बरसाते हैं।
यों अपने ज्ञानी पुरुषों से पढ़ कर मंत्र-प्रयोग,
छोड़ अविद्या सुख पाते हैं गुरु-मुख लौकिक लोग।

५

जो शिव से स्वाभाविक शिक्षा जाति क्रमागत पाते हैं,
सुलभ साधनों से वे प्राणी जीवन-काल बिताते हैं।
मानव-जाति नहीं जीती है उन सब के अनुसार,
साधन पाया हम लोगों ने केवल विमल विचार।

६

जो योगी जिस ज्ञेय वस्तु में पूरी लगन लगाता है,
मर्म जान लेता है उस का मनमाना फल पाता है।
वह अपने आविष्कारों का कर सब को उपदेश,
ठीक-ठीक समझा देता है, फिर-फिर देश-विदेश।

७

जो बड़भागी ब्रह्म-ज्ञान के जितने टुकड़े पाते हैं,
वे सब साधारण लोगों को देकर बोध बढ़ाते हैं।
तर्क-सिद्ध सद्भाव अनूठे विधि-निषेध मय मंत्र,
संग्रह, ग्रन्थाकार उन्हीं के प्रकटे प्रचलित तंत्र।

८

लेख अनोखे, भाव अनूठे, अक्षर शब्द निराले हैं,
दुर्गम गूढ़ ब्रह्मविद्या के बिरले पढ़ने वाले हैं।
ज्ञानागार घने भरते हैं विषय बटोर-बटोर,
पाठक वृन्द नहीं पावेंगे इति कर इस का छोर।

९

तर्क, युक्तियों की पटुता से जब जड़ता को खोते हैं,
सत्यशील वैदिक विद्या के तब अधिकारी होते हैं।
बाल ब्रह्मचारी पढ़ते हैं सोच-समझ, सुन-देख,
पाठ-प्रणाली जाँच लीजिये पढ़ कतिपय उल्लेख।

१०

जन्म-काल में जिसके द्वारा जननी का पय पीते थे,
साथ वही साधन लाये थे, इतर गुणों से रीते थे।
ज्ञान-योग से गुरु लोगों के उमगे विशद विचार,
कर्म-योग बल से पाते हैं, तप-तरु के फल चार।

११

जाँच लीजिये जितने प्राणी जो कुछ बोला करते हैं,
वे उस भाँति मनोभावों की खिड़की खोला करते हैं।
स्वाभाविक भाषा का हम को मिला न प्रचुर प्रसाद,
शब्द पराये बोल रहे हैं कर वर्णिक अनुवाद।

१२

अपने कानों में ध्वनि-रूपी जितने शब्द समाते हैं,
मुख से उन्हें निकालें तो वे वर्ण-रूप बन जाते हैं।
वे ही अक्षर कहलाते हैं, स्वर-व्यञ्जन-समुदाय,
यों आकाश बना भाषण का कारण, सहित उपाय।

१३

जिनके स्वाभाविक शब्दों को पास, दूर, सुन पाते हैं,
वे अनुभूत हमारे सारे अर्थ समझ में आते हैं।
यों शिव से भाषा रचने का सुनकर उक्त उपाय,
कल्पित शब्द साथ अर्थों के समुचित लिये मिलाय।

१४

भूतों के गुण और भूत यों दशक दशों का जाना है,
इन में नौ प्रत्यक्ष शेष को अटकल ही से माना है।
तारतम्यता देख इन्हीं की उपजा गणित-विवेक,
आँक लिये नौ अङ्क असङ्गी शून्य सकल धर एक।

१५

जिन के खुर, पंजे, पैरों के चिन्ह मही पर पाते हैं,
पामर, पक्षी, मानवादि वे याद उसी दम आते हैं।
जब यों अर्थ बताते देखे अमित चिन्ह ऋजु बङ्क,
मान लिये तब संकेतों में लिख-लिख अक्षर, अङ्क।

१६

नीचे, मध्यम, ऊँचे स्वर से कुक्कुट बाँग लगाता है,
जागे आप सदैव सबों को पिछली रात जगाता है।
तीन भाँति के उच्चारण का समझे सरल प्रयोग,
ब्रह्म काल में उठना सीखे इस विधि से हम लोग।

१७

जागें पिछली रात प्रभाती राग मनोहर गाते हैं,
हेल-मेल से जल-क्रीडा को कारण्डव सब जाते हैं।
यों सीखे प्रभु के गुण गाना सुन कर स्वर गन्धार,
भानूदय से पहले न्हाना; तरना विविध प्रकार।

१८

आतप-ताप स्नेह-रसों को मेघ-रूप कर देता है,
सार सुगन्ध सर्व द्रव्यों के मारुत में भर देता है।
होते हैं जल, वायु, शुद्ध यों बल-वर्द्धक, अनुकूल,
भानु देव से सीखा हमने हवन-कर्म सुखमूल।

१९

देखो वैदिक यज्ञकुण्ड में हव्य कवलिका पाता है,
न्याय-धर्म से सब देवों को सार-भाग पहुंचाता है।
भस्म छोड़ कर हो जाता है हुतभुक अन्तरधान,
दान करें यों विद्या-धन का बुध याजक यजमान।

२०

नीर मेघ से, मेघ भाप से भाप नीर बन जाता है,
पिघले, जमे, उड़े यों पानी कौतुक तीन दिखाता है।
ये रस, अन्न, प्राण, दाता के द्रव, दृढ़, वायु विकार,
देखो, देवो, ऋषियो, पितरो, करिये जगदुपकार।

२१

ओषधि, अन्न आदि सामग्री सुखदा सब को देती है,
अपने उपजाऊ बीजों को सावधान रख लेती है।
जीव जन्म लेते-मरते हैं, जिस पर जीवन-भोग,
उस वसुन्धरा माता की-सी सुगति गहो गुरु लोग।

२२

देखो, फल स्वादिष्ठ, रसीले अपने आप न खाते हैं,
बाँट-बाँट सर्वस्व सबों को अचल प्रतिष्ठा पाते हैं।
छाया-दान दिया करते हैं प्रखर ताप शिर धार,
सीखो, पादप सिखलाते हैं करना पर-उपकार।

२३

तीन भाँति के जंगम प्राणी जो कुछ रुचि से खाते हैं,
भिन्न भाव से भेद उसी के अन्न अनेक कहाते हैं।
वे अभक्ष्य हैं जान लिये जो गतरस-स्वाद-सुवास,
परखाता है ईश सबों को वदन, घ्राण, रच पास।

२४

आमिष-भक्षी क्रूर तामसी निष्ठुर, हिंसक होते हैं,
कन्द, मूल, फल खाने वाले उग्र विलास न बोते हैं।
पल, फल खौओं को पाते हैं उभयाचरण विशिष्ट,
ऐसा देख निरामिष भोजी सदय बनो सब शिष्ट।

२५

विधि की परिपाटी से न्यारे जितने प्राणी चलते हैं,
वे आजन्म निषेधानल के तीव्र ताप से जलते हैं।
ऊलें उद्धत न्याय, धर्म से रहित रहैं बिन जोड़,
देखो झुण्ड मृगी मृगादि के तज पशु-पन की होड़।

२६

सारसादि चिड़ियों के जोड़े दम्पति-भाव दिखाते हैं,
जोड़े से रहने की हम को उत्तम रीति सिखाते हैं।
देते फिरें गृहस्थ-धर्म का परमोचित उपदेश,
इन के प्रेमाचार-चक्र में हिल-मिल करो प्रवेश।

२७

जोड़ मिले मादा नर प्राणी, प्रेमादर्श विचरते हैं,
मिथ्याहार-विहार न जाने, अत्याचार न करते हैं।
गर्भाधान करें व्रत-धारी पाय समय सविधान,
त्यागें भोग प्रसव लों दोनों समझो रसिक-सुजान।

२८

जिन के जोड़ नहीं जन्मे वे अस्थिर मेल मिलाते हैं,
नारी एक घने नर घेरें खेल असभ्य खिलाते हैं।
कट्टर कामुक हो जाते हैं विकल अङ्ग विकराल,
देखो श्वान, शृगाल आदि को चलो न अनुचित चाल।

२६

मानव-जाति सुता, पुत्रों को, साथ नहीं उपजाती है,
दो कुनबों से कन्या, वर को लेकर जोड़ मिलाती है।
वे दुलही, दुलहा होते हैं, नवल गृही प्रण ठान,
रखते हैं दो परिवारों से हिल-मिल मेल समान।

३०

चारा चुगते अण्डज-बच्चे, दूध जरायुज पीते हैं,
मातु-पिता अथवा माता के पास बास कर जीते हैं।
वे समर्थ होते ही उन से अलग रहैं तज संग,
यों कृतघ्नता का मनुजों पै चढ़े न कुयश-कुरंग।

३१

वस्त्र बनाने की पटुता के मकड़ी दृश्य दिखाती है,
सूत कात कर ताना-बाना, बुनना सदा सिखाती है।
गोल-गोल भींतों पर पोते, धवलावरण अनेक,
कागज की रचना का सूझा हम को सरल विवेक।

३२

न्योले, मूषिकादि बिल खोदें तन्तुक जाल बिछाते हैं,
तोते, चटके आदि पखेरू, कोटर, झोंझ बनाते हैं।
घरुआ रचें घिरोली, चिट्टे कच-कच कीचड़ लाय,
यों हम गेह बनाने सीखे, निरख अनेक उपाय।

३३

अपने मान अन्य जीवों के विवरों में घुस जाते हैं,
खोज-खोज रहने वालों को खाकर खोज मिटाते हैं।
कालकूट उगलें औरों के बन कर अन्तिम काल,
रक्षा करिये उरगों की-सी गहो न गृह-पति चाल।

३४

देख लीजिये सब जीवों को नेक न ठाली रहते हैं,
भोगें भोग, दरिद्रासुर की भूखे मार न सहते हैं।
करते हैं उद्योग अड़ीले कुल-पद्धति अपनाय,
तो हम क्यों आलस्य न छोड़ें शुभ साधन बल पाय।

३५

नाड़ी और नसों से जिनके अङ्ग रसादिक पाते हैं,
जन्म धार जीवन को भोगें देह त्याग मर जाते हैं।
ज्ञान, क्रिया धारी उपजाते निज तन से तन अन्य,
वे सजीव प्राणी पहचाने परख चराचर धन्य ।

३६

रचना एक विश्वकर्मा की चारों ओर चमकती है,
इस में विद्या भाँति-भाँति की भद्राधार दमकती है ।
शिल्प, कलाकारी, ज्योतिष के उमग रहे सब अङ्ग,
उठते हैं शिक्षा-सागर में विविध प्रसङ्ग-तरङ्ग ।

३७

जितने पुण्यश्लोक, प्रतापी जीवनमुक्त कहाते हैं,
वे बुध बुद्ध महाविद्या के शुद्ध प्रवाह बहाते हैं ।
ऐसे गुरुओं से पढ़ते हैं सब निर्धन, धनवान,
किस को शिक्षा दे सकते हैं, गुरु-कुल पण्य समान ।

३८

जो कवि कहे इन्हीं बातों को तो जीवन चुक जावेगा,
पर प्यारे के उपदेशों का अन्तिम अंक न आवेगा ।
सर्व शिरोधर वेदों के ये आशय अटल अनूप,
जानो भावभरी कविता को निपट निदर्शन-रूप ।

३९

जो जन इन प्यारे पद्यों के अर्थ यथाविधि जानेंगे,
वे इस नैसर्गिक शिक्षा को सत्य-सनातन मानेंगे ।
जिन को भाव नहीं भावेंगे परम प्रमाणित गूढ़,
वे समझेंगे शंकर को भी कुकवि मनोमुख-मूढ़ ।

पावस-प्रसाद

१

शंकर देख विचित्र सृष्टि रचना शंकर की,
बोल, किसे कब थाह मिली संसृति-सागर की।
जड़, चेतन के खेल मनोहर दृश्य खरे हैं,
इनमें मङ्गलमूल निरे उपदेश भरे हैं।

२

इस प्रसंग के अंग अखिल विद्या के घर हैं,
अर्थ अमोघ विशुद्ध शब्द अद्भुत अक्षर हैं।
इसका अनुसन्धान यथासम्भव जब होगा,
अनुभवात्मक ज्ञान अन्यथा तब कब होगा।

३

स्वाभाविक गुण-शील अन्य सब जीव निहारे,
पर मनुष्य को मंत्र मिले जड़-चेतन सारे।
ब्रह्म-शक्ति जिस भाँति यथाविधि सिखा रही है,
पावस के मिस दिव्य निदर्शन दिखा रही है।

४

ऊपर को जल सूख-सूख कर उड़जाता है,
सरदी से सकुचाय जलद पदवी पाता है।
पिघलावे रवि-ताप धरातल पै गिरता है,
बार-बार इस भाँति सदा हिरता-फिरता है।

५

पाय पवन का योग घने घन घुमड़ाते हैं,
कर किरणों से मेल विविध रंगत पाते हैं।
समझो, जिसके पास प्रकाश न जा सकता है,
क्या वह भौतिक भाव रंग दिखला सकता है।

६

चपला चञ्चल चाल दमकती दुरजाती है,
वज्र-घात घनघोर गगन में पुरजाती है।
दोनों चलकर साथ विषम गति से आते हैं,
प्रथम उजाला देख शब्द फिर सुन पाते हैं।

७

जब दिनेश की ओर झोर झरने झड़ते हैं,
इन्द्र-चाप तब अन्य घने घन पै पड़ते हैं।
नील, अरुण के साथ पीत छवि दिखलाते हैं,
हम को मिश्रित रंग बनाना सिखलाते हैं।

८

जब चादर-सा अभ्र गगन में तन जाता है,
दिव्य परिधि का केन्द्र इन्दु तब बन जाता है।
शशि का कुण्डल गोल समझ में आया जब से,
बुध-मण्डल ने वृत्त-विधान बनाया तब से।

९

भूधर-से सब श्याम धवल धाराधर धाये,
घूम-घूम चहुँ ओर घिरे गरजें झर लाये।
वारि-प्रवाह अनेक चले अचला पर दीखे,
इस विधि कुल्या कूल बहाना हम सब सीखे।

१०

झाबर, झील, तड़ाग, नदी, नद, सागर सारे,
हिल-मिल एकाकार हुए पर हैं सब न्यारे।
सब के बीच विराज रहा पावस का जल है,
व्यापक इसकी भाँति विश्व में ब्रह्म अचल है।

११

निरख नदी की बाढ़ वृष्टि पिछली पहचानी,
समझे मेघ निहार अबस बरसेगा पानी।
प्रकट भूमि की चाल करे अस्तोदय रवि का,
यों अनुमान प्रमाण मिला पावस की छवि का।

१२

अँधियारी निशि पाय विचरते हैं—चरते हैं,
दोनों पर-घर तोड़-फोड़ ऊजड़ करते हैं।
इन का सिद्ध-प्रसिद्ध चरित-साधर्म्य घना है,
अटक चोर, उलूक उड़ें उपमान बना है।

१३

मल, गोबर के ग्रास पाय गप-गप खाते हैं,
गढ़-गढ़ गोले गोल, लुड़कते-लुड़काते हैं।
गुबरीले इस भाँति, क्रिया-विधि जो न जनाते,
तो बटिका कविराज कहो किस भाँति बनाते।

१४

उलहे पादप-पुञ्ज पाय सुख-रस चौमासा,
कुंजल आक अचेत पड़े, जल गया जवासा।
समझे, जो प्रतिकूल सलिल मारुत पाता है,
रहता है वह रुग्ण त्याग तन मरजाता है।

१५

अधिक अँधेरी रात झमक झिंगुर झिंगारें,
तिलका तान उड़ाय रह निशि-अलि गुंजारें।
यदि ये गाल फुलाय राग अविराम न गाते,
तो बरुआ स्वर साध वेणु-बँसुरी न बजाते।

१६

जल में जोंक भुजङ्ग भूमि-तल पै लहराते,
फुदकें मेंडक, काक कुदकती चाल दिखाते।
मन्द-मन्द गति हंस कबूतर की जब जानी
तब तो धमनी वात, पित्त, कफ की पहचानी

१७

दिन में विचरें साथ रहें रजनी-भर न्यारे
सरिता के इस पार और उस पार पुकारे।
यों चकई-चक जोड़ सुधा-विष बरसाते हैं,
मिलने का सुख-दुःख विरह का दरसाते हैं।

१८

चपला के चर दूत कि रजनी पति के चेरे,
चम-चम चारों ओर चमकते हैं बहुतेरे ।
जो तम का उर फाड़ तेज खद्योत न भरते,
तो हम दिये जलाय अँधेरा दूर न करते ।

१९

पिस्सुक, मच्छर, डाँस, कूतरी, खटमल काटें,
दिन में रहें अचेत रात-भर खाल उपाटें ।
यों अविवेक प्रधान महातम की बनि आई,
काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह अटके दुखदाई ।

२०

दीपक पें कर प्यार पतङ्ग प्रताप दिखाते,
त्याग-त्याग तन-प्राण, प्रीति-रस-रीति सिखाते ।
जाना अविचल प्रेम निठुर से जो करते हैं,
वे उस प्रिय की रूप-अग्नि में जल मरते हैं ।

२१

पिछली रात सचेत आँख उठ कुक्कुट खोलें,
अब सब सोते जाग पड़ें इस कारण बोलें ।
सुनते ही शुभ नाद दिवाचर नींद विसारें,
वक्ता स्वर अनुदात्त, उदात्त, स्वरित उच्चारें ।

२२

दिन में विकसें कंज पाय रजनी सकुचाते,
निशि में खिलें कुमोद दिवस में कोश दुराते ।
ये रवि-शशि के भक्त यथाक्रम सकुचें-फूलें,
यों सामयिक सुकर्म करें हम लोग न भूलें ।

२३

प्राण-पवन को रोक भेक जीवित रहते थे,
विवरों में चुपचाप घोर आतप सहते थे ।
अब तो पाय अगाध सलिल मंगल गाते हैं,
इनसे सीख समाधि सिद्ध, मुनि सुख पाते हैं ।

२४

बगले ध्यान लगाय मौन मुनि बन जाते हैं,
मन मैले तन श्वेत पकड़ मछली खाते हैं।
साधु वेष बटमार मूढ़ इस भाँति बने हैं,
ठग, पाखण्ड, प्रमाद-भरे वक वृत्ति घने हैं।

२५

कारण्डव कलहंस करें जल-केलि न हारें,
पनडुब्बी चहुँ ओर फिरें फिर डुबकी मारें।
जो हम इनके काम सीख अभ्यास न करते,
कूद-कूद कर तो न ताल-नदियों में तरते।

२६

किचुआ अन्ध अनेक अधोमुख गाड़ रहे हैं,
निगल रहे जो कीच वही मल काढ़ रहे हैं।
स्वाभाविक निज धर्म जगत को जता रहे हैं,
बस्तिकर्म इस भांति विलक्षण बता रहे हैं।

२७

इन्द्रवधू कल कीट अरुण पाये मन भाये,
समझे, विधि ने लाल प्रवाल सजीव बनाये।
इनका कुनवा रेंग रहा उपजा जंगल में,
हमने भी यह रंग-ढङ्ग ढाला मखमल में।

२८

विविध अनूठे रूप-रंग धारण करती हैं,
स्वाँग अनेक प्रकार तितिलियां क्यों भरती हैं।
जो इन के अनुसार ठीक अभ्यास न करते,
तो नट नाटक में न वेष मनमाने धरते।

२९

अब गिजाइयां देख पौध इन की बढ़ती है,
पकड़ एक को एक बना वाहन चढ़ती है।
आरोहण इस भांति कई ढब का जब दीखा,
तब तो चढ़ना अश्व आदि पर हमने सीखा।

३०

उगलें तार पसार बुनाई से लग पड़ना,
जटिल फन्द में फांस-फांस आखेट पकड़ना।
मकड़ी ने अनमोल अनेक सुदृश्य दिखाये,
तन्तु, वस्त्र, गुण, जाल, बनाने सविधि सिखाये।

३१

पहले से सुप्रबन्ध यथोचित कर लेते हैं,
कर उद्योग अनाज विवर में भर लेते हैं।
वर्षा-भर वह अन्न चतुर चिंउटे खाते हैं,
धन-सञ्चय का लाभ भोग-सुख समझाते हैं।

३२

सारस भोग-विलास सदा सुख से करते हैं,
इनकी भांति अनेक नभग जोड़े चरते हैं।
धन्य पवित्र, चरित्र अनामय द्विज जीते हैं,
ज्ञान, मान गृह-धर्म प्रेम-रस हम पीते हैं।

३३

नाचें मगन मयूर, मोरनी मन हरती हैं,
पी-पी पिय-चख-नीर गर्भ धारण करती हैं।
जो न थिरकते रास-रंग रच रसिया केकी,
तो न मटकते भांड, षण्ढ, कत्थक अविवेकी।

३४

स्वांति-सलिल की चाह चहकते चातक डोलें,
अन्योदक अवलोक तृषातुर चोंच न खोलें।
अटल टेक से सिद्ध मनोरथ कर लेते हैं,
प्रण-पालन की धीर सुमति सम्मति देते हैं।

३५

अपनी सन्तति काक कृपण से पलवाती है,
पेड़-पेड़ पर बैठ मुदित मंगल गाती है।
कोयल की करतूति चतुर अबला गहती है,
तनुज धाय को सौंप आप युवती रहती है।

३६

कब देखा सहवास प्रकट कौओं का कहिये,
वायस-व्रत की वीर बड़ाई करते रहिये।
जो इनके प्रतिकूल चाल चलते नर-नारी,
तो पशु-दल की भाँति न रहती लाज हमारी।

३७

जिनके भीतर धूप न जाय न शीत सतावे,
बरसे मूसलधार मेह पर बूँद न आवे।
गेह रचें सुख-धाम चतुर चटकों के जाये,
हमने इनका काम देख तृण-मण्डप छाये।

३८

मौन अधोमुख भीग रहे वानर मन मारें,
पंख निचोड़-निचोड़ द्रुमों पर मोर पुकारें।
समझे जितने जीव न सदन बनाते होंगे,
वे सब इन की भाँति अबस दुख पाते होंगे।

३९

सबको ऊसर, डाँग, शैल, वन बाँट दिये हैं,
उपजाऊ चक-चार धरातल छाँट दिये हैं।
विधि ने मंगलमूल यथोचित न्याय किया है,
कृषि द्वारा हम लोग जियें उपदेश दिया है।

४०

काढ़ काँप विकराल, सबल शूकर आते हैं,
खोद-खोद कर खेत, गाँठ-गुड़हर खाते हैं।
जो इनके दृढ़ तुण्ड न भूतल-मुण्ड उड़ाते,
तो कुल-वीर किसान कभी हल जोत न पाते।

४१

फूल-फले, बन-बाग़ सरस हरियाली छाई,
वसुधा ने भरपूर सस्यमय सम्पति पाई।
उद्यम की जड़ मुख्य जगत-जीवन खेती है,
एक बीज उपजाय बहुत-से कर देती है।

४८

अमित ज्ञान की कौन इतिश्री कर सकता है,
सागर गागर में न कभी भी भर सकता है।
जिनको तत्व-प्रकाश मिला है शिव-सविता से,
उनका अनुसन्धान बढ़ेगा इस कविता से।

प्रशस्त पाठ

१

बिन वास बसे वसुधा-भर में, द्रवता रसहीन बहे वन में,
चमके बिन रूप हुताशन में, विचरे बिन छूत प्रभञ्जन में।
गरजे बिन शब्द खमण्डल में, बिन भेद रहे जड़-चेतन में,
कवि शंकर ब्रह्म विलास करे, इस भाँति विवेक-भरे मन में।

२

शुभ सत्य सनातन धर्म वही, जिसमें मत-पन्थ अनेक नहीं,
बल-वर्द्धक वेद वही जिसमें, उपदेश अनर्थक एक नहीं।
अविकल्प समाधि वही जिसमें, सुख-संकट का व्यतिरेक नहीं,
कवि शंकर बुद्ध विशुद्ध वही, जिसके मन में अविवेक नहीं।

३

मिल वैदिक मंत्र-पयोद घने, सुविचार-महाचल पै बरसें,
विधि और निषेध प्रवाह बहें, उपदेश-तड़ाग-भरे दरसें।
व्रत-साधन-वृक्ष बढ़ें विकसें, लटकें फल चार पकें-सरसें,
कवि शंकर मूढ़ विवेक विना, इस रूपक के रस को तरसें।

४

जड़-चेतन भूत अधीन रहें, गुण साधन दान करें जिसको,
सबको अपनाय सुधार करे, शुभचिन्तक रोक रहे रिसको।
बन जीवन-मुक्त सुखी विचरें, तज मौखिक दन्तघिसाघिस को,
कवि शंकर ब्रह्म-विवेक विना, इतने अधिकार मिले किसको।

५

गिन खेट, भकूट खमण्डल में, फल ज्योतिष के पहचान लिये,
कर शिल्प, रसायन की रचना, रच भौतिक तत्व विधान लिये।
समझे गुण-दोष चराचर के, नव द्रव्य यथाक्रम मान लिये,
कवि शंकर ज्ञान-विशारद ने, सब के सब लक्षण जान लिये।

६

परिवार-विलास विसार दिये, क्षणभंगुर भोग-भरे घर में,
समता उपजी, ममता न रही, अपवित्र अनित्य कलेवर में।
अभिमान मरा भ्रम दोप मिटे, अनुराग रहा न चराचर में,
कवि शंकर पाय विवेक टिके, इस भाँति महा मुनि शंकर में।

७

भ्रम-कुम्भ असार असत्य-भरे, गिर सत्य-शिला पर फूट गये,
हठवाद, प्रमाद न पास रहे, दृढ़ मायिक बन्धन टूट गये।
समझे अज एक सदाशिव को, कुविचार, कुलक्षण छूट गये,
कवि शंकर सिद्ध, प्रसिद्ध, सुधी, सुख-जीवन का रस लूट गये।

८

सुरपादप निर्भय न्याय बने, घनश्याम घटा बनजाय दया,
रुचि-भू पर प्रीति-सुधा बरसे, बन व्यार बहे करनी अभया।
उपकार मनोहर फूल खिलें, सब को दरसे नय दृश्य नया,
कवि शंकर पुण्य फले उसका, जिसमें गुरु-ज्ञान समाय गया।

९

कब कौन अगाध पयोनिधि के, उस पार गया जल-यान विना,
मिल प्राण, अपान, उदान रहे, तन में न समान, सव्यान विना।
कहिये ध्रुव ध्येय मिला किसको, अविकल्प अचञ्चल ध्यान विना,
कवि शंकर मुक्ति न हाथ लगी, भ्रम-नाशक निर्मल ज्ञान विना।

१०

पढ़ पाठ प्रचण्ड प्रमाद-भरे, कपटी जन जन्म गमाय गये,
रण रोप भयानक आपस में, भट केवल पाप कमाय गये।
धन-धाम विसार धरातल में, धनवान असंख्य समाय गये,
कवि शंकर सिद्ध मनोरथ की, जड़ शुद्ध सुबोध जमाय गये।

११

उपदेश अनेक सुने मन को, रुचि के अनुसार सुधार चुके,
धर ध्यान यथाविधि मंत्र जपे, पढ़ वेद पुराण विचार चुके।
गुरु-गौरव धार महन्त बने, धन-धाम कुटुम्ब विसार चुके,
कवि शंकर ज्ञान विना न तरे, सब ओर फिरे झख मार चुके।

१२

निगमागम, तंत्र, पुराण पढ़े, प्रतिवाद-प्रगल्भ कहाय खरे,
रच दम्भ प्रपञ्च पसार घने, बन वञ्चक वेष अनेक धरे।
विचरे कर पान प्रमाद-सुरा, अभिमान-हलाहल खाय मरे,
कवि शंकर मोह-महोदधि को, वकराज विवेक विना न तरे।

१३

गुरु-गौरवहीन कुचाल चलें, मतभेद पसार प्रपञ्च रचें,
दिन-रात मनोमुख मूढ़ लड़ें, चहुँ ओर घने घमसान मचें।
व्रत-बन्धन के मिस पाप करें, हठ छोड़ न हाय लबार लचें,
कवि शंकर मोह-महासुर से, बिरले जन पाय विवेक बचें।

१४

घर-बार विसार विरक्त बने, मुनि वेष बनाय प्रमत्त रहैं,
बकवाद अबोध गृहस्थ सुनें, शठ शिष्य अनन्य सुजान कहैं।
घुँस घोर घमण्ड महावन में, बिचरें कुलबोर कुपन्थ गहैं,
कवि शंकर एक विवेक विना, कपटी उपताप अनेक सहैं।

१५

तन सुन्दर रोग-विहीन रहे, मन त्याग उमङ्ग, उदास न हो,
मुख धर्म-प्रसङ्ग प्रकाश करे, नर-मण्डल में उपहास न हो।
धन की महिमा भरपूर मिले, प्रतिकूल मनोज-विलास न हो,
कवि शंकर ये उपभोग वृथा, पटुता, प्रतिभा यदि पास न हो।

१६

दिन-रात समोद विलास करें, रस-रङ्ग-भरे सुख-साज बने,
शिर धार किरीट कृपाण गहें, अवनी-भरके अधिराज बने।
अनुकूल अखण्ड प्रताप रहे, अविरुद्ध अनेक समाज बने,
कवि शंकर वैभव-ज्ञान विना, भवसागर के न जहाज बने।

१७

जिस पै करतूत चली न किसी, नग, किन्नर, नाग, सुरासुर की,
बल, साहस के फल से न भिड़ी, हठ भीरु, भगोड़ भयातुर की।
गति उद्यम के मग में न रुकी, अति उच्च उमंग-भरे उर की,
कवि शंकर पै बिन ज्ञान उसे, प्रभुता न मिली प्रभु के पुर की।

१८

अनमेल अनीति-प्रचार करें, अपवित्र प्रथा पर प्यार करें,
खल-मण्डल का उपकार करें, बिगड़े न समाज सुधार करें।
अपकार अनेक प्रकार करें, व्यभिचार सुकर्म विसार करें,
कवि शंकर नीच विचार करें, बिन बोध बुरे व्यवहार करें।

१९

कुलघोर कठोर महा कपटी, कब कोमल कर्म-कलाप करें,
पशु पोच प्रचण्ड प्रमाद-भरे, भरपेट भयानक पाप करें।
प्रण रोप लड़ें लघु आपस में, तज वैर न मेल-मिलाप करें,
कवि शंकर मूढ़ विवेक विना, अपना गल-बन्धन आप करें।

२०

विन पावक देव न पा सकते अभिमंत्रित आहुतियाँ हवि की,
रसराज न सुन्दर साज सजें, छिटके मिल जो न छटा छवि की।
ग्रह-ऋक्ष खिलें न खमण्डल में, यदि प्यार करे न प्रभा रवि की,
कवि शंकर तो विन ज्ञान किसे, पदवी मिलजाय महाकवि की।

कर्मवीरता

१

जिन को उत्तम उपदेश महा फल पाया,
उन अनघों ने अखिलेश एक अपनाया।
बन गये सुबोध विनीत ब्रह्म-अनुरागी,
उमगे बल-पौरुष पाय शिथिलता त्यागी।
कर सिद्ध विविध व्यापार कर्म-जय जागी,
उन्नति का देख उठान अधोगति भागी।
फटके जिन के न समीप मोहमय माया,
उन अनघों ने अखिलेश एक अपनाया।

२

सब ने सब दोष विसार दिव्य गुण धारे,
तज वैर निरन्तर प्रेम-प्रसंग प्रचारे।
चेतन, जीवित, ऋषि, देव, पितर सत्कारे,
कर दिये दूर खल-खर्व कुमति के मारे।
जिन के कुल में सुखमूल सुधार समाया,
उन अनघों ने अखिलेश एक अपनाया।

३

मंगलकर वैदिक कर्म किया करते हैं,
ध्रुव धर्म-सुधा भरपेट पिया करते हैं।
भर शक्ति यथाविधि दान दिया करते हैं,
कर जीवन-जन्म पवित्र जिया करते हैं।
जिन का शुभ काल कुयोग मिटा कर आया,
उन अनघों ने अखिलेश एक अपनाया।

४

द्विज ब्रह्मचर्य व्रतशील वेद पढ़ते हैं,
गौरव-गिरि पै प्रण रोप-रोप चढ़ते हैं।
अभिलषित लक्ष्य की ओर वीर बढ़ते हैं,
गुरुकुल-सागर से रत्न-रूप कढ़ते हैं।
जग-जीवन जिन के वंश-विटप की छाया,
उन अनघों ने अखिलेश एक अपनाया ।

५

नव द्रव्य-जन्य गुण-दोष-भेद पहचाने,
कृषि-कर्म, रसायन, शिल्प यथाविधि जाने।
दर्शन, ज्योतिष, इतिहास, पुराण बखाने,
पर जटिल गपोड़े वेद-विरुद्ध न माने।
सब ने कोविद, कविराज जिन्हें बतलाया,
उन अनघों ने अखिलेश एक अपनाया ।

६

विदुषी दुलहिन पौगण्ड विज्ञ वरते हैं,
बलनाशक बाल-विवाह देख डरते हैं ।
विधवा-वर बन वैधव्य दूर करते हैं,
अथवा नियोग-फल सौंप शोक हरते हैं।
जिनकी विधि ने कुलबोर निषेध मिटाया,
उन अनघों ने अखिलेश एक अपनाया ।

७

ऋजु गति शासन को शुद्ध न्याय कहते हैं,
कटु कुटिल नीति से दूर सदा रहते हैं।
समुचित पद्धति की गम्य गैल गहते हैं,
अनुचित कुचाल का दर्प नहीं सहते हैं।
अभिमान अधम का भाव न जिनको भाया,
उन अनघों ने अखिलेश एक अपनाया ।

८

घर छोड़ देश पर-देश निडर जाते हैं,
व्यवसायशील सब ठौर सुयश पाते हैं।
अति शुद्ध अनामिष-अन्न सरस खाते हैं,
पर छुआछूत रच दम्भ न दिखलाते हैं।
जिनका व्यवहार-विलास प्रशस्त कहाया,
उन अनघों ने अखिलेश एक अपनाया।

९

हित कर अपना प्रत्येक शुद्ध जीवन से,
मन शुद्ध किये मल दूर गिरा से, तन से।
मठ कपट-जाल के फोड़ उग्र खण्डन से,
जड़-पूजन की जड़ काट मिले चेतन से।
जिन के आचरण विलोक लोक ललचाया,
उन अनघों ने अखिलेश एक अपनाया।

१०

रच ग्रन्थ घने प्रिय पत्र अनेक निकाले,
बन कर गोपाल, अनाथ, अकिञ्चन पाले।
नर, नारि अवैदिक भिन्न-भिन्न मत वाले,
रच वर्ण यथागुण-कर्म शुद्ध करडाले,
शंकर ने जिन पर धर्म, मेघ बरसाया,
उन अनघों ने अखिलेश एक अपनाया।

पवित्र रामचरित्र

१

सुत हीन, दीन, अवधेश घना घबराया,
गुरु से सदुपाय विपाद सुना कर पाया।
शृङ्गी ऋषि वरद बुलाय सुयाग रचाया,
खाकर हवि-शेष सगर्भ हुई नृप-जाया।
मख-महिमा यों सब ओर सुबुध विस्तारो,
पढ़ रामचरित्र पवित्र मित्र उर धारो।

२

धन कौशल्या, सुख-सदन राम जनमाये,
कैकय-तनया ने भरत भागवत जाये।
सौमित्र सहोदर लखन अरिघ्न कहाये,
सुत वेद-चुतुष्टय-रूप नृपति ने पाये।
उपजें इस भाँति सुपुत्र मिलें फल चारो,
पढ़ रामचरित्र पवित्र मित्र उर धारो।

३

प्रकटे अवनीश-कुमार मनोहर चारो,
करते मिल बाल-विनोद बन्धु-वर चारो।
गुरुकुल में रहे समोद धर्मधर चारो,
पढ़ वेद बोध-बल पाय बसे घर चारो।
इमि ब्रह्मचर्य-व्रत धार विवेक पसारो,
पढ़ रामचरित्र पवित्र मित्र उर धारो।

४

रघुराज-रजायुस पाय बाण, धनु धारे,
मुनि साथ राम अभिराम सबन्धु सिधारे।
गुरु कौशिक से गुण सीख सामरिक सारे,
मख मंगल-मूल रखाय असुर संहारे।
ऋषि-रक्षक यों बन वीर दुष्ट-दल मारो,
पढ़ रामचरित्र पवित्र मित्र उर धारो।

५

मुनि गाधि-पुत्र भट श्याम गौर बल-धारी,
पहुँचे मिथिलापुर राज विभूति निहारी।
शिव-धनुष राम ने तोड़ पाय यश भारी,
ब्याही विधि सहित समोद विदेह-कुमारी।
करिये इस भाँति विवाह कुलीन कुमारो,
पढ़ रामचरित्र पवित्र मित्र उर धारो।

६

अब लखन, जानकी, राम अवध में आये,
घर-घर बाजे सुखमूल, विनोद-बधाये।
हित, प्रेम, राज-कुल और प्रजा पर छाये,
सबने दिन वैर-विरोध विसार बिताये।
इस भाँति रहो कर मेल भले परिवारो,
पढ़ रामचरित्र पवित्र मित्र उर धारो।

७

नृप ने सुख का सब ठौर विलोक बसेरा,
कर जोड़ कहा यह ईश सुयश है तेरा।
अब राम बने युवराज भरे मन मेरा,
रवि-वंश दिपे कर अस्त अधर्म-अँधेरा।
सुत सज्जन का इस भाँति सुभद्र विचारो,
पढ़ रामचरित्र पवित्र मित्र उर धारो।

पवित्र रामचरित्र

१

सुत हीन, दीन, अवधेश घना घबराया,
गुरु से सदुपाय विषाद सुना कर पाया।
शृङ्गी ऋषि बरद बुलाय सुयाग रचाया,
खाकर हवि-शेष सगर्भ हुईं नृप-जाया।
मख-महिमा यों सब ओर सुबुध विस्तारो,
पढ़ रामचरित्र पवित्र मित्र उर धारो।

२

धन कौशल्या, सुख-सदन राम जनमाये,
कैकय-तनया ने भरत भागवत जाये।
सौमित्र सहोदर लखन अरिघ्न कहाये,
सुत वेद-चुतुष्टय-रूप नृपति ने पाये।
उपजें इस भाँति सुपुत्र मिलें फल चारो,
पढ़ रामचरित्र पवित्र मित्र उर धारो।

३

प्रकटे अवनीश-कुमार मनोहर चारो,
करते मिल बाल-विनोद बन्धु-वर चारो।
गुरुकुल में रहे सगोद धर्मधर चारो,
पढ़ वेद बोध-बल पाय बसे घर चारो।
इमि ब्रह्मचर्य-व्रत धार विवेक पसारो,
पढ़ रामचरित्र पवित्र मित्र उर धारो।

४

रघुराज-रजायुस पाय बाण, धनु धारे,
मुनि साथ राम अभिराम सबन्धु सिधारे।
गुरु कौशिक से गुण सीख सामरिक सारे,
मख मंगल-मूल रखाय असुर संहारे।
ऋषि-रक्षक यों बन वीर दुष्ट-दल मारो,
पढ़ रामचरित्र पवित्र मित्र उर धारो।

५

मुनि गाधि-पुत्र भट श्याम गौर बल-धारी,
पहुँचे मिथिलापुर राज विभूति निहारी।
शिव-धनुष राम ने तोड़ पाय यश भारी,
ब्याही विधि सहित समोद विदेह-कुमारी।
करिये इस भाँति विवाह कुलीन कुमारो,
पढ़ रामचरित्र पवित्र मित्र उर धारो।

६

अब लखन, जानकी, राम अवध में आये,
घर-घर बाजे सुखमूल, विनोद-बधाये।
हित, प्रेम, राज-कुल और प्रजा पर छाये,
सबने दिन वैर-विरोध विसार बिताये।
इस भाँति रहो कर मेल भले परिवारो,
पढ़ रामचरित्र पवित्र मित्र उर धारो।

७

नृप ने सुख का सब ठौर विलोक बसेरा,
कर जोड़ कहा यह ईश सुयश है तेरा।
अब राम बने युवराज भरे मन मेरा,
रवि-वंश दिपे कर अस्त अधर्म-अँधेरा।
सुत सज्जन का इस भाँति सुभद्र विचारो,
पढ़ रामचरित्र पवित्र मित्र उर धारो।

८

अभिषेक-कथा सुन मित्र, अमित्र उदासी,
उलही मिल सबकी चाह कल्पलतिका-सी।
बर केकय-तनया माँग उठी कुदशा-सी,
युवराज भरत हो राम बने वन-वासी।
कर यों कुनारि पर प्यार न जीवन हारो,
पढ़ रामचरित्र पवित्र मित्र उर धारो।

९

सुन देख, कराल कठोर कुहाव-कहानी,
वरजी परिणाम सुझाय न समझी रानी।
जब मरण-काल की व्याधि स्वपति ने जानी,
उमड़ा तब शोक-समुद्र, बहा वरदानी।
वर नारि अनेक न उग्र अनीति उघारो,
पढ़ रामचरित्र पवित्र मित्र उर धारो।

१०

सुधि पाकर पहुँचे राम राज-दर्शन को,
सकुचे पग पूज कुदृश्य न भाया मन को।
सुन वचन पिता के मान धर्म-पालन को,
कर जोड़ कहा अब तात! चला मैं वन को।
पितुपायक यों बन धाम, धरा-धन वारो,
पढ़ रामचरित्र पवित्र मित्र उर धारो।

११

मिल कर जननी से माँग असीस, विदाई,
हठ जनक-सुता की भक्ति-भरी मन भाई।
सुन लक्ष्मण का प्रण-पाठ कहा चल भाई
घर तज सानुज सस्त्रीक चले रघुराई।
निज नारि-सती, प्रिय-बन्धु न वीर विसारो,
पढ़ रामचरित्र पवित्र मित्र उर धारो।

१२

पहुँचे पुनि पितु के पास अवध के प्यारे,
झट भूषण-वस्त्र उतार साधु-पट धारे ।
सब से मिल-भेंट सु-भोग विलास विसारे,
रथ पै चढ़ वन की ओर सशस्त्र सिधारे ।
बन कर्मवीर इस भाँति स्वभाव सँवारो,
पढ़ रामचरित्र पवित्र मित्र उर धारो ।

१३

तमसा तक पहुँचे लोग प्रेम-रस-पागे,
तट पै बिन चेत प्रसुप्त पड़े सब त्यागे ।
सिय, राम, सचिव, सौमित्र चल दिये आगे,
उठ भोर गये घर लौट अधीर अभागे ।
मन को इस भाँति वियोग-उदधि से तारो,
पढ़ रामचरित्र पवित्र मित्र उर धारो ।

१४

रथ शृङ्गवेरपुर तीर वीर-वर लाये,
गुह ने मिल भेंट समोद उतार टिकाये ।
सबने वह रात बिताय न्हाय फल खाये,
रघुनायक ने समुझाय सचिव लौटाये ।
सुजनों पर यों अनुराग-विभूति बगारो,
पढ़ रामचरित्र पवित्र मित्र उर धारो ।

१५

सुर-सरिता-तीर नवीन विरक्त पधारे,
पग धोय धनुक* ने पार तुरन्त उतारे ।
पहुँचे प्रयाग व्रत-शील स्वदेश-दुलारे,
मुनि-मण्डल ने हित-प्रेम पसार निहारे ।
इस भाँति अतिथि को पूज सदय सत्कारो,
पढ़ रामचरित्र पवित्र मित्र उर धारो ।

---

*केवट, मल्लाह ।

१६

गुरु भरद्वाज ने सुगम गल बतलाई,
यमुना को उतरे सहित सीय दोऊ भाई।
निशि वाल्मीक मुनि निकट सहर्ष बिताई,
चढ़ चित्रकूट प विरम रहे रघुराई।
इस भाँति सहो सब कष्ट दयालु उदारो,
पढ़ रामचरित्र पवित्र मित्र उर धारो।

१७

वन से न फिरे रघुनाथ न लक्ष्मण सीता,
पहुंचा सुमंत्र नृप तीर घोर घर जीता।
बिलखे नर-नारि निहार खड़ा रथ रीता,
दशरथ का जीवन-काल राम बिन बीता।
मरना इस भाँति न ज्ञान गमाय गमारो,
पढ़ रामचरित्र पवित्र मित्र उर धारो।

१८

गुरु ने परिताप-अँगार अनेक बुझाये,
सुधि भेज भरत शत्रुघ्न तुरन्त बुलाये।
नृप का शव-दाह कराय सुधी समुझाये,
पर वे परपद का लोभ न मन में लाये।
बस अनधिकार की ओर न वीर निहारो,
पढ़ रामचरित्र पवित्र मित्र उर धारो।

१९

घर घोर अमङ्गलमूल अनीति निहारी,
समझी अवनति का हेतु सगी महतारी।
सकुचे रघुपति की गैल चले प्रण धारी,
लग लिया भरत के साथ दुखी दल भारी।
धर पकड़ वैर की फूट फोड़ फटकारो,
पढ़ रामचरित्र पवित्र मित्र उर धारो।

२०

मिल भेट लिया गुह साथ प्रयाग अन्हाये,
चढ़ चित्रकूट पर प्रेम-प्रवाह बहाये।
प्रभु पाहि नाम कर दण्ड प्रणाम सुनाये,
झपटे सुन राम उठाय कण्ठ लिपटाये।
इस भाँति मिलो कुल-धर्म अशोक-कुठारो,
पढ़ रामचरित्र पवित्र मित्र उर धारो।

२१

सब ने मिल भेंट समिष्ट प्रसङ्ग बखाना,
सुन मरण पिता का राम कुढ़े दुख माना।
पर ठीक न समझा लौट नगर को जाना,
*जड़ भरत पादुका पाय फिरे प्रण ठाना।
व्रत-जल से विधि के पैर सुपुत्र पखारो,
पढ़ रामचरित्र पवित्र मित्र उर धारो।

२२

कर जोड़-जोड़ कर यत्न अनेक मनाये,
पर डिगे न प्रण से राम महाचल पाये।
हिय हार-हार नर-नारि अवध में आये,
बिन बन्धु भरत ने दीन-बन्धु अपनाये,
प्रतिनिधि बन औरों की न धरोहर मारो,
पढ़ रामचरित्र पवित्र मित्र उर धारो।

२३

परिवार, प्रजा, कुल से न कभी मुख मोड़ा,
मनु हायन-भर को नेह विपिन से जोड़ा।
नटखट वायस का अक्ष मार शर फोड़ा,
गिरि चित्रकूट बहु काल बिता कर छोड़ा।
विचरो सब देश-विदेश विचार प्रचारो,
पढ़ रामचरित्र पवित्र मित्र उर धारो।

---

*भरत राम के प्रेम से अधीर होकर सुध-बुध भूल गये।

२४

अब दण्डक वन का दिव्य दृश्य मन भाया,
वध कर विराध को गाढ़ कुयोग मिटाया।
मुनि मण्डल को पग पूज-पूज अपनाया,
फिर पंचवटी पर जाय बसे सुख पाया।
समझो समाज के काज कृपा कर सारो,
पढ़ रामचरित्र पवित्र मित्र उर धारो।

२५

तरु-फूल फले छवि राम कुटी पर छाई,
धर सूर्पनखा वर वेष अचानक आई।
कुलबोर मनोरथ सिद्ध नहीं कर पाई,
कर लक्ष्मण ने श्रुति नाक विहीन हटाई।
इमि एक नारि-व्रतशील रहो जड़-जारो,
पढ़ रामचरित्र पवित्र मित्र उर धारो।

२६

जकटी खर-दूषण सेन चढ़ा कर लाई,
रघुपति ने सब को मार काट जय पाई।
फिर रावण को करतूति समस्त सुनाई,
सुन मान बहन की बात चला भट भाई।
धिक् नाक कटाय न ठौर-ठौर झखमारो,
पढ़ रामचरित्र पवित्र मित्र उर धारो।

२७

चढ़ पंचवटी पर दुष्ट दशानन❀ आया,
मिल कर मारीच कुरङ्ग बना रच माया।
सिय ने पिय को पशु बध्य विचित्र बताया,
झट राम उठे शर-लक्ष्य पिशाच बनाया।
छल-मैल हटा कर न्याय सुनीर निथारो,
पढ़ रामचरित्र पवित्र मित्र उर धारो।

❀दशों दिशाओं में रावण को कोई रोकने-टोकने वाला नहीं था, इसी लिये उसका एक नाम दशानन भी पड़ गया।

२८

मृग भाग चला विकराल विपति ने घेरा,
रघुनायक ने खल खेल खिलाय खदेरा।
शर खाय मरा इस भाँति पुकार घनेरा,
चल, दौड़ सुहृद सौमित्र दुःख हर मेरा,
जमता न कपट का रंग सदैव लबारो,
पढ़ रामचरित्र पवित्र मित्र उर धारो ।

२६

सुन घोर अमंगल नाद दुष्ट सम्मति का,
सिय ने समझा वह बोल प्रतापी पति का ।
उस ओर लखन को भेज तोख दे अति का,
रह गई कुटी पर खोल द्वार दुर्गति का ।
भ्रम-भेद भूल भय, शोक लुकें ललकारो,
पढ़ रामचरित्र पवित्र मित्र उर धारो ।

३०

मुनि बन पहुँचा लंकेश कुशील पुकारा,
यति जनक-सुता ने जान असुर सत्कारा ।
पकड़ी ठग ने निज मींच अमंगल-धारा,
हित कर कुलटा का वज्र सती पर मारा ।
अधमाधम को सब साधु अधिक धिक्कारो,
पढ़ रामचरित्र पवित्र मित्र उर धारो ।

३१

हर जनक सुता को मूढ़ महाधम लाया,
मगमें प्रचण्ड रण-रोप जटायु गिराया ।
चढ़ व्योम-यान पर नीच निरंकुश आया,
खलीश्वर पाप कमाय हाय पर-जाया ।
मत चोर बनो कुलबोर बलिष्ठ बिजारो,
पढ़ रामचरित्र पवित्र मित्र उर धारो ।

३२

मृग-रूप निशाचर मार फिरे रघुराई,
अधबर में बन्धु विलोक विकलता छाई।
मिल कर आश्रम को लौट गये दोऊ भाई,
पर जनकनन्दिनी हा न कुटी पर पाई!
ध्रुव धर्मधुरन्धर धीर अनिष्ट सहारो,
पढ़ रामचरित्र पवित्र मित्र उर धारो।

३३

अति व्याकुल सानुज राम विरह के मारे,
सब ओर फिरे सब ठौर अधीर पुकारे।
गिरि, गह्वर, कानन, कुंज, कछार निहारे,
पर मिला न सिय का खोज खोज कर हारे।
इस भाँति वियोग-समुद्र सराग मझारो,
पढ़ रामचरित्र पवित्र मित्र उर धारो।

३४

कढ़ गई किधर को लाँघ धनुष की रेखा,
इस भाँति किया अनुराग पसार परेखा।
मग में फिर घायल अङ्ग गृद्ध-पति देखा,
मरगया सुना कर सीय-हरण का लेखा।
उपकार करो कर कोटि उपाय उदारो,
पढ़ रामचरित्र पवित्र मित्र उर धारो।

३५

सुन रावण की करतूति जटायु जलाया,
निरखे वन मार कबन्ध वसन्त न भाया।
फिर शवरी के फल खाय महेश मनाया,
टिक पम्पापुर पर ऋष्यमूक पुनि पाया।
कर पौरुष मानव-धर्म स्वरूप निखारो,
पढ़ रामचरित्र पवित्र मित्र उर धारो।

३६

रघुनाथ लखन को देख कीश घबराये,
समझे विधि क्या भट बालि प्रबल के आये।
बन विप्र मिले हनुमान पीठ धर लाये,
नर वानर-पति ने पूज सुमित्र बनाये।
कर मेल पियो इस भाँति प्रेम-रस प्यारो,
पढ़ रामचरित्र पवित्र मित्र उर धारो।

३७

रघुनायक ने निज वृत्त समस्त बखाना,
सुन कर हरीश का हाल घना दुख माना।
शुभ समझ बन्धु से बन्धु सभेद लड़ाना,
प्रण बालि-निधन का ठोस ठसक से ठाना।
दृढ़ टेक टिका कर सत्य वचन उच्चारो,
पढ़ रामचरित्र पवित्र मित्र उर धारो।

३८

शर मार मही पर हाड़ ताड़, तरु, डाले,
फिर कहा विजय सुग्रीव, बालि पर पाले।
ललकार लड़े हरि-बन्धु कुभाव निकाले,
लुक रहे विटप की ओट राम रखवाले।
दबको, करिये पर काज न खाँस-मठारो,
पढ़ रामचरित्र पवित्र मित्र उर धारो।

३९

समझे जब राम सुकण्ठ समर में हारा,
तब तुरत बालि बलवान मार शर मारा।
फिर अंगद को अपनाय मना कर तारा,
कर दिया सखा कपिराज मिटा दुख सारा।
ढकलो अति गूढ़ महत्त्व प्रमाण-पिटारो,
पढ़ रामचरित्र पवित्र मित्र उर धारो।

४०

अभिषेक हुआ सुख-साज समङ्गल साजे,
अभिनन्दन-सूचक शंख, ढोल, ढप बाजे।
उमगी बरसात खगोल घेर घन गाजे,
पर्वत पर विरही राम सबन्धु विराजे।
तज कपट सुमित्रादर्श बनो सब यारो,
पढ़ रामचरित्र पवित्र मित्र उर धारो।

४१

सुख रहित राम ने गीत विरह के गाये,
बरसात गई दिन शुद्ध शरद के आये।
कपिनायक ने भट कीश, भालु बुलवाये,
सिय की सुधि को सब ओर बरूथ पठाये।
करिये प्रिय प्रत्युपकार सुचरितागारो,
पढ़ रामचरित्र पवित्र मित्र उर धारो।

४२

रघुपति ने सिय के चिन्ह विशेष बताये,
मुदरी लेकर हनुमान ससैन सिधाये।
निरखे-परखे सब देश सिन्धु-तट आये,
पर लगी न कुछ भी थाँग थके अकुलाये।
तजिये न अनुष्ठित कर्म सुकृत आधारो.
पढ़ रामचरित्र पवित्र मित्र उर धारो।

४३

सब कहैं मरे प्रभु-काज नहीं कर पाया,
सुन कर उमगा सम्पाति पता बतलाया।
उछला जलनिधि को लाँघप्रभञ्जन-जाया,
रिपु-गढ़ में किया प्रवेश क्षुद्र कर काया।
फल मान असम्भव का न प्रवीण बनारो,
पढ़ रामचरित्र पवित्र मित्र उर धारो।

४४

सिय का उपताप घटाय दूर कर शङ्का,
कपि हुआ प्रसिद्ध बजाय विजय का डंका।
बँध गया, छुटा, खुल खेल जला कर लङ्का,
चल दिया शिरोमणि पाय वीरवर बंका।
कर स्वामि-काज इस भाँति कूद-किलकारो,
पढ़ रामचरित्र पवित्र मित्र उर धारो।

४५

कर काज मिला हनुमान भालु कपि ऊले,
पहुँचे सुकण्ठपुर पेड़-पेड़ पर भूले।
प्रभु को सब हाल सुनाय खाय फल फूले,
मणि जनक-सुता की देख राम सुधि भूले।
कर विनय प्रेम-प्रासाद विनीत बुहारो,
पढ़ रामचरित्र पवित्र मित्र उर धारो।

४६

रघुवर ने सिय की थाँग सुनिश्चित पाई,
करदी रिपु-गढ़ की ओर तुरन्त चढ़ाई।
कपि-भालु-चमू प्रभु-साथ असंख्य सिधाई,
अविराम चली भट-भीड़ सिन्धु-तट आई।
अनघा धन को कर यत्न अनेक उबारो,
पढ़ रामचरित्र पवित्र मित्र उर धारो।

४७

हठ पकड़ रहा लङ्केश सुमंत्र न माना,
चल दिया विभीषण बन्धु काल-वश जाना।
समझा रघुपति के पास पुनीत ठिकाना,
मिल गया कटक में दास कहाय बिराना।
बस यों सिर से भय-भार न भीरु उतारो,
पढ़ रामचरित्र पवित्र मित्र उर धारो

पुल बाँध जलधि का पार गये दल सारे,
उतरे सुबेल पर राम सबन्धु सुखारे ।
पहुँचा अङ्गद बन दूत वचन विस्तारे,
करले रघुपति से मेल दशानन प्यारे ।
अरि-कुल का भी घर घेर वृथा न उदारो,
पढ़ रामचरित्र पवित्र मित्र उर धारो ।

४९

सुन बालि-तनय की बात न ठग ने मानी,
छल-बल-पावक पर हा न पड़ा हित-पानी ।
रघुनायक ने अनरीति असुर की जानी,
कर कोप उठे भट-मार ठना ठन ठानी ।
अधमाधम रिपु को शूर सकुल संहारो,
पढ़ रामचरित्र पवित्र मित्र उर धारो ।

५०

चटपट रणचण्डी चेत चढ़ी कर तोले,
झट नयन रुद्र ने तीन प्रलय के खोले ।
गरजे जय के हरि, स्यार अजय के बोले,
हलचल में हर्ष-विषाद थिरकते डोले ।
इस भाँति महारण रोप हुमक-हुंकारो,
पढ़ रामचरित्र पवित्र मित्र उर धारो ।

५१

भिड़ गये भालु-कपि-वृन्द, वीर-रिपु-घाती,
अटके रजनीचर, चोर, बधिक, उत्पाती ।
छिपगया छेद घननाद लखन की छाती,
झट लेपहुँचे प्रभु पास सुदक्ष सँगाती ।
अति कष्ट पड़े पर धीर न हिम्मत हारो,
पढ़ रामचरित्र पवित्र मित्र उर धारो ।

५२

बिनचेत अनुज को देख राम घबराये,
हनुमान द्रोण गिरि-जन्य महोषधि लाये।
कर शीघ्र शल्य-प्रतिकार सुखेन सिधाये,
उठ बैठे लखन सशोक समस्त सिहाये।
बन पौरुष-पङ्कज-भ्रंग सुजन गुंजारो,
पढ़ रामचरित्र पवित्र मित्र उर धारो।

५३

उठे कुम्भकर्ण रणधीर अड़ा मतवाला,
समझे कपि, भालु सजीव महीधर काला।
रघुनायक ने इषु मार व्यग्र कर डाला,
तन खण्ड-खण्ड कर प्राण-प्रपञ्च निकाला।
प्रतिभट पिशाच के अंग अवश्य विदारो,
पढ़ रामचरित्र पवित्र मित्र उर धारो।

५४

मचगया घना घमसान हुआ अँधियारा,
भट कटें कटक में युद्ध प्रचण्ड पसारा।
तड़पें तन, उगलें लोथ रुधिर की धारा,
घननाद अभय सौमित्र सुभट ने मारा।
यति वीर महा व्रतशील विपत्ति बिड़ारो,
पढ़ रामचरित्र पवित्र मित्र उर धारो।

५५

उजड़े घर, सेन समेत कुटुम्ब कटाया,
अब जनक-सुता का चोर समर में आया।
रच-रच माया बल दर्प सदम्भ दिखाया,
पर बचा न रावण, राम-विजय ने खाया।
खल-दल को मार-मिटाय कु-भार उतारो,
पढ़ रामचरित्र पवित्र मित्र उर धारो।

५६

कर सकल हेम-प्रासाद नगर के रीते,
कटमरे निशाचर वीर भालु-कपि जीते।
रघुवर बोले दिन आज विरह के बीते,
अबतो मिल मंगल मान सुवदना सीते!
बिछुड़ी वनिता पर प्रेम, सुरुचि संचारो,
पढ़ रामचरित्र पवित्र मित्र उर धारो।

५७

विधवा-दल का परिताप-विलाप मिटाया,
अवनीश विभीषण वंशवरिष्ट बनाया।
सिय से रघुनाथ सबन्धु मिले सुख पाया,
दिन फिरे अवध के ध्यान भरत का आया।
निज जन्मभूमि पर प्रेम अवश्य प्रसारो,
पढ़ रामचरित्र पवित्र मित्र उर धारो।

५८

फिर पुष्पक पै कपि भालु प्रधान चढ़ाये,
चढ़ लखन जानकी राम चले घरआये।
गुरु, मात, बन्धु, प्रिय, दास, प्रजा-जन पाये,
सब ने मिल भेंट समोद शम्भु-गुण गाये।
बिछुड़ो, कर मेल-मिलाप प्रवास बिसारो,
पढ़ रामचरित्र पवित्र मित्र उर धारो।

५९

सिय, राम, भरत, सौमित्र मिले अनुरागे,
पट, भूषण सुन्दर धार वन्य व्रत त्यागे।
उमगे सुख-भोग-विलास विघ्न-भय भागे,
अपनाय अभ्युदय भव्य राज-गुण जागे।
चमको अब छार छुड़ाय ज्वलित अंगारो,
पढ़ रामचरित्र पवित्र मित्र उर धारो।

६०

अभिमंत्रित मंगलमूल साज सब साजे,
प्रभुतासन पै रघुनाथ सशक्ति विराजे।
घर-घर गायन, वादित्र, मनोहर बाजे,
सुनते ही जयजयकार राज-गज गाजे।
बनिये शंकर इस भाँति धर्म-अवतारो,
पढ़ रामचरित्र पवित्र मित्र उर धारो।

सरस्वती की महावीरता

१

वैदिक विलास करे ज्ञानागार कानन में
धर्मराज हंस पै समोद चढ़ती रहे,
फेर-फेर दिव्य गुण मालिका प्रवीणता की
पुस्तक पै मूलमंत्र पाठ पढ़ती रहे,
योग-बल-वीणा के विचार व्रत-तार बाजें
अजफल विशिष्ट वाणी घोर कढ़ती रहे,
शंकर विवेक-प्राणवल्लभा सरस्वती में
मेधा महावीरता अमित बढ़ती रहे।

२

बाल ब्रह्मचारी के विशद भाल-मन्दिर में
आसन जमाय ज्ञान-दीपक जगाती है,
सत्य और झूठ की विवेचना प्रचंड शिखा
कालिमा कुयश की कपट पै लगाती है,
प्रेमपालपौरुष प्रकाश की छबीली छटा
बधिक विरोध अन्धकार को भगाती है,
शंकर सचेत महावीरता सरस्वती की
जीव की ठमक ठगियों से न ठगाती है।

३

आपस के मेल की बड़ाई भरपेट करे
सामाजिक शक्ति-सुधा-पान करती रहे,
भूले न प्रमाणको तजे न तर्क-साधन को
युक्ति-चातुरी के गुणगान करती रहे,
मानकरे वाद प्रतिवाद कोटि कल्पना का
जाल-जल्पना का अपमान करती रहे,
शंकर निदान महावीरता सरस्वती की
मारालिक न्याय सदा दान करती रहे।

४

प्रामादिक पोच पक्षपात के न पास रहे
सत्य को असत्य से अशुद्ध करती नहीं,
औपाधिक धारणा न सिद्धि के समीप टिके
स्वाभाविक चिन्तन में भूल भरती नहीं,
न्याय की कठोर काट-छाँट को समोद सुने
कोरे कूटवाद पर कान धरती नहीं,
शंकर अशंक महावीरता सरस्वती की
उद्धत अजान जालियों से डरती नहीं।

५

मन्द मत-तारों की कुवासना दमक सारी
वैदिक विवेक तप-तेज में बिलाती है,
ध्येय, ध्यान, धारणादि साधना-सरोवर में
सामाधिक संयम सरोरुह खिलाती है,
शंकर से पावे सिद्ध-चक सिद्धि-चकई को
योग दिन में न भेद रजनी मिलाती है,
ब्रह्म-रवि-ज्योति महावीरता सरस्वती की
शुद्ध अधिकारियों को अमृत पिलाती है।

६

ब्रह्मा, मनु, अङ्गिरा, वशिष्ठ, व्यास, गोतम से
सिद्ध, मुनि-मण्डल के ध्यान में धसी रही,
राम और कृष्ण के प्रताप की विभूति बनी
बुद्ध के विशुद्ध ध्रुव लक्ष्य में लसी रही,
शंकर के साथ कर एकता कबीरजी की
सुरत-सखी के गास-गास में गसी रही,
मेंट मत-पन्थ महावीरता सरस्वती की
देव दयानन्द के वचन में बसी रही।

७

मान-दान माघ को महत्त्व दान मम्मट को
दान कालिदास को सुयश का दिला चुकी,
रामामृत तुलसी को, काव्य-सुधा केशव को
राधिकेश भक्तिरस सूर को पिलाचुकी,
मुख्य मान-पान देश-भाषा-परिशोधन का
भारत के इन्दु 'हरिचन्द' को खिलाचुकी,
सुकवि-सभा में महावीरता सरस्वती की
शंकर-से दीन मतिहीन को मिलाचुकी।

८

साहसी सुजान को सुपन्थ दिखलाती रहे
कायर कुचालियों की गैल गहती नहीं,
पुण्यशील भिक्षुक अकिञ्चन को ऊंचा करे
पापी धनपति को प्रतापी कहती नहीं,
उद्यमी उदार के सुकर्म की सुख्याति बने
आलसी कृपण की बड़ाई सहती नहीं,
शंकर अदम्य महावीरता सरस्वती की
वञ्चक बनावटी के पास रहती नहीं।

प्यार भरपूर करे लोकसिद्ध सभ्यता पै
अधमा असभ्यता पै रोप करती रहे,
ग्रन्थकार लेखक महाशयों की रचना से
भाषा का विशद बड़ा कोष करती रहे,
पक्षपात छोड़कर सत्य समालोचना से
लेखों के प्रसिद्ध गुण-दोष करती रहे,
शंकर पवित्र महावीरता सरस्वती की
प्रेमी पुरुषों का परितोष करती रहे,

१०

देशभक्ति-भूषिता प्रजा में सुख-भोग भरे
जन-जनता का सदा मंगल मनाती है,
धीर, धर्मवीर, कर्मवीर, नर नामियों के
जीवन अनूठे जन-जन को जनाती है,
बाँध परतंत्रता स्वतंत्रता को समता से
प्रीति उपजावे भ्रम-भंग न छनाती है,
शंकर उदार महावीरता सरस्वती की
बानिक सुधार का यथा विधि बनाती है।

११

दान और भोग से बचाय धन-सम्पदा को
भागे सब सूम साथ कुछ भी न ले गये,
हिंसक, लबार, देशद्रोही, ठग, जार, ज्वारी
काल विकराल की कुचाल से दले गये,
तामसी, बिलासी, शठ, मादकी, प्रमाद-भरे
लालची मतों के छल-बल से छले गये,
शंकर मिली न महावीरता सरस्वती की
पातकी बिताय वृथा जीवन चले गये।

१२

झंझट अड़ाय अड़े झक्कड़ी अजान जूझैं
हारे उपदेशक सुधारक न जीते हैं,
प्रेमामृत बूँद भी मिला न प्रेमसागर से
वैर-वारि से न कुविचार-घट रीते हैं,
काट-काट एकता का शोणित बहाय रहे
हाय! न मिलाप-महिमा का रस पीते हैं,
शंकर फलो न महावीरता सरस्वती की
जीवन अधस अनमेल ही में बीते हैं।

प्रचण्ड प्रतिज्ञा

१

दया का दान देने को जिन्होंने जन्म धारे हैं,
न ब्रह्मानन्द से न्यारे न विद्या ने विसारे हैं।
जिन्होंने योग से सारे खरे-खोटे निहारे हैं,
प्रतापी देश के प्यारे विदेशों के दुलारे हैं।
हमें अन्धेर-धारा से भला वे क्यों न तारेंगे,
बिगाड़ों को बिगाड़ेंगे सुधारों को सुधारेंगे।

२

भलाई को न भूलेंगे सुशिक्षा को न छोड़ेंगे,
हठीले प्राण खोदेंगे प्रतिज्ञा को न तोड़ेंगे।
प्रजा के और राजा के गुणों की गाँठ जोड़ेंगे,
भिड़ेंगे भेद का भाँडा धड़ाका मार फोड़ेंगे।
लड़ेंगे लोभ-लीला के लुटेरों से न हारेंगे,
बिगाड़ों को बिगाड़ेंगे सुधारों को सुधारेंगे।

३

जतीले जाति के सारे प्रबन्धों को टटोलेंगे,
जनों को सत्य-सत्ता की तुला से ठीक तोलेंगे।
बनेंगे न्याय के नेगी खलों की पोल खोलेंगे,
करेंगे प्रेम की पूजा रसीले बोल बोलेंगे।
गपोड़े पागलों के-से समाजों में न मारेंगे,
बिगाड़ों को बिगाड़ेंगे सुधारों को सुधारेंगे।

४

बनेगी सभ्यता देवी बड़ाई देव-दूतों की,
हमारे मेल को मस्ती मिटावेगी न ऊतों की।
करेंगे साहसी सेवा सदाचारी सपूतों की,
घरों में तामसी पूजा न होगी प्रेत-भूतों की।
मतों के मान मारेंगे कुपन्थों को बिसारेंगे,
बिगाड़ों को बिगाड़ेंगे सुधारों को सुधारेंगे।

५

अड़ीले अन्ध विश्वासी उलूकों को उड़ादेंगे,
अछूती छूतछैंया की अछोपाई छुड़ादेंगे।
मरों के साथ जीतों के जुड़े नाते तुड़ादेंगे,
तरेंगे ज्ञान-गंगा में अविद्या को बुड़ादेंगे।
सुधी सद्धर्म धारेंगे सुकर्मों को उधारेंगे,
बिगाड़ों को बिगाड़ेंगे सुधारों का सुधारेंगे।

६

धरेंगे ध्यान मेधा का पढ़ेंगे वेद चारों को,
प्रमाणों की कसौटी पै कसेंगे सद्विचारों को।
लिखेंगे लोक-लीला के बड़े-छोटे विकारों को,
महा विज्ञान स्रष्टा का दिखादेंगे दुलारों को।
सुखी सर्वज्ञ सिद्धों पै सदा सर्वस्व वारेंगे,
बिगाड़ों को बिगाड़ेंगे सुधारों को सुधारेंगे।

७

सुशीला बालिकाओं को लिखावेंगे-पढ़ावेंगे,
न कोरी कर्कशाओं को बृथा सोना गढ़ावेंगे।
प्रवीणा को प्रतिष्ठा के महाचल पै चढ़ावेंगे,
सती के सत्य की शोभा प्रशंसा से बढ़ावेंगे।
सुभद्रा देवियों को यों दया दानी दुलारेंगे,
बिगाड़ों को बिगाड़ेंगे सुधारों को सुधारेंगे।

८

बढ़ेगा मान विज्ञानी सुवक्ता ग्रन्थकारों का,
घटेगा ढोंग पाखंडी दुराचारी लवारों का।
पता दैवज्ञ-देवों में न पावेगा भरारों का,
अजानों की चिकित्सा से न होगा नाश प्यारों का।
सुयोगी योग-विद्या के विचारों को प्रचारेंगे,
बिगाड़ों को बिगाड़ेंगे सुधारों को सुधारेंगे।

९

करेंगे प्यार जीवों पै न गौओं को कटावेंगे,
बसा कंगाल-दीनों की न चिन्ता को चटावेंगे।
महामारी प्रचण्डी की बढ़ी सीमा घटावेंगे,
कुचाली काल की सारी कुचालों को हटावेंगे।
पड़े दुर्दैव घाती की न घातों को सहारेंगे,
बिगाड़ों को बिगाड़ेंगे सुधारों को सुधारेंगे।

१०

फलेगी प्राणदा खेती किसानों के कुमारों की,
बढ़ेगी सम्पदा पूँजी खरे दूकानदारों की।
बढ़ा देगी कलाकारी कमाई शिल्पकारों की,
बड़ाई लोक में होगी प्रतापी होनहारों की।
करेंगे नाम कामों की प्रथा प्यारी प्रसारेंगे,
बिगाड़ों को बिगाड़ेंगे सुधारों को सुधारेंगे।

११

अड़ीले मस्त गुंडों के अखाड़ों को उखाड़ेंगे,
ठगों की पेट-पूजा के बसे खेड़े उजाड़ेंगे।
रहेंगे दूर दुष्टों से कुशीलों को लताड़ेंगे,
खलों का खोज खोदेंगे पिशाचों को पछाड़ेंगे।
घिनोनी मोह-माया के प्रपञ्चों को पजारेंगे,
बिगाड़ों को बिगाड़ेंगे सुधारों को सुधारेंगे।

१२

सुधी श्रद्धा-सुधा सारे सुकर्मों को पिलावेंगे,
करेंगे नाश मिथ्या का सचाई को जिलावेंगे।
मिलापी मेल-माला में निरालों को मिलावेंगे,
न गन्दी गर्व-गाथा से पहाड़ों को हिलावेंगे।
मिलो भाई सँगाती यों अछूतों को पुकारेंगे,
बिगाड़ों को बिगाड़ेंगे सुधारों को सुधारेंगे।

१३

विवेकी ब्रह्म-विद्या की महत्ता को बखानेंगे,
बड़ा कूटस्थ अत्ता से किसी को भी न मानेंगे।
प्रमादी देश-विद्रोही जड़ों को नीच जानेंगे,
ठगी के जाल भोलों के फँसाने को न तानेंगे।
कभी पाखण्ड-पापी के न पैरों को पखारेंगे,
बिगाड़ों को बिगाड़ेंगे सुधारों को सुधारेंगे।

१४

बड़ों के मंत्र मानेंगे प्रसगों को न भूलेंगे,
कहो क्या ऊँच-ऊँचों की उँचाई को न छूलेंगे।
बढ़ेंगे प्रेम के पौधे दया के फूल फूलेंगे,
भरे आनन्द से चारों फलों के झाड़ झूलेंगे।
सबों को शंकरानन्दी अनिष्टों से उबारेंगे,
बिगाड़ों को बिगाड़ेंगे सुधारों को सुधारेंगे।

सम्मुखोद्गार

प्रभु शङ्कर, तू यदि शंकर है, फिर क्यों विपरीत भयंकर है।
करतार, उदार सुधार इसे, कर प्यार निहार न मार इसे।
मृगराज कहाय कुरंग हुआ,
बस भारत का रस भंग हुआ।

धरणीश, धनेश, जनेश रहा, अनुकूल सदा अखिलेश रहा।
सब से बढ़िया, घटिया कब था, इस भाँति बड़ा जब था तब था।
अब तो यह नंगमनंग हुआ,
बस भारत का रस भंग हुआ।

जिस ने सुविचार विकास किया, रच ग्रन्थ-समूह प्रकाश किया।
कवि-नायक, पण्डित-राज बना, वह अज्ञ, अशिक्षित आज बना।
बिन पक्ष विवेक-विहंग हुआ,
बस भारत का रस भंग हुआ।

अब लों न कहीं वह देश मिला, इस का न जिसे उपदेश मिला।
उस गौरव के गुण अस्त हुये, गुरु के गुरु शिष्य समस्त हुये।
कितना प्रतिकूल प्रसंग हुआ,
बस भारत का रस भंग हुआ।

जिस के जन-रक्षक शस्त्र रहे, उस के कर हाय, निरस्त्र रहे।
रण-जीत शरासन टूटगया, इषु-वर्ग यशोधर छूट गया।
रिपु-रक्त निमग्न निषंग हुआ,
बस भारत का रस भंग हुआ।

बिगड़ी गति वैदिक धर्म विना, सुख-हीन हुआ शुभ कर्म विना।
हठ ने जड़धी अविकास किया, फिर आलस ने बल नाश किया।
हरिचन्दन हाय पतंग हुआ,
बस भारत का रस भंग हुआ।

मिल मोह महा तम छाय रहा, लग लोभ कुचाल चलाय रहा।
मद मन्द कुदृश्य दिखाय रहा, कटु भाषण क्रोध सिखाय रहा।
नय-नाशक नीच अनंग हुआ,
बस भारत का रस भंग हुआ।

घनघोर अमंगल गाज रहा, भरपूर विरोध विराज रहा।
घर घेर दरिद्र दहाड़ रहा, उर शोक महासुर फाड़ रहा।
रिपु-रूप कराल कुसंग हुआ,
बस भारत का रस भंग हुआ।

मद-पान करे न तजे पल को, अपनाय रहा खल-मण्डल को।
पग पूज कलंक-विभीषण के, अनुराग-रँगे गणिका-गण के।
दृग-दीपक देख पतंग हुआ,
बस भारत का रस भंग हुआ।

कुल-भाषण को अनखाय सुने, पर-शब्द-समूह सुनाय सुने।
जिन को गुरु मान मनाय रहा, उनकी धज आप बनाय रहा।
पर श्यामल से न सुरंग हुआ,
बस भारत का रस भंग हुआ।

अनरीति कटाकट काट रही, पशु-पद्धति शोणित चाट रही।
पल खाय अपव्यय खेल रहा, ऋण-बूचड़ खाल उचेल रहा।
ससके सब घायल अंग हुआ,
बस भारत का रस भंग हुआ।

बिन शक्ति समृद्धि-सुधा न रही, अधिकार गया वसुधा न रही।
बल-साहस-हीन हताश हुआ, कुछ भी न रहा सब नाश हुआ।
रजनीश प्रताप-पतंग हुआ,
बस भारत का रस भंग हुआ।

चिर सञ्चित वैभव नष्ट हुआ, उर-दाहक दारुण कष्ट हुआ।
सुखवास न भोग-विलास नहीं, उपवास करे धन पास नहीं।
बिगड़ा सब ढंग कुढंग हुआ,
बस भारत का रस भंग हुआ।

सर्व ठौर बड़े व्यवहार नहीं, फिर शिल्प-कला पर प्यार नहीं ।
कुछ दीन किसान कमाय रहे, हल का हलका फल पाय रहे ।
उनको कर-भार भुजंग हुआ,
बस भारत का रस भंग हुआ ।

कस पेट अकिञ्चन सोय रहे, बिन भोजन बालक रोय रहे ।
चिथड़े तक भी न रहे तन पै, धिक धूल पड़े इस जीवन पै ।
अवलोक अमंगल ढंग हुआ,
बस भारत का रस भंग हुआ ।

मत-भेद भयानक पाप रहा, बिन प्रेम न मेल-मिलाप रहा ।
अभिमान अधोमुख ठेल रहा, अधमाधम ढोंग ढकेल रहा ।
सुख-जीवन का मग तंग हुआ,
बस भारत का रस भंग हुआ ।

मत, पन्थ असंख्य असार बने, गुरु लोलुप, लण्ठ, लबार बने ।
शठ सिद्ध कुधी कविराज बने, अनमेल अनेक समाज बने ।
इस हुल्लड़ का हुरदंग हुआ,
बस भारत का रस भंग हुआ ।

सरके विधि-वेद रसातल को, सिर धार अनर्थ-महाचल को ।
अब दर्शन-रूप न दर्शन हैं, नव तंत्र प्रमाद-निदर्शन हैं ।
बकवाद विचित्र षडंग हुआ,
बस भारत का रस भंग हुआ ।

अब सिद्धमनोरथ सिद्ध नहीं, मुनि मुक्त प्रवीण प्रसिद्ध नहीं ।
अविकल्प अनुष्ठित योग नही, विधिमूलक मंत्र-प्रयोग नहीं ।
फल संयम का शश-शृंग हुआ,
बस भारत का रस भंग हुआ ।

अवधेश धनुर्धर राम नहीं, व्रजनायक श्री घनश्याम नहीं ।
अब कौन पुकार सुने इसकी, परमाकुल गैल गहे किस की ।
तड़पै मृग-तोय तरंग हुआ,
बस भारत का रस भंग हुआ ।

रंक-रोदन

१

क्या शंकर प्रतिकूल काल का अन्त न होगा,
क्या शुभ गति से मेल मृत्यु पर्य्यन्त न होगा।
क्या अब दुःख-दरिद्र हमारा दूर न होगा,
क्या अनुचित दुर्दैव-कोप कर्पूर न होगा।

२

हो कर मालामाल पिता ने नाम किया था,
मैंने उन के साथ न कोई काम किया था।
विद्या का भरपूर इष्ट अभ्यास किया था,
पर औरों की भाँति न कोई पास किया था।

३

उद्यम की दिन-रात कमान चढ़ी रहती थी,
यश के सिर पे वर्ण-उपाधि मढ़ी रहती थी।
कुल-गौरव की ज्योति अखण्ड जगी रहती थी,
घर पे भिक्षुक-भीड़ सदैव लगी रहती थी।

४

जीवन का फल शुद्ध पूज्य पितु पाय चुके थे,
कर पूरे सब काम कुलीन कहाय चुके थे।
सुन्दर स्वर्ग समान विलास विसार चुके थे,
हा, हम उन का अन्त अनन्त निहार चुके थे।

५

बाँध जनक की पाग बना मुखिया घर का मैं,
केवल परमाधार रहा कुनबे-भर का मैं।
सुख से पहली भाँति निरंकुश रहता था मैं,
घर का देख बिगाड़ न कुछ भी कहता था मैं।

६

जिनका सञ्चित कोश खिला कर खाया मैंने,
कर के उन की होड़ न द्रव्य कमाया मैंने।
अटका हेकड़ ह्रास नहीं पहचाना मैंने,
घटती का परिणाम कठोर न जाना मैंने।

७

चेते चाकर चोर पुरानी बान बिगाड़ी,
दिया दिवाला काढ़ बनी दूकान बिगाड़ी।
आधे दाम चुकाय बड़ों की बात बिगाड़ी,
छोड़ धर्म का पन्थ प्रथा विख्यात बिगाड़ी।

८

अटके डिगरीदार दया कर दाम न छोड़े,
छीन लिये धन-धाम, ग्राम अभिराम न छोड़े।
बासन बचा न एक विभूषण वस्त्र न छोड़े,
नाम रहा निरुपाधि पुलिस ने शस्त्र न छोड़े।

९

न्याय-सदन में जाय दरिद्र कहाय चुका हूँ,
सब देकर इन्सालवेण्ट पद पाय चुका हूँ।
अपने घर की आप विभूति उड़ाय चुका हूँ,
पर संकट से हाय न पिण्ड छुड़ाय चुका हूँ।

१०

बैठ रहे मुख मोड़ निरन्तर आने वाले,
सुनते नहीं प्रणाम लूट कर खाने वाले।
उगल रहे दुर्वाद बड़ाई करने वाले,
लड़ते हैं बिन बात अड़ी पे मरने वाले।

११

कविता सुने न लोग न नामी कवि कहते हैं
अब न विज्ञ, विज्ञान-व्योम का रवि कहते हैं।
धर्मधुरन्धर धीर न बन्दी जन कहते हैं,
मुझ को सब कंगाल, धनी निर्धन कहते हैं।

१८

बालक चोखे खान-पान को अड़ जाते हैं,
खेल-खिलोने देख पिछाड़ी पड़ जाते हैं।
वे मनमानी वस्तु न पाकर रोजाते हैं,
हाय, हमारे लाल सुबकते सो जाते हैं।

१६

सिर से संकट-भार उतार न लेगा कोई,
मुझ को एक छदाम उधार न देगा कोई।
करुणा-सागर वीर कृपा न करेगा कोई,
हम दुखियों के पेट न हाय भरेगा कोई।

२०

फूलफूल कर फूल, फली, फल खाने वाले,
व्यञ्जन, पाक, प्रसाद यथारुचि पाने वाले।
गोरस आदि अनेक पुष्ट रस पीने वाले,
हाय, हुये हम शाक, चनों पर जीने वाले।

२१

घर में कुरते, कोट, सलूके सिल जाते हैं,
उजरत के दो-चार टके यों मिल जाते हैं।
जब कुछ पैसे हाथ शाम तक आ जाते हैं,
तब उनका सामान मँगा कर खा जाते हैं।

२२

लड़के लकड़ी बीन-बीन कर ला देते हैं,
ईंधन-भर का काम अवश्य चला देते हैं।
वृद्ध चचा जल डोल घड़ों से भर देते हैं,
माँग-माँग कर छाछ, महेरी कर देते हैं।

२३

ठाकुरजी का ठौर मँगेनू माँग लिया है,
छोटा-सा तिरपाल पुराना टाँग लिया है।
गूदड़ बोरे बेच उभारा छबा लिया है,
केवल कोठा एक दुबारा दबा लिया है।

२४

छप्पर में बिन बाँस, घुने ऐरण्ड पड़े हैं,
बरतन का क्या काम, घडों के खण्ड पड़े हैं।
खाट कहाँ दस-बीस फटे-से टाट पड़े हैं,
चकिया की भिड़ फोड़ पटीले पाट पड़े हैं।

२५

सरदी का प्रतियोग न उष्ण विलास मिलेगा,
गरमी का प्रतिकार न शीतल वास मिलेगा।
घेर रही बरसात न उत्तम ठौर मिलेगा,
हा, खँडहर को छोड़ कहाँ घर और मिलेगा।

२६

बादल केहरि-नाद सुनाते बरस रहे हैं,
चहुँ दिस विद्युद्दृश्य दौड़ते दरस रहे हैं।
निगल छत्त के छेद कीच जल छोड़ रहे हैं,
इन्द्रदेव गढ़ घोर प्रलय का तोड़ रहे हैं।

२७

दिया जले किस भाँति तेल को दाम नहीं है,
अटके मच्छर-डाँस कहीं आराम नहीं है।
फिसल पड़े दीवार यहाँ सन्देह नहीं है,
कर दे पनियाँढाल नहीं तो मेह नहीं है।

२८

बीत गई अब रात महा तम दूर हुआ है,
संकट का कुल हाय न चकनाचूर हुआ है।
आज भयंकर रुद्र रूप उपवास हुआ है,
हा हम सब का घोर नरक में वास हुआ है।

२९

लड़ते हैं मत-पन्थ परस्पर मेल नहीं है,
सत्य सनातन धर्म कपट का खेल नहीं है।
सुबुध साधु-सत्कार कहीं अवशिष्ट नहीं है,
ठगियों में मिल माल उचकना इष्ट नहीं है।

३०

जैसे भारत-भक्त, धर्मधारी मिस्टर हैं,
थानेदार, वकील, डाक्टर बैरिस्टर हैं।
वैसे उन की भाँति प्रतिष्ठा पासकते हैं,
क्या यों मुफ्त-से रंक कमाई खा सकते हैं।

३१

वैदिक दल में दान-मान कुछ भी न मिलेगा,
पौनपाव प्रतिवार हवन को घी न मिलेगा।
मुनि महिमालंकार महा गौरव न मिलेगा,
भोजन-वस्त्र, समेत गया वैभव न मिलेगा।

३२

बपतिस्मा सकुटुम्ब विशप से ले सकता हूँ,
धन्यवाद प्रभु गाड-तनय को दे सकता हूँ।
धन-गौरव-सम्पन्न पुरोहित हो सकता हूँ,
पर क्या अपना धर्म पेट पर खो सकता हूँ।

३३

सामाजिक बल पाय फूल-सा खिल सकता हूँ,
योग-समाधि लगाय ब्रह्म से मिल सकता हूँ।
शुद्ध सनातनधर्म ध्यान में धर सकता हूँ,
हा, बिन भोजन-वस्त्र कहो क्या कर सकता हूँ।

३४

देश-भक्ति का पुण्य-प्रसाद पचा सकता हूँ,
विज्ञापन से दाम कमाय बचा सकता हूँ।
लोलुप लीला भाँति-भाँति की रच सकता हूँ,
फिर क्या मैं कापट्य-पाप से बच सकता हूँ।

३५

जो जगती पर बीज पाप के बो न सकेगा,
जिस का सत्य विचार धर्म को खो न सकेगा।
जो विधि के विपरीत कुचाली हो न सकेगा,
वह कंगाल-कुलीन सदा यों रो न सकेगा।

३६

आज अधम आलस्य-असुर से डरना छोड़ा,
उद्यम को अपनाय उपाय न करना छोड़ा।
मन में भय-संकोच अमंगल भरना छोड़ा,
अन्न मिला भरपेट क्षुधातुर मरना छोड़ा।

भारतोदय

१

ब्रह्मचारी ब्रह्म-विद्या का विशद विश्राम था,
धर्मधारी, धीर, योगी सर्वसद्गुण-धाम था।
कर्मवीरों में प्रतापी पर निरा निष्काम था,
श्रीदयानदर्षि स्वामी सिद्ध जिसका नाम था।
बीज विद्या के उसी का पुण्य-पौरुष बोगया,
देखलो लोगो दुबारा भारतोदय होगया।

२

सत्यवादी वीर था जो वाचनिक संग्राम का,
साहसी पाया किसी को भी न जिस के काम का।
प्राणदे प्रेमी बना जो प्रेम के परिणाम का,
क्या दया-आनन्द-धारी धीर था वह नाम का।
धन्य सच्छिक्षा-सुधा से धर्म का मुख धोगया,
देखलो लोगो दुबारा भारतोदय होगया।

३

साधु-भक्तों में सुयोगी संयमी बढ़ने लगे,
सभ्यता की सीढ़ियों पै सूरमा चढ़ने लगे।
वेद-मंत्रों को विवेकी प्रेम से पढ़ने लगे,
वञ्चकों की छातियों में शूल-से गढ़ने लगे।
भारती जागी अविद्या का कुलाहल सोगया,
देखलो लोगो दुबारा भारतोदय होगया।

४

कामना विज्ञान-वादी मुक्ति की करने लगे,
ध्यान द्वारा धारणा में ध्येय को धरने लगे।
आलसी, पापी, प्रमादी पाप से डरने लगे,
अन्धविश्वासी सचाई भूल में भरने लगे।
धूलि मिथ्या की उड़ादी दम्भ दाहक रोगया,
देखलो लोगो दुबारा भारतोदय होगया।

५

तर्क-झंझा के झकोले झाड़ते चलने लगे,
युक्तियों की आग चेती जालिया जलने लगे।
पुण्य के पौधे फबीले फूलने फलने लगे,
हाथ हत्यारे हठीले मादकी मलने लगे।
खेल देखे चेतना के जड़ खिलोना खोगया,
देखलो लोगो दुबारा भारतोदय होगया।

६

तामसी थोथे मतों की मोह-माया हट गई,
ऐंठ की पोली पहाड़ी खंडनों से फट गई।
छूत-छैया की अछूती नाक लम्बी कट गई,
लालची, पाखण्डियों की पेट-पूजा घट गई।
ऊत भूतों का बखेड़ा डूब मरने को गया,
देखलो लोगो दुबारा भारतोदय होगया।

७

राज-सत्ता की महत्ता धन्य मङ्गलमूल है,
दण्ड भी काँटा नहीं है, न्याय-तरु का फूल है।
भावना प्यारी प्रजा की धर्म के अनुकूल है,
जो बना वैरी-विरोधी हाय उसकी भूल है।
क्या जिया जो दुष्टता का भार आकर ढोगया,
देखलो लोगो दुबारा भारतोदय होगया।

८

सत्य के साथी विवेकी मृत्यु को तरजायँगे,
ज्ञान-गीता गाय भोलों का भला करजायँगे ।
अन्ध-अज्ञानी अँधेरे में पड़े मरजायँगे,
आप डूबेंगे अविद्या देश में भर जायँगे।
शंकरानन्दी वही है जान शिव को जो गया,
देखलो लोगो दुबारा भारतोदय हो गया ।

भारत-भक्ति

[इसी कविता का कुछ अंश 'प्रचण्ड प्रतिज्ञा'
शीर्षक से कुछ बदले हुए रूप में पीछे
प्रकाशित किया जा चुका है]

१

दया का दान देने को जिन्होंने जन्म धारे हैं,
वही विद्वान् बड़भागी प्रजा के प्राण प्यारे हैं।
धड़ाधड़ मार खाते हैं हितू तो भी हमारे हैं,
पड़े बन्दी गृहों में भी प्रतापी यों पुकारे है।
न हम ध्रुव धर्म छोड़ेंगे न शङ्कर को विसारेंगे,
भलाई को न भूलेंगे तुझे भारत सुधारेंगे ।

२

न बम के वज्र गोलों से किसी के प्राण हरते हैं,
न डाकू, देश-विद्रोही कहाने को विचरते हैं ।
प्रमादी पक्षपाती के डराने से न डरते हैं,
बनो सब न्याय के नेगी यही उपदेश करते हैं।
दयाकर दुःख-सागर से कहो किसको न तारेंगे
भलाई को न भूलेंगे तुझे भारत सुधारेंगे ।

३

विवेकी, वीर, व्यवसायी सचाई को न छोड़ेंगे,
हठीले प्राण खोदेंगे प्रतिज्ञा को न तोड़ेंगे।
प्रजा-प्रिय देश-सेवा से कभी मुखड़ा न मोड़ेंगे,
दबा दुर्नीति-नागिन के हलाहल को निचोड़ेंगे।
लड़ेंगे लोभ-लीला के लुटेरों से न हारेंगे,
भलाई को न भूलेंगे तुझे भारत सुधारेंगे।

४

सुधी सम्राट् अपने के प्रबन्धों को टटोलेंगे,
प्रजा की भक्ति को हितकी तुला पर ठीक तोलेंगे।
ठिकाने की ठनाठन से ठगों की पोल खोलेंगे,
करेंगे प्रेम की पूजा रसीले बोल बोलेंगे।
गपोड़े गप्पियों के-से समाजों में न मारेंगे,
भलाई को न भूलेंगे तुझे भारत सुधारेंगे।

५

दया उपदेश के द्वारा, फलेगी देव-दूतों की,
हमारे मेल में माया, मिलेगी अब न ऊतों की।
करेंगे नारि-नर सेवा, सदाचारी सपूतों की,
घरों में तामसी पूजा, न होगी प्रेत-भूतों की।
महीधर जाति के सिर से अविद्या का उतारेंगे,
भलाई को न भूलेंगे तुझे भारत सुधारेंगे।

६

मतों की और पन्थों की अलल बोंबों उड़ादेंगे
अछूती छूतछैया की अछोपाई छुड़ादेंगे।
मरों के साथ जीतों के जुड़े नाते तुड़ा देंगे,
तरंगे जातिगंगा में बड़प्पन को बुड़ादेंगे।
सनातन धर्म अपने को धरातल पर प्रचारेंगे,
भलाई को न भूलेंगे तुझे भारत सुधारेंगे।

७

न चोरी माल मारेगी न जारी मन मनावेगी,
न फलकर फूट फैलेगी न झंझट झनझनावेगी।
जुआ की हार-जीतों में न नौंजी खनखनावेगी;
न मादकता किसी के भी बदन में गनगनावेगी।
न वादी और प्रतिवादी बड़े घर को मझारेंगे,
भलाई को न भूलेंगे तुझे भारत सुधारेंगे।

८

करेंगे प्यार गोरस पै न गोकुल को कटावेंगे,
महामारी प्रचण्डी के महाबल को घटावेंगे।
अकिंचन-वृन्द की चरबी न मंहगी को चटावेंगे,
कुचाली काल की सारी कुचालों को हटावेंगे।
अरी परतन्त्रता ठगनी न तेरे पग पखारेंगे,
भलाई को न भूलेंगे तुझे भारत सुधारेंगे।

९

मिलाकर सर्व तन्त्रों से पढ़ेंगे वेद चारों को,
प्रमाणों की कसौटी पै कसेंगे सद्विचारों को।
समझ कर सृष्टि सारी के खरे-खोटे विकारों को,
महा विज्ञान स्रष्टा का दिखादेंगे दुलारों को।
तपोधन ब्रह्मविद्या के लिए सर्वस्व वारेंगे,
भलाई को न भूलेंगे तुझे भारत सुधारेंगे।

१०

बढ़ेगा मान पहला-सा शिरोमणि ग्रन्थकारों का,
न अब दैवज्ञ देवों से भिड़ेगा भ्रम भरारों का।
करेंगे वेध यन्त्रों से ग्रहों का और तारों का,
न रेखा बीज अंकों में छिपेगा छल लवारों का।
जगाकर ज्योति ज्योतिष की फलाफल को विचारेंगे,
भलाई को न भूलेंगे तुझे भारत सुधारेंगे।

११

फलेगी फूलकर खेती किसानों के कुमारों की,
घटेगी अब नहीं पूंजी खरे दूकानदारों की।
बढ़ा देगी कलाकारी कमाई शिल्पकारों की,
बड़ाई लोक में होगी सुलक्षण होनहारों की।
खुलेगा द्वार उद्यम का प्रथा ऐसी प्रसारेंगे,
भलाई को न भूलेंगे तुझे भारत सुधारेंगे।

१२

सुशीला बालिकाओं को लिखावेंगे पढ़ावेंगे,
न कोरी कर्कशाओं को वृथा गहने गढ़ावेंगे।
प्रवीणा को प्रतिष्ठा के महाचल पर चढ़ावेंगे,
सती के प्रेम की पदवी प्रशंसा से बढ़ावेंगे।
दयाकर देवियों को यों दया करके दुलारेंगे,
भलाई को न भूलेंगे तुझे भारत सुधारेंगे।

१३

अनुष्ठित योग के द्वारा सदुद्यम से सुवर लेंगे,
सुकर्मों के सहारे से मनोरथ सिद्ध कर लेंगे।
स्वदेशी माल से छोटे-बड़े भण्डार भर लेंगे,
बड़ों की भांति उन्नति के शिखर पर पैर धर लेंगे।
सुखी हो दुःख-दानव के महोदर को विदारेंगे,
भलाई को न भूलेंगे तुझे भारत सुधारेंगे।

१४

अरे रंग पड़ गया पीला कलेवर लाल तेरे का,
नहीं कुल-केसरी गरजे किसी भूपाल तेरे का।
उजाला अब नहीं होता मुकट रवि बाल तेरे का,
न छोड़ा हाय अज्ञाने तिलक भी भाल तेरे का।
डरे मत इस अधोगति के प्रपंचों को पजारेंगे,
भलाई को न भूलेंगे तुझ भारत सुधारेंगे।

परोपकारी क्या है ?

[स्व० आचार्य श्री पं० पद्मसिंहशर्मा के सम्पादकत्व में 'परोपकारी' नामक एक मासिक पत्र अजमेर से १६०७ ई० में प्रकाशित हुआ था, उसके पहले अङ्क में यह कविता छपी थी ।]

१

निश्शंक सत्यवादी सेवक महेश का है,
प्रख्यात पक्षपाती ब्रह्मोपदेश का है ।
संसार का सँगाती साथी स्वदेश का है,
प्यारा प्रतापशाली प्यारे प्रजेश का है ।
आदर्श है दया का आनन्द-वन-विहारी,
शंकर सरस्वती का वर है परोपकारी ।

२

विज्ञान बुद्ध बाधक अज्ञान-मार का है,
देखो असीमसागर गहरे विचार का है ।
अवतार तर्कमूलक सद्धर्म सार का है,
सीधा विशुद्ध साधन सबके सुधार का है ।
वैदिक समाज का है सन्मित्र धीर धारी,
शंकर सरस्वती का वर है परोपकारी ।

३

बाहुल्य सद्गुणों का दुर्भिक्ष दोष का है,
अधिकार है कृपा का प्रतिकार रोष का है ।
मुख मंजु घोष का है यश आशुतोष का है,
प्रिय पद्मराग-रूपी रस पद्म-कोष का है ।
लो, साधु-चंचरीको यह भेट है तुम्हारी,
शंकर सरस्वती का वर है परोपकारी ।

४

जो शक्ति-शर्वरी से मन को मिला रहा है,
चिन्ता-चकोरनी के कुल को जिला रहा है।
कविता-कुमोदनी की कलियाँ खिला रहा है,
पीयूष नव रसों का हमको पिला रहा है।
वह चन्द्रमा यही है साहित्य-व्योमचारी,
शंकर सरस्वती का वर है परोपकारी।

५

शृंगार का विषैला शोणित निचोड़ देगी,
कौटिल्य बाँकपन के उर पेट फोड़ देगी।
कामादि के कटीले सब जोड़ तोड़ देगी,
आलस्य को अछूता जीता न छोड़ देगी।
पाखण्ड-खण्डिनी है इसकी कला-कटारी,
शंकर सरस्वती का वर है परोपकारी।

६

प्राचीन पुस्तकों से भण्डार भर चुका है,
अनुभूत आगमों का ध्रुव ध्यान धर चुका है।
भाषा सुधारने का संकल्प कर चुका है,
कुत्सित कथानकों के परिकर कतर चुका है।
इसने महज्जनों की महिमा मुँदी उघारी,
शंकर सरस्वती का वर है परोपकारी।

७

जिसके लिए अयोगी अटकल लगा रहे हैं,
जिसके लिए प्रमादी धन को ठगा रहे हैं।
भ्रम-भ्रान्ति से सुलाकर जिसको जगा रहे हैं,
अवतार दूत जिसके भय को भगा रहे हैं।
उस देव की दिखादी इसने विभूति सारी,
शंकर सरस्वती का वर है परोपकारी।

८

जो मूढ़-मण्डली के आगे अड़े हुए हैं,
जो ठोकरें ठगों की खाते खड़े हुए हैं।
जो जन्म-कुण्डली में डूबे पड़े हुए हैं,
जो कुल कुलक्षणों में लक्षण झड़े हुए हैं।
उनकी अटक उलूकी इसने मसोस मारी,
शंकर सरस्वती का वर है परोपकारी।

९

जो लोग झंझटों के झण्डे उड़ा रहे हैं,
झगड़े बढ़ा-बढ़ा कर छक्के छुड़ा रहे हैं।
बिन बात जूझने को रस्से तुड़ा रहे हैं,
हा, एकता-तरी को जिसमें बुड़ा रहे हैं।
वह नाश-नद न इसको दे वैर-वारि खारी,
शंकर सरस्वती का वर है परोपकारी।

१०

जो सर्वनाश-नद में जीवन डुबो चुका है,
दुर्दैव का सताया दिन-रात रो चुका है।
कंगाल मन्दभागी कुल को बिगो चुका है,
खोकर स्वतन्त्रता को परतन्त्र हो चुका है।
उस देश की भलाई इसने नहीं बिसारी,
शंकर सरस्वती का वर है परोपकारी।

११

निर्दोष वेद-विद्या सब को सिखा रहा है,
विद्वान्-दीपकों में बन कर शिखा रहा है।
जिसके सुलेखकों से लक्षण लिखा रहा है,
उस देव नागरी के रूपक दिखा रहा है।
इसके महाशयों की टकसाल है करारी,
शंकर सरस्वती का वर है परोपकारी।

१२

ऊंचा चढ़ा रहा है गुण-गेह ज्ञानियों को,
नीचा गिरा रहा है मिथ्याभिमानियों को ।
आदर दिला रहा है निष्काम दानियों को,
झूठी बता रहा है कोरी कहानियों को ।
इसका विवेक-बल है पूरा प्रमाद-हारी,
शंकर सरस्वती का वर है परोपकारी ।

१३

अविकल्प योग-बल की जिनमें प्रधानता है,
उन सिद्ध योगियों को निर्बन्ध जानता है ।
विद्या-विशारदों के सद्गुण बखानता है,
व्रतशील सज्जनों को सन्मित्र मानता है ।
इसको नहीं सुहाते ठग, आलसी, अनारी,
शंकर सरस्वती का वर है परोपकारी ।

१४

जिसकी दयालुता ने आनन्द-फल दिया है,
जिसकी प्रवीणता ने विज्ञानपय पिया है ।
जिसकी महानता ने भर-पूर यश लिया है,
जिसकी उदारता ने सब का भला किया है ।
है इष्टदेव इसका, वह बाल ब्रह्मचारी,
शंकर सरस्वती का वर है परोपकारी ।

१५

विधवा बड़े घरों की महिमा घटा रही हैं,
गायें गले कटातीं चरबी चटा रही हैं ।
बातें विदेशियों की सौदा पटा रही हैं,
देशी सुधारकों से हमको हटा रही हैं ।
ऐसी कड़ी कुचालें इसको लगें न प्यारी,
शंकर सरस्वती का वर है परोपकारी ।

१६

रस भंग टुकड़ों के आसन उखाड़ देगा,
कविता कलङ्किनी को लम्बी लताड़ देगा।
उद्दण्ड गायकों के मुखड़े बिगाड़ देगा,
करताल तोड़ देगा फिर ढोल फाड़ देगा।
कविराज को करेगा गुण-गान से सुखारी,
शंकर सरस्वती का वर है परोपकारी।

१७

सिड़की सड़क बनाकर व्रत बन जला चुके हैं,
हठ-झील में कुमति के गोले गला चुके हैं।
मद-सेतु पर अकड़की गाड़ी चला चुके हैं,
यों ऐंठ रेलवे के दल बलबला चुके हैं।
इसको नहीं सुहाती इस भाँति की सवारी,
शंकर सरस्वती का वर है परोपकारी।

मेरा महत्व

१

मंगलमूल महेश मुक्ति-दाता शंकर है,
शंकर का उपदेश महाविद्या का घर है।
शंकर जगदाधार तुझे मैं जान चुका हूँ,
उन्नति का अवतार वेद को मान चुका हूँ।

२

मेरा विशद विचार भारती का मन्दिर है,
जिसमें बन्ध-विकार कल्पना-सा अस्थिर है।
प्रतिभा का परिवार उसी में खेल रहा है,
अवनति को संसार-कूप में ठेल रहा है।

३

रहे निरन्तर साथ धर्म दश लक्षण धारी,
पकड़ रहा है हाथ सुकर्मोदय हितकारी।
प्रतिदिन पाँचो याग यथाविधि करता हूँ मैं,
सकल कामना त्याग स्वतंत्र विचरताहूँ मैं।

४

सारहीन हठवाद छोड़ आचरण सुधारे,
छल, पाखण्ड, प्रमाद विरोध-विलास विसारे।
मन में पाप-कलाप कुमति का वास नहीं है,
मदन, मोह, सन्ताप, कुलक्षण पास नहीं है।

५

मुझ में ज्ञान, विराग बुद्ध से भी बढ़ कर है,
अविनाशी अनुराग असीम अहिंसा पर है।
निरख न्याय की रीति मुझे सब राम कहेंगे,
परख अनूठी नीति सुधी घनश्याम कहेंगे।

६

रोग-हीन बलवान, मनोहर मेरा तन है,
निश्चल प्रेम-प्रधान सत्य-सम्पादक मन है।
निर्मल कर्म, विचार, वचन में दोष कहाँ है,
मुझ-सा धन्य उदार अन्य मृदु घोष कहाँ है।

७

वीतराग बिन रोष एक मुनि-नायक पाया,
निगुरापन का दोष उसे गुरु मान मिटाया।
यद्यपि सिद्ध स्वतंत्र जगद्गुरु कहलाता हूँ,
तो भी गुरुमुख-मंत्र मान मन बहलाता हूँ।

८

दुःख-रूप सब अङ्ग अविद्या के पहचाने,
सुख-सम्पन्न प्रसंग अर्थ अपरा के जाने।
दोनों पर अधिकार पराविद्या करती है,
अखिलानन्द अपार एकता में भरती है।

९

जिसकी उलटी चाल न सीधा सुमग दिखावे,
जिसका कोप कराल न मेल-मिलाप सिखावे।
जो खल-दल को घोर नरक में ठेल रही है,
वह माया चहुं ओर खेल खुल खेल रही है।

१०

जो सब के गुण, कर्म, स्वभाव समस्त बतावे,
जो ध्रुव धर्म-अधर्म, शुभाशुभ को समझावे।
जिस में जगदाकार भद्र मुख भाव भरा है,
वही विविध व्यापार-परक विद्या अपरा है।

११

जीव जिसे अपनाय फूल-सा खिल जाता है,
योग-समाधि लगाय ब्रह्म से मिल जाता है।
जिस में एक अनेक भावना से रहता है,
उस को सत्य विवेक परा विद्या कहता है।

१२

जिस में जड़ चैतन्य सर्व-संघात समावे,
जिस अनन्य में अन्य वस्तु का बोध न पावे।
जिस जी में रस उक्त योग का भर जावेगा,
वह बुध जीवन्मुक्त मृत्यु से तर जावेगा।

१३

बालक पन में रौंड़ अविद्या की जड़ काटी,
तरुण हुआ तो खाँड़-खीर अपरा की चाटी।
अब तो उत्तम लेख परा के बाँच रहा हूँ,
बुढ़वा मंगल देख जरा को जाँच रहा हूँ।

१४

गाणपत्य मत मान रहे थे मेरे घर के,
मैं भी गुण-गण-गान करे था लम्बोदर के।
शिशुता में वह बाल-विलास न छोड़ा मैंने,
उमगा यौवन काल दम्भ-घट फोड़ा मैंने।

१५

पढ़ता था दिन-रात महाश्रम का फल पाया,
निखिल तंत्र निष्णात राजपण्डित कहलाया।
लालच का बल पाय लण्ठ गढ़ तोड़ लिया था,
केवल गाल बजाय घना धन जोड़ लिया था।

१६

रहे प्रतारक संग कपट की बेल बढ़ाई,
मन भाये रस-रंग मदन की रही चढ़ाई।
भोजन, पान, विहार यथारुचि करता था मैं,
विधि-निषेध का भार न सिर पै धरता था मैं।

१७

बाल-विवाह विशाल जाल रच पाप कमाया,
ब्रह्मचर्य व्रत-काल वृथा विपरीत गमाया।
अबला ने चुपचाप उठाय पछाड़ा मुझको,
बेटा जन कर आप बनाय बिगाड़ा मुझको।

१८

प्यारे गुरु-लघु लोग मरे घरबार बिसारे,
करनी के फल भोग-भोग सुरधाम सिधारे।
वनिता ने जब हाथ हटा कर छोड़ा मुझको,
तब सुधार के साथ सुमति ने जोड़ा मुझको।

१९

पहले बालक चार मृत्यु के मुख में डाले,
पिछले कौल कुमार कल्प-पादप-से पाले।
जिन को धन-भण्डार युक्त घर पाया मेरा,
अब शिव ने संसार कुटुम्ब बनाया मेरा।

२०

जिस जीवन की चाल बुरा करती थी मेरा,
बीत गया वह काल मिटा अन्धेर-अँधेरा।
पिछले कर्म-कलाप बताना ठीक नहीं है,
अपने मन को आप सताना ठीक नहीं है।

२१

हिमगिरि-ज्ञानागार धवल मेघ:-ध्रु वनन्दा,
उस में चूबक मार-मार मन रहा न गन्दा।
पातक-पुञ्ज पजार पुण्य भरपूर किया है,
ज्ञान-प्रकाश पसार मोह-तम दूर किया है।

२२

जान लिया हठ योग अखण्ड समाधि लगाना,
कर्मयोग फल-भोग अमंगल-भूत भगाना।
क्या मुझ-सा व्रतसिद्ध सुधारक और न होगा,
होगा पर सुप्रसिद्ध सर्वसिरमौर न होगा।

२३

क्या करते प्रतिवाद वचन सुन मेरे तीखे,
गोतम, कृष्ण, कणाद, पतञ्जलि, व्यास सरीखे।
युक्तिहीन नर-ग्रन्थ न जीमें भर सकते हैं,
तर्क-शत्रु मत-पन्थ भला क्या कर सकते हैं।

२४

बन कर मेरा जोड़ न ऊत अज्ञान अड़ेगा,
पण्डित भी भय छोड़ न टेक टिकाय लड़ेगा।
भिड़ा न भारतधर्म मुखर मण्डल में कोई,
दिखला सका सुकर्म न वैदिक दल में कोई।

२५

मैंने असुर, अजान, प्रमादी, पिशुन पछाड़े,
हार गये अभिमान-भरे अवधूत-अखाड़े।
जिसकी चपला चाल देश को दल सकती है,
क्या उस दल की दाल यहाँ भी गल सकती है।

२६

हेकड़ होड़ दबाय उलझने को आतेहैं,
पर वे मुझे नवाय न ऊँचा पद पातेहैं।
जिसका घोर घमण्ड घरेलू घटजाताहै,
वह प्रचण्ड उद्दण्ड, हठीला हटजाताहै।

२७

ठग मेरे विपरीत बुरी बातें कहते हैं,
घरही में रणजीत बने बैठे रहते हैं।
मैं कलिकाल-विरुद्ध प्रतापी आप हुआ हूँ।
पाकर जीवन शुद्ध निरा निष्पाप हुआ हूं।

२८

जो जड़मति का कोष न पूजेगा पग मेरे,
उस अजान के दोष दिखा दूंगा बहुतेरे।
जो मुझ को गुरु मान प्रेम के साथ रहेगा,
उस पर मेरे मान-दान का हाथ रहेगा।

२९

मैं असीम अभिमान महामहिमा के बल से,
डरता नहीं निदान किसी प्रतियोगी बल से।
निगमागम का मर्म विचार लिया करता हूँ,
तदनुसार ध्रुव धर्म्म-प्रचार किया करता हूं।

३०

तन में रही न व्याधि,न मन में आधि रही है,
रही न अन्य उपाधि,अनन्य समाधि रही है।
अनघ शिष्य को सर्व-सुधार सिखा सकता हूं,
अपना गौरव-गर्व अदम्य दिखा सकता हूं।

३१

मुझको साधु-समाज शुद्ध जीवन जानेगा,
सर्वोपरि मुनि-राज सिद्ध-मण्डल मानेगा।
अपना नाम पवित्र प्रसिद्ध किया है मैंने,
शुभ चरित्र का चित्र दिखाय दिया है मैंने।

३२

यद्यपि लालच दूर कर चुका हूं मैं मन से
तो भी मठ भरपूर भरा रहता है धन से।
छोड़ दिये सुख-भोग विषय-रस-रूखा हूँ मैं,
दान करें सब लोग सुयश-मधु भूखा हूँ मैं।

३३

वेद और उपवेद पढ़ा सकता हूं पूरे,
अंग विधायक भेद रहेंगे नहीं अधूरे।
तर्क-प्रवाह-तरंग विचित्र दिखादूं सारे,
पौराणिक रस-रंग प्रसंग सिखादूं सारे।

३४

ग्रन्थ बिना अनुवाद किसी भाषा का रखलो,
उस के रस का स्वाद खड़ी बोली में चखलो।
जो अनुचर अल्पज्ञ न ज्यों का त्यों समझेगा,
वह मुझको सर्वज्ञ कहो तो क्यों समझेगा।

३५

यदि मैं व्यर्थ न जान काम कविता से लेता,
तो तुक्कड़-कुल मान-दान क्या मुझे न देता।
लेखक लेख निहार लेखनी तोड़ चुके हैं,
सम्पादक हिय हार हेकड़ी छोड़ चुके हैं।

३६

शिल्प-रसायन-सार कहो जिसको सिखलादूं,
अभिनव आविष्कार अनोखे कर दिखलादूं।
भूमि-यान, जल-यान, विमान बना सकता हूँ,
यंत्र सजीव समान अजीव जना सकता हूँ।

३७

गोल भूमि पर डोल-डोल सब देश निहारे,
खोल गगन की पोल बेध कर परखे तारे।
लोक मिले चहूँ ओर कहीं अवलम्ब न पाया,
विधिने जिसका छोर छुआ वह लम्ब न पाया।

३८

दे-दे कर उपदेश पुजा देशी मण्डल में,
किया न चञ्चुप्रवेश राज-विद्रोही-दल में।
अब सरिता के तीर कुटी में वास करूंगा,
त्याग अनित्य शरीर काल का ग्रास करूंगा।

३९

मेरा अनुचर-चक्र, चुटीली चाल चलेगा,
रौंद-रौंद कर वक्र कुचालों को कुचलेगा।
मानव-दल की दूर दुर्दशा कर देवेगा,
भारत में भरपूर भलाई भर देवेगा।

४०

सुनकर मेरी आज अनूठी राम कहानी,
धन्य-धन्य मुनिराज कहेंगे आदर दानी।
पण्डित परमोदार प्रवीण प्रणाम करेंगे,
लम्पट, लण्ठ, लबार, वृथा बदनाम करेंगे।

मेरा मनोराज्य

१

मगंलमूल सच्चिदानन्द, हे शंकर स्वामी सुखकन्द।
देव, रहो मेरे अनुकूल, दूर करो सारे भ्रम-शूल।
व्याकुल करें न पातक, रोग, जीवन-भर भोगूं सुख-भोग।
हो सदभ्युदय का जब अन्त, मुक्ति मिले तब हे भगवन्त!

२

चेतनता न तजे विश्राम, मन-मयूर नाचे निष्काम।
वाणी कहे वचन गम्भीर, खोटे कर्म्म न करे शरीर।
ध्रुव की भाँति पढ़ा दो वेद, ब्रह्म-जीव में रहे न भेद।
करे निरंकुश मायावाद, मिटे अविद्याजन्य-प्रमाद।

३

जाति-पाँति, मत-पन्थ अनेक, दुरदुर छुआछूत को छेक।
सब को फुरे विशुद्ध विवेक, उपजे धर्म सनातन एक।
जिस में सब की शक्ति समाय, मैं भी उस मत को अपनाय।
धार विश्व की विमल विभूति, सिद्ध कहाय करूं करतूति।

४

हे प्रभु, द्वार दया का खोल, कर दो दान मुझे भूगोल।
सागर सारे देश अनेक, सब का ईश बनूं मैं एक।
रहैं सहायक पांचों भूत, बार-बार बरसें जीमूत।
बिजली करे अनूठे काम, फलें सिद्धियों के परिणाम।

५

कर कुबेर को चकनाचूर, धन से कोष भरूं भरपूर।
कमला कर मेरे घर वास, जाय न अपने पति के पास।
भाँति-भाँति के पत्तन-ग्राम, बन जावें सारे सुख-धाम।
सब को मिले मेल को लूट, मिट जावे आपस की फूट।

६

कुल्या-कूल बहैं अविराम, फूल-फलें कानन-आराम।
प्राणी पाय शुद्ध जलवायु, भय तज भोगें पूरी आयु।
देशिक सम्मेलन के हेतु, बंधें सिन्धु, नदियों के सेतु।
जिन के द्वारा अन्तर त्याग, मिलें समस्त भूमि के भाग।

७

गगन गोल में उड़ें विमान, जल में तरें घने जलयान।
धरणीतल पर दौड़ें रेल, चलें अन्य वाहन पँचमेल।
बने राजपथ चारों ओर, चलें बटोही, मिलें न चोर।
सुन्दर पादप रोकें धूप, दान करें जल, वापी, कूप।

८

फलें सदुद्यम के व्यवहार, शिल्प, रसायन बढ़ें अपार।
पौरुष-रवि का पाय प्रकाश, उन्नति-नलिनी करे विकास।
लगे भूमि पर स्वल्प लगान, जल पावें बिन मोल किसान।
उपजें विविध भाँति के माल, पड़े न मँहगी और अकाल।

९

आयुर्वेद-विहित कविराज, सादर सब का करें इलाज।
बटें सदाव्रत रुकें न हाथ, मरें न भिक्षुक, दीन, अनाथ।
दो-दो विद्यालय सब ठौर, खोलें अध्यापक सिरमौर।
करें यथाविधि विद्या-दान, उपजावें विदुषी-विद्वान।

१०

सांग वेद, दर्शन, इतिहास, ललित काव्य, साहित्य-विलास।
गणित,नीति, वैद्यक, संगीत, पढ़ें प्रजा जन बनें विनीत।
सीखें सैनिक शस्त्र-प्रयोग, वीर बनें साधारण लोग।
धारें टेक टिकाय कृपाण, वारें धर्मराज पर प्राण।

११

अखिल बोलियों के भंडार, विद्या के रस-रंग-विहार।
भुवन-भारती के शृंगार, रहैं सुरक्षित ग्रन्थागार।
निकलें नये-नये अखबार, पाठक पढ़ें विचार-विचार।
सब के कर्म, कुयोग, सुयोग, प्रकट करें सम्पादक लोग।

१२

जो सदर्थ का सार निचोड़, परखें पक्षपात को छोड़।
शुद्ध न्याय को करें प्रसिद्ध, बनें समालोचक वे सिद्ध।
जिन के पास न राग, न रोष, सत्य कहें सब के गुण-दोष।
ऐसे भूतल तिलक प्रधान, विधि-निषेध का करें विधान।

१३

युक्तिवाद-पटु निर्भय वीर, धीर, महामति, अति गम्भीर।
कर्म-प्रवीण, कुलीन, सपूत, परम साहसी विचरें दूत।
सम्वित्सागर परम सुजान, नीति-विशारद न्याय-निधान।
पर-हितकारी सत्कवि राज, सब से हो संगठित समाज।

१४

न्यायाधीश बड़े पद पाय, करें ठीक मारालिक न्याय।
चाकर चलें न टेढ़ी चाल, खाय न चक्र घूंस का माल।
लड़ें न ऊत अशिक्षित लोग, चलें न जाल-भरे अभियोग।
प्रजा-पुरोहित, वीर वकील, बनें न न्याय-विपिन के भील।

१५

हेल-मेल का बढ़े प्रचार, तजें प्रतारक अत्याचार।
सीख राज-पद्धति के मंत्र, प्रजा रहे सानन्द, स्वतंत्र।
करे न कोप महासुर मोह, उठे न अधम देश-विद्रोह।
चलें न छल-भट के नाराच, पिये न रक्त प्रपंच-पिशाच।

१६

रहे न कोई भी परतंत्र, बनें न नीचों के षड्यंत्र।
वैर, फूट की लगे न लाग, मार-काट की जले न आग,
चतुरंगिनी चमू कर कोप, करदे खल-मण्डल का लोप।
गरजें धीर-वीर घनघोर, भागें प्रतिभट, वञ्चक, चोर।

१७

पकड़ें अस्त्र-शस्त्र रणजीत, बाधक दुष्ट रहें भयभीत।
जो कर सकें पराभव घोर, बनें न वैसे करण कठोर।
राज-कर्म-पद्धति की चूक, जो कवि कह डाले दो टूक।
उस को मेरा चक्र प्रचण्ड, छल से कभी न देवे दण्ड।

१८

सुख से एक बटोरे माल, एक रहे दुखिया कंगाल।
अपना कर ऐसे दो देश, मैं न कहाऊं अन्ध नरेश।
जिस आलस्य-दास के पास, दीर्घसूत्रता करे विलास।
ऐसे दल का दृश्य निहार, दूर रहें प्यारे परिवार।

१९

चाटुकार, विट, षंढ, सपाट, भाँड़, भगतिये, भड़ुआ, भाट।
पाखंडी, खल, पिशुन, कलाल, सब का संग तजें कुलपाल।
ज्वारी, जार, बधिक, ठग, चोर, अधम, आततायी, कुलबोर।
लोलुप, लम्पट, लंठ, लबार, बढ़ें न ऐसे असुर असार।

२०

हिंसक लोग कृपालु कहाय, शुद्ध निरामिष भोजन पाय।
करें दुग्ध, घृत से तन पीन, कभी न मारें खग, मृग, मीन।
करे कुमारी जिसकी चाह, रचे उसी के साथ विवाह।
बंधे न बारे वर के साथ, बिके न बूढ़े नर के हाथ।

२१

धरें न मौर धनी बहु बार, रहें न वित्त विहीन कुमार।
करे न विधवा-वृन्द विलाप, बढ़े न गर्भ-पतन का पाप।
ठगें न कुलटा के रस-रंग, करे न मादकता मतिभंग।
मायिक मत की लगे न छूत, कायर करें न कल्पित भूत।

२२

मात, पिता, गुरु, भूपति, मित्र, सिद्ध-प्रसिद्ध, पवित्र चरित्र।
गण्य गुणी जन, धन्य धनेश, सब का मान करें सब देश।
ग्रन्थकार, कवि, कोविद, छात्र, अध्यापक, भट, साधु, सुपात्र।
चित्रकार, गायक, नट, धार, सब को मिला करें उपहार।

२३

जो जगदम्बा को उर धार, करें अलौकिक आविष्कार।
उन देवों के दर्शन पाय, पूजा करूं किरीट झुकाय।
जो निशंक नामी कविराज, आय निहारे राज-समाज।
करे प्रबन्धों के गुण-गान, वह पावे दरबारी दान।

२४

घटे न मंगल पुण्य प्रताप, बढ़े न पापजन्य-परिताप।
भाव सत्ययुग का भर जाय, कलियुग की नानी मर जाय।
यों सामाजिक धर्म पसार, करूं प्रजा पर पूरा प्यार।
पकड़े न्याय-नीति का हाथ, विचरे दण्ड दया के साथ।

२५

नानाविधि विभाग संयोग, दिव्य दृश्य देखें सब लोग।
धरें सुकृति का सीता नाम, समझें मुझे दूसरा राम।
क्या बकवाद किया बेजोड़, बस होली सिड़ियों की होड़।
धार मन्दभागी मुख मौन, तेरी सनक सुनेगा कौन।

२६

पाया घोर नरक में वास, बीते हायन हाय पचास।
आ पहुँचा है अन्तिम काल, क्या होगा बन कर भूपाल।
अब तो सब से नाता तोड़, बन्धन-रूप दुराशा छोड़।
रे मन, ज्ञान-सिन्धु के मीन, हो जा परमतत्व में लीन।

वायस-विजय

[पण्डितराज विष्णुशर्मा का बनाया सुप्रसिद्ध 'पंचतन्त्र' राजनीति विषयक एक उत्कृष्ट ग्रन्थ है। इसके कई भाषाओं में अनुवाद हो चुके हैं। हिन्दी में भी यत्र-तत्र लोगों ने गद्यानुवाद किए हैं। उक्त ग्रन्थ संस्कृत में गद्यपद्यमय है, इसकी संस्कृत बड़ी सरल और मनोहर है। यह अनेक ग्रन्थों से संग्रह करके लिखा गया है। सोमदेव भट्ट के प्रसिद्ध 'कथासरित्सागर' की इसमें कई कहानियाँ हैं। चाणक्यनीति, माघ, गीता, भारत आदि के श्लोकों को समुचित स्थानों पर संग्रह किया है। इस के 'मित्रभेद', 'मित्रसंप्राप्ति', 'काकोलूकीय', 'अपरीक्षितकारक' और 'लब्ध-प्रणाश' ये पाँच प्रकरण हैं। पाँचों में नीति विषय में 'काकोलूकीय' प्रकरण बड़ा भव्य है। उसी का यह संक्षेपतः पद्यानुवाद वीर छन्दों में है। 'काकोलूकीय' प्रकरण में कौओं और उल्लुओं की लड़ाई का हाल है। इस लड़ाई में वायस (कौआ) की जीत हुई, इसी से इस कविता का नाम 'वायस-विजय' रक्खा गया है।

'वायस-विजय' की संक्षिप्त कथा इस प्रकार है—एक बड़के वृक्षपर कौओं का राजा 'मेघवर्ण' रहा करता था; और एक पहाड़ की गुफा में 'अरिमर्दन' नामक उल्लुओं का राजा रहता था। अरिमर्दन सदा उस बड़के तले रात में आकर जिस किसी कौए को पाता उसी को पकड़ कर

खाजाता। इस तरह उसने बहुत-से कौओं का नाश किया। अन्त में मेघवर्ण ने अपने मन्त्रियों से सलाह की कि सन्धि आदि गुणों में से किसका अवलम्ब करना चाहिये ? मेघवर्ण के मन्त्रियों ने क्रम से सन्धि आदि की सम्मतियाँ दीं, पर अन्त में उसने अपने पिता के मन्त्री स्थिरजीवी की राय से द्वैधीभाव (शत्रु को अपना विश्वास दिलाकर, उसके मन्त्री आदिकों में भेद पैदा कर स्वार्थ सिद्ध करना) का आश्रयण करके विजय पाई।

स्थिरजीवी ने सलाह दी कि तुम मुझे घायल करके यहाँ से भाग जाओ। रात्रि में उल्लूकराज आवेगा तो उससे बात-चीत करके उस पर विश्वास जमाऊँगा और उन्हीं में घुसकर उनका नाश करूँगा। स्थिरजीवी ने ऐसा ही किया। उन्हीं के द्वार पर लकड़ियों को इकट्ठी करके उस में आग देदी, जिससे सब उल्लू नष्ट होगए !

उलूकराज अरिमर्दन के पाँच मन्त्री थे, जिनमें रक्ताक्ष सर्वोत्तम था, उसने यह राय दी कि यह विपक्षी है, इसे मार देना चाहिए, इसी में कल्याण है। अन्य मन्त्रियों ने सलाह दी कि नहीं शरणागत को नहीं मारना चाहिए। यही सलाह उलूकराज ने मानली, इससे रक्ताक्ष उसके पास से चला गया और वह सपरिवार नष्ट हुआ।]

१

शंकर के उस रुद्ररोष का धीर धुरन्धर धरिये ध्यान,
जिस ने वीरों में उपजाया अविचल मार-काट का ज्ञान।
पण्डितराज विष्णुशर्मा के 'पञ्चतन्त्र' की पाय विभूति,
देखो, अलबेली कविता में काक-उलूकों की करतूति।

२

जिस का वैरी मित्र बनेगा उस का कर देगा संहार,
फूँक दिया कपटी कौए ने छल कर उल्लू का परिवार।
प्रबल शत्रु के सर्वनाश का सीखो-समझो सहज उपाय,
यारो, आज अनोखो आल्हा आओ, गाओ ढोल बजाय।

३

एक बड़ा बड़ था दक्षिण में महिलारोप्य नगर के पास,
वायस-राज बसे था उपर्य मेघवर्ण दलसहित उदास।
उन कौओं के शत्रु पुराने गिरि-गह्वर में गुप्त सचेत,
उतपाती उल्लू रहते थे अरिमर्दन सम्राट समेत।

४

दिन के साधु रात के डाकू उल्लू उड़ते थे चहुँ ओर,
घेर-घेर सोते कौओं को घायल करते थे कुल-बोर।
काँउ-काँउ कर काग अभागे सहते रहे भयानक मार,
वीर वैरियों से बचने को कातर करने लगे विचार।

५

सबसे पहले शोकसभा में बोला व्याकुल वायस-राज,
संकट के कारण को काटें ऐसी बात विचारो आज।
क्योंकि नहीं जो रोक सकेगा रोग और वैरी की बाढ़,
वे दोनों उस के प्राणों को दूर करेंगे तन से काढ़।

६

जिनके लोहू की लाली से सारा पेड़ होगया लाल,
उन प्यारों के हाय! पड़े हैं पञ्जर, पञ्जे, पंख विशाल।
कच्चा-बच्चा बचा न कोई फूटे अण्डे पड़े अनेक,
जो ऐसा ही काल रहा तो जीता नहीं रहेगा एक।

७

दिन में रिपु का दुर्ग न देखा हम सब रहें रात-भर अन्ध,
नीच उलूकों से बचने का किस कौशल से करें प्रबन्ध।
बोलो, विग्रह, सन्धि, चढ़ाई, आसन, संश्रय, द्वैधीभाव,
इनमें से किस विधि के द्वारा करें वैरियों से बरताव।

८

धीरज धार सभासद बोले सुनकर मेघवर्ण की बात,
मन्त्र मन्त्रियों से रोकेंगे नाथ, उलूकों के उत्पात ।
अवसर पाय न सूझें जिनको हितसाधन के विविध विधान,
ऐसे मिठबोला सचिवों को राजा समझे शत्रु समान ।

राजा और प्रजा की बातें सुन बोला उज्जीवि* तुरन्त,
बलवानों से वैर किया तो सबका आ जावेगा अन्त ।
हार-हार कर देख चुके हो जिसकी मार-धाड़ के ढंग,
विग्रह करना ठीक न होगा उस वञ्चक वैरी के संग ।

१०

अरिमर्दन से युद्ध चला तो कभी नहीं होगा कल्याण,
सन्धि-प्रयोग बचा सकता है निस्सन्देह हमारे प्राण ।
जो रणजीत महा विजयी से कर लेता है मेल-मिलाप,
उस राजा से आ मिलते हैं अन्य विरोधी अपने आप ।

११

यह सुनकर संजीवी बोला पहले मन्त्री के प्रतिकूल,
रिपु को सन्धि-सँदेशा देना, देव, न होगा मंगलमूल ।
आज दिवाकर के छिपते ही रात चाँदनी में रण रोप,
विग्रह के बल से खलदल को मारो काट-काट कर कोप ।

१२

मिथ्यावादी, भीरु, प्रमादी, लण्ठ, लालची, चञ्चल, चोर,
त्याग-त्याग तन, प्राण समर में भागेंगे यमपुर की ओर ।
मेल-माल का नाम लिया तो अरि को और बढ़ेगा रोष,
मार पड़ेगी लुट जावेगा, प्रभु के बल-वैभव का कोष ।

१३

यह सुनकर बोला अनुजीवी दोनों सचिवों के विपरीत,
सन्धि और विग्रह के द्वारा होगी नहीं हमारी जीत ।

---

*उज्जीवी, संजीवी, अनुजीवी और प्रजीवी मेघवर्ण के मन्त्रियों के नाम हैं

मेरा मन्त्र मानलो स्वामी उर में यान धर्म को धार,
चल घेरो वैरी के गढ़ को करदो हम सबका उद्धार ।

१४

आयुस पाय प्रजीवी बोला आसन को समझो सुखधाम,
विग्रह, सन्धि, यान तीनों का उलटा निकलेगा परिणाम ।
देश छोड़कर कर न सकोगे दारुण दुःख प्रजा का दूर,
देव, इसी गढ़ में दल-बल के साथ उपाय करो भरपूर ।

१५

सुनकर किया चिरंजीवी* ने संशयमूलक मन्त्र प्रकाश,
विग्रह, सन्धि, यान, आसन से होगा नहीं शत्रु का नाश ।
जो मिल जाय हमारे दल में सेना सहित अन्य भूपाल,
तो उस अरिमर्दन का स्वामी, कर सकते हो बण्टाढाल ।

१६

भिन्न-भिन्न पाँचों की बातें सुनकर, कर प्रणाम काकेश,
वृद्ध स्थिरजीवी + से बोला अब कुछ आप करें उपदेश ।
पुण्यश्लोक प्रजेश पिता के नीति-निपुण मन्त्री हैं आप,
तात, अमोघ मन्त्र के द्वारा दूरकरो सबके सन्ताप ।

१७

समझा दो वह साधन सारे जिनका प्रण कर करें प्रयोग,
देव, आप ही के अनुगामी होकर जीतेंगे हम लोग ।
वीर बतादो क्यों रखते हैं हम लोगों से वैर उलूक,
क्या इनके प्रतिकूल पड़ी है कोई काकजाति की चूक ।

१८

सुनकर बोला वृद्ध विवेकी, बेटा, मारो मिलकर हाथ,
अरिमर्दन को जीत सकोगे द्वैधीभाव धर्म के साथ ।
वैर-विरोध छिपा लो मन में रिपु से करो ऊपरी मेल,
शुभचिंतक बनकर दिखलाना उसको सर्वनाश का खेल ।

---

*मेघवर्ण का मन्त्री + मेघवर्ण के पिता का सचिव ।

१६

काक-उलूकों की अनबनका सुनते हैं इस भाँति प्रसंग,
एक बार सम्राट् गरुड़ के शासन से चिड़गये विहंग।
निर्वाचन अभिनव राजा का करने लगा शकुन्त-समाज,
वैनतेय को त्याग सबोंने उल्लू मान लिया खगराज।

२०

जिसके द्वारा होने को था विधिवत् उल्लू का अभिषेक,
उस मण्डल में आकर बोला विद्यावारिधि वायस एक।
ऊजड़वासी, अप्रियभाषी, दिनका अन्धा, कुटिल, कुरूप,
क्या यह नीच उलूक बनेगा श्री विनतानन्दन-सा भूप।

२१

इस उजबक से कभी न होगा कठिन प्रजा-पालन का काम,
हम सबका कल्याण करेगा गौरवशील गरुड़ का नाम।
चन्द्रभक्त बनकर खरहों ने जीत लिया था वैरी नाग,
कहा सबोंने इस गाथा का सार सुनादो, बोला काग।

२२

सूखा पड़ जाने से भागा चतुर्दन्त द्विप देश विसार,
पहुँचा दूर एक पुष्कर में पानी पिया सहित परिवार।
तत्तटवासी खरगोशों को कुचल गया वह कुञ्जर-झुँड,
दलदल में दबगये अभागे टूटे कर-पग, फूटे मुंड।

२३

जो बच रहे उन्होंने अपने बचने का यों किया उपाय
अरि के उच्चाटन को भेजा लम्बकरण को दूत बनाय।
वह चढ़कर ऊँचे टीले पै बोला रे दुर्मद गजराज,
इस जल-हृद में चन्द्र-कोप से कुनवा सहित मरेगा आज।

२४

कुञ्जर बोला चन्द्र कहाँ है, कहा—दिखादूं आ, इस ओर,
जाकर द्विपनायक ने देखी जल में चन्द्रबिम्ब की कोर।
कर प्रणाम सुकुटुम्ब सिधारा, फिरा न फिर हाथी मतिमन्द,
शशि की सेवा से शशकों ने सर पर वास किया सानन्द।

२५

यों महानुभावों की महिमा करती है छोटों का त्राण,
क्षुद्र अर्थपति के छलबल में दो पक्षी खो बैठे प्राण।
कहा सभा ने इस घटना को कहो कृपाकर काक-सुजान,
यों अपनी अनुभूत कथा का वायस करने लगा बखान।

२६

मेरा और कपिञ्जल* का था एक विशाल वृक्ष पर वास,
आपस में कहते-सुनते थे हिल-मिलकर आगम इतिहास।
एकबार हम दोनों साथी चुगने को उठगये प्रभात,
फिरा न फिर वह मैंने काटी संकट-भरी भयानक रात।

२७

बिछुड़ा मित्र न पाया मुझको बीते दाहक दिवस अनेक,
उस प्यारे के रीते घर में आय रहा ठगिया शश एक।
मास बिताय कपिञ्जल आया हृष्टपुष्ट कर दुर्बल देह,
शश को देख रोष कर बोला मूढ़, छोड़ दे मेरा गेह।

२८

शश बोला यह मेरा घर है, तेरा नहीं रहा अधिकार,
तरु-कोटर का न्याय न होगा नीच, घोंसले के अनुसार।
सरिता, सेतु, घाट, पथशाला, मन्दिर, वापी, कूप, तड़ाग,
इनको बनवाने वाले भी नहीं बताते अपने भाग।

२९

वाद-विवाद उठे बहुतेरे, चले अन्त को यह मत मान,
हम दोनों का न्याय करेगा, कोई सत्यशील विद्वान्।
एक बिलाव, बखेड़ा उनका सुनकर धार धर्म के ठाठ,
मग में जाय कुशों पर बैठा करने लगा वेद का पाठ।

---

*गोरा तीतर या पपीहा।

३०

तन अनित्य क्षणभंगुर कुनबा सपना-सा दीखे संसार,
सत्य-धर्म का सम्पादन है, इस अस्थिर जीवन का सार।
वेदों का उपदेश यही है, करिये औरों का उपकार,
वञ्चक इस प्रकार की बातें कहने लगा पुकार-पुकार।

३१

धर्म-घोषणा सुनकर पहुँचे, पक्षी उस पापी के पास,
दोनों बोले न्याय हमारा, कर दो देव, जान कर दास।
जो हारे उस को खालेना, सुन बिडाल बोला मुख फेर,
आमिष का लालच देते हो, हिंसक मान मुझे अन्धेर !

३२

वृद्ध हुआ मैं इस कारण से सुनता नहीं दूर की बात,
डरो न आकर मेरे आगे, कह दो क्या झगड़ा है तात !
झगड़ालू सम्मुख जा बैठे, समझे पाखण्डी को सन्त,
मार झपट्टा झट दोनों को वह बिलाव खागया तुरन्त।

३३

क्षुद्र अर्थपति की सेवा से समझे जो न रहोगे दूर,
तो उलूक राजा बनते ही सबको दुख देगा भरपूर।
यों उस वायस के कहने से रहे गरुड़जी ही खगनाथ,
मेघवर्ण, तब से रखते हैं, उल्लू वैर हमारे साथ।

३४

काकराज बोला अरिदल का जबतक देव, न होगा ह्रास,
तब तक योंहीं कटती-मरती मेरी प्रजा सहेगी त्रास।
बूढ़ा बोला मैं जीतूँगा खल को, खेल कपट का फाग,
भोले भूसुर से छलियों ने छल कर छीन लिया था छाग।

३५

राजा ने वह कपट-कहानी, पूछी कहने लगा प्रधान,
एक अबोध कुदेव कहीं से लाया था बकरे का दान।
कोस-कोस पर उस भोले को, मग में मिले प्रतारक तीन,
श्वान, वत्स, खर सुनकर उनसे, पशु को छोड़ गया मतिहीन।

३६

यों ठग, लंठों को ठगते हैं, छलबल की करतूति चलाय,
लघु दुर्बल भी सबल बड़े का बध करते हैं अवसर पाय।
एकबार छोटे बिल में से निकला था अतिदर्प भुजंग,
मार चींटियों ने खा डाले, उसके सारे घायल अङ्ग।

३७

अब जय बोल महामाया की, उठबैठो सब शोक बिसार,
अरि का भक्त मुझे बतलाओ, मारो बार-बार धिक्कार।
शोणित लाय किसी का रँगदो, मेरा सारा श्याम शरीर,
घायल-सा मुझको करजाओ, ऋष्यमूक भूधर पर वीर।

३८

वृद्ध स्थिरजीवी अगुआ को सब ने सादर किये प्रणाम,
फिर फटकार मार कौओं ने पूरा किया कपट का काम।
ऋष्यमूक की ओर सिधारे, उस मायिक मन्त्री को छोड़,
उल्लूप्रभु से गुप्तचरों ने सारा हाल कहा करजोड़।

३९

फटफटाय कर पंख प्रमादी, अरिमर्दन दौड़ा कर क्रोध,
ऊत उलूकों के हुल्लड़ ने आकर घेर लिया न्यग्रोध।
'काट-काट मारो कौओं को' कहता था उल्लू प्रत्येक,
खोज-खोज कर हारे सारे, बट पर वायस मिला न एक।

४०

उल्लू बोले, अन्य दुर्ग में अभी न पहुंचे होंगे काग,
मारग ही में मारो सबको, चलदो इस बरगद को त्याग।
जो वे आगे बढ़जावेंगे तो बस बिगड़जायगा काम,
यों चिन्ता कर कपटी कौआ बोला-हाय ! मरा मैं राम !

४१

हाय-हाय उसकी सुनते ही उल्लू टूट पड़े छह सात,
हाहा खाकर वायस बोला, सुन लो देव, दास की बात।
राजदूत ने रोका सबको, पूछा क्या कहता है मूढ़!
आँखें खोल कुरूप काक ने उगली अपनी गाथा गूढ़।

४२

देव, आज प्रतिकूल आपके वायस करते थे बकवाद,
मैं बोला प्रभु अरिमर्दन की सेवा करो विसार प्रमाद।
इतना सुनते ही कटुभाषी मुझ पर दौड़ पड़े कर कोप,
घायल अंग-अंग कर मेरे, जानें किधर हो गये लोप।

४३

मन्त्री हूँ मैं मेघवर्ण का रक्षा करिये रखिये पास,
मेरे द्वारा सब कौओं को मार सकोगे बिना प्रयास।
आरतनाद, उल्लूकनाथ ने सुनकर कहा करो सब जाँच,
बतलाओ क्या करना होगा बोले सचिव यथाक्रम पाँच।

४४

रक्तनयन* बोला इस खलको मारो कुछ न विचारो आप,
वैरी से कब हो सकता है मित्रों का-सा मेल-मिलाप।
काकोदर + ने छोड़ दिया था कृषक-सखा देकर उपदेश,
राजा ने पूछी वह गाथा कहा सचिव ने सुनो प्रजेश।

४५

खेतहार हरिदत्त सर्प को दूध पिलाता था कर प्यार,
उसके बदले में पाता था एक स्वर्ण-मुद्रा प्रतिवार।
एक बार घर छोड़ कहीं को यों समझा कर गया किसान,
क्षीर पिलाकर क्षेत्रपाल से बेटा, लाना दैनिक दान।

४६

देकर दूध अशरफ़ी लाया लड़का लिया लोभ ने घेर,
बोला मार व्याल को, बिलसे, काढूँगा कञ्चन का ढेर।
उठ प्रभात लेकर पय पहुँचा, अहि के फनपर किया प्रहार,
चोट खाय डस लिया तिली में, गिरा गमेला प्राण-विसार।

४७

हल्ला हुआ जुड़े पुरवासी, करने लगे वहीं शवदाह,
आकर बोला बाप, कुमर को खागई चामीकर × की चाह।

---

*रक्तायन (रक्ताक्ष) अरिमर्दन का समझदार मन्त्री। + साँप। × सोना।

फूट-फूट रोया बेटे को कहकर पद्मताल* का हाल,
धीर धार बाँबी पर आया, बिनती सुनकर बोला व्याल।

४८

फन की चोट न भूलूँगा मैं तुझे सतावेगा सुत-शोक,
जा घर को अब मेरी-तेरी, मिल्लत में पड़ गई हटोक।
समझे कालकूट उगलेगा, छोड़ेगा न बिसासी वैर,
मारो, इस कपटी कौआ के प्रभु के गढ़ में पड़ें न पैर।

४९

सुनकर क्रूरअक्ष+ यों बोला, इसका मन्त्र बुरा है नाथ,
ऐसा करना ठीक नहीं है, घायल शरणागत के साथ।
इस व्याकुल बूढ़े वायस की रक्षा करो सहित सम्मान,
एक कबूतर ने दुरजन को, अपना माँस दिया था दान।

५०

अरिमर्दन बोला कैसा है, उस पारावत का इतिहास,
मन्त्री ने सबको समझाया, इस विधि से वह वीर-विलास।
भवसागर में तैर रहे हैं, जिनके उज्ज्वल जीवन-पोत,
सुन्दर वन में रहते थे वे दिव्य कपोती और कपोत।

५१

छलकर उस जोड़े की मादा, पकड़ी एक बधिक ने हाय,
नर, सूना घर देख अकेला, रोने लगा महा दुख पाय।
बोला पानी बरस चुका है, हा चलता है पवन प्रचंड,
प्राणप्रिया बिन मुझ विरही को हे हरि, ऐंठ धरेगी ठंड।

५२

परम सुशीला प्रेम-भाव से जो सुख देती थी भरपूर,
आज अकारण ही वह बाला, हाय हो गई मुझ से दूर।
जन्मकाल से साथ रही थी, हा प्यारी बिछुड़ी क्यों आज,
हा, संकट-सागर में मेरा, डूबा जीवन-रूप जहाज।

---

*पद्मवन की कहानी बेजोड़-सी है इसी से यहाँ प्रतीक देकर छोड़दी गई है।
+क्रूरअक्ष (क्रूराक्ष) अरिमर्दन का मन्त्री।

५३

पारावत पाकर पर बैठा, सहता था यों विरह-विषाद,
नीचे व्याकुल काँप रहा था, लिये कपोती को सय्याद।
कहा कबूतर की दुलही ने सुनो कृपाकर करुणाकन्द,
मन प्रभु के पग चूम रहा है, तन है इस पिंजड़े में बन्द।

५४

जो अबला करती है अपने पति की सेवा में संकोच,
केवल भूपर भारभूत है, उस कुटिला का जीवन पोच।
जिस ललना ने जान लिया है, सर्वोपरि पातिव्रत धर्म,
उस अनघा से कभी न होंगे, कुलटा के-से घोर कुकर्म।

५५

प्रभु के चरणों की पूजा का है मुझको पूरा अभिमान,
जब लों दूर रहूँगी तबलों नहीं करूँगी भोजन-पान।
भूखा-प्यासा काँप रहा है, बधिक अभागा मरणासन्न,
इस प्रतियोगी शरणागत को देव. दयाकर करो प्रसन्न।

५६

मीठे बोल सुने वनिता के उड़ा कबूतर पंख पसार,
जलती लकड़ी लाय कहीं से, सूखे पल्लव दिये पजार।
जब उस आखेटी ने अपना दूर कर लिया दारुण शीत,
तब कपोत निन्दा कर अपनी बोला सादर वचन विनीत।

५७

अब आतिथ्य करूँ किस विधि से अन्न नहीं कुछ मेरे पास,
लो, आमिष देता हूँ अपना भोजन कर लेना दो ग्रास।
यों कह कर उस पारावत ने झट पावक में किया प्रवेश,
प्राणदान कर अभ्यागत को दिया अहिंसा का उपदेश।

५८

माया धर्म विवेक बधिक ने देख कबूतर का वह हाल,
छोड़ कपोती को धर फूँके लासा, डंगी, पिंजड़ा, जाल।
दैवयोग से दान दया का आया हत्यारे के हाथ,
धन्य-धन्य, जलगई चिता में मादा अपने नर के साथ।

यों उपकारी तस्कर को भी आदर दिया वणिक ने नाथ !
फिर क्या आप अनीति करेंगे शरणागत कौए के साथ।

६५

सुनकर वक्रनास+ यों बोला दीप्तअक्ष※ ही के अनुसार,
शरणागत मारा तो स्वामी बुरा कहेंगे वीर उदार।
जिसके शत्रु लड़ें आपस में, उसका होता है कल्याण,
चोर-निशाचर की अनबन से बचे विप्र, बछड़े के प्राण।

६६

नृप ने कहा कहानी पूरी कहदे क्यों रखता है ओट,
मन्त्री बोला द्रोणविप्र ने पाली थी बछड़ों की जोट।
उन दो बैलों को लेने को घर से चला रात को चोर,
उस ब्राह्मण ही के भक्षण को निकला एक निशाचर घोर।

६७

दैवयोग से मारग ही में दोनों का हो गया मिलाप,
ठीक ठिकाने पर जा पहुंचे करने को मनमाने पाप।
बोला चोर असुर से देखो मालिक सोता है चुपचाप,
पहले मैं बछड़े लेजाऊँ पीछे हत्या करना आप।

६८

निशिचर बोला पहले खालूँ मैं इसका तन तोड़-मरोड़,
फिर तू बैल चुरा ले जाना क्यों हठ करता है बेजोड़।
'पहले मैं'-'पहले मैं' कहते-कहते बढ़ा परस्पर क्रोध,
कर बकवाद घना दोनों ने खोल दिया इस भाँति विरोध।

६९

चोर पुकारा खाजावेगा, निशिचर तुझे विप्र उठ भाग,
निशिचर बोला तस्कर तेरे बछड़े ले जावेगा जाग।
भूसुर जाग पड़ा दोनों ने पकड़ी अपनी-अपनी गैल,
प्राण बचगये बेचारे के चोरी गये न धोरी बैल।

+अरिमर्दन का मन्त्री। ※अरिमर्दन का मन्त्री।

७०

यह सुनकर आकारकर्ण ने प्रकट किया यों अपना मंत्र,
रक्षा करना शरणागत की बतलाते हैं सारे तंत्र।
भेद बताकर दिखलाते हैं जो जड़ आपस में भी दर्प,
सर्व नाश होता है उनका मारे गये यथा दो सर्प।

७१

पूछी बात उलूकाधिप ने बोला सचिव सुनो भूपाल,
राजपुत्र के मन्दोदर मे घुस बैठा मुख द्वारा व्याल।
लाख चिकित्सा करने पर भी घटा न नेक पेट का रोग,
चारों ओर भटकता डोला रोगी छोड़ दिव्य सुखभोग।

७२

राजा बलि से पाया उसने विदुषी राजसुता का दान,
नारि नवोढ़ा रोगी पति की सेवा करती थी सुखमान।
भोजन की सामग्री लेने ललना गई नगर की ओर,
बिल के पास घने उपवन में पौढ़ रहा वह भूप-किशोर।

७३

उस अचेत सोते के मुख से निकला पद्मनाग विकराल,
उस विषधर से आकर बोला बिलका काला व्याल विशाल।
निरपराध इस नृपनन्दन को क्यों दुख देता है, रे नीच,
हाय, किसी ने क्यों न बुलाई काँजी देकर तेरी मीच+।

७४

मुखपन्नग बोला काँजी से जो मारेगा मुझे पजार,
वह कंचन काढ़ेगा बिलका उष्णोदक से तुझको मार।
राजसुता ने सुन वे बातें जल-काँजी का किया प्रयोग,
बाँबी का सब सोना पाया, राजकुमार हुआ नीरोग।

७५

सुन कर किया उलूकराज ने यों अपना मन्तव्य प्रकाश,
भेद पाय इस वृद्ध काक से कर दूंगा रिपुदल का नाश।
सारहीन बातें सुन सब की बोला रक्तनयन निश्शंक,
देव दुरदशा के कारण हैं, ये चारों मन्त्री मतिरंक।

+मौत

७६

जहाँ न आदर हैं चतुरों का, पूजे जाते हैं मतिहीन,
वास-विलास वहां करते हैं भय, दुर्भिक्ष, मरण ये तीन।
मित्र, शत्रु को जो समझेगा वैसा है वह ऊत अजान,
जैसे बढ़ई ने समझी थी बिगड़ी वनिता सती समान।

७७

कहा उलूकों ने कुलटा को क्यों सुभगा समझा रथकार,
मन्त्री ने उस कपट-कथा का काला मुख यों दिया उघार।
रवि शीतल हो, शशि गरमावे, दुरजन करे साधु की होड़,
ऐसा हो तो हो सकती है, सती, नवेली नारि हँसोड़।

७८

बदनामी सुन कर वनिता की जल कर बिगड़ा बढ़ई एक,
जाँच करूंगा कल कुलटा की यों चुपचाप टिकाई टेक।
तड़का होते ही उस अपनी रमणी से बोला रथकार,
लौटूंगा छह सात दिनों में जाता हूँ मैं सरजू पार।

७९

यों समझाकर घर से निकला दुर बैठा जंगल में जाय,
मदमाती ने मनमाने को न्योता दिया सुअवसर पाय।
सेज बिछा दी सूने घर में कर बैठी सोलह शृंगार,
सोता पड़ते ही नगरी में आया छैल-छबीला जार।

८०

झट आरम्भ किया दोनों ने चुम्बन-परिरम्भण का काम,
भींत फाँद पलका के नीचे, आय विराजे बढ़ई राम।
खटका सुनते ही वह खन्दी, खटिया से उतरी तत्काल,
पाय पड़ा पिय की पगड़ी पै उलझी-सुलझी पलटी चाल।

८१

झाला देकर कनअंखियों का, बोली जोड़ जार के हाथ,
अब तुम अपने घर को जाओ, अनुचित करो न मेरे साथ।
बोला जार बुलाया मुझको पहले द्वार प्रेम का खोल
अब रस में विष घोल रही है, इसका क्या कारण है बोल।

८२

कुलटा बोली बतलाई थी, मुझ को चंडी ने यह बात,
आलिंगन कर जार पुरुष का जो चाहे अपना अहिवात*।
तेरा पति सौ वर्ष जियेगा, करले मेरा कहा उपाय,
यों न किया तो विधवा होगी, अब से आधा अब्द बिताय।

८३

अवसर पाय बुलाया तुमको, मैंने इस कारण से आज,
देव, तुम्हारे आलिंगन से सिद्ध होगया मेरा काज।
वरदा देवी के कहने से इतना करना पड़ा कुकर्म,
अब विपरीत विलास न होगा, रखती हूँ पातिव्रत धर्म।

८४

धन्य धन्य कहता खटिया के नीचे से निकला रथकार,
धरकर दोनों को कन्धों पै घर-घर गाता फिरा गमार।
बढ़ई ने मंगलकर माना, देख दिखा कर पाप-कलाप,
वीर बचाकर इस वायस को वैसा ही करते हैं आप।

८५

नीतिनिकेत अरुणलोचन की मानी नहीं एक भी बात,
उल्लू कौए को ले पहुँचे, अपने गढ़ में पिछली रात।
सब से आदर पाने पर भी टिका न कुटिल किसी के पास,
कर्मवीर बूढ़े वायस ने दुर्गद्वार पर किया निवास।

८६

मनमाना आमिष देते थे, उल्लू मान-मान महमान,
खा-खा कर होगया बिसासी वृद्ध स्थिरजीवी बलवान।
वैरी की पूजा करने में देखी नहीं किसी की चूक,
फिर भी रक्तनयन मन्त्री ने समझाये सम्राट उलूक।

८७

दोष विमूढ़ों के दिखलाये नैतिक मन्त्र कहे दो तीन,
सदुपदेश को उलटा समझे उल्लू मतवाले मतिहीन।

---

*सुहाग

मौन धार सोचा मन्त्री ने, मरघट-सा होगा यह ठौर,
सब को छोड़ काल के मुख में अपना किया ठिकाना और।

८८

रक्तनयन सकुटुम्ब सिधारा, अरिमर्दन का संग विसार,
वायस ने सुख मान सबों के सर्वनाश का किया विचार।
शैल-कन्दरा में जब सारे उल्लू पौढ़े रात बिताय,
तब नरमेध रचा कपटी ने मेघवर्ण का मंगल गाय।

८६

बीन-बीन कर लकड़ी लाया, किया गुफा के मुख में ढेर,
समझे नहीं उलूक अनारी छलिया का अन्तिम अंधेर।
अन्धचिता रच आधे दिन में ऋष्यमूक पर गया तुरन्त,
हिल-मिलकर कौओं से बोला, चलकर करो शत्रु का अन्त।

६०

काठ-कबाड़ लगाकर मैंने रोक दिया है गढ़ का द्वार,
तुम लूके ले-ले कर उस में रखदो, करदो, धूआँधार।
हाय-हाय कर प्राण तजेंगे आज अभागे उल्लू ऊत,
पीछा छोड़ेंगे हम सबका होकर सारे भस्मीभूत।

६१

वृद्ध सचिव के संग सिधारे, लूके ले-ले कर सब काग,
अरिमर्दन वैरी के गढ़ में ऊल-ऊल कर देदी आग।
भड़भड़ाय कर ज्वाला जागी मचा कुलाहल हाहाकार,
वायस वीरों ने जयपाई, यों रिपुदल को फूँक-पजार।

६२

मार उलूकों को मिल बैठे वायस मंगल, मोद मनाय,
धन्यवाद दे-देकर सबने पूजे वृद्ध सचिव के पाय।
मेघवर्ण बोला बतला दो, देव, दया कर सारा हाल,
अरिमर्दन के दल में काटा किस प्रकार से इतना काल।

९३

बोला सचिव न भाया मुझको, बोध-विहीन उलूक-समाज,
केवल रक्तनयन मन्त्री था, नीति-विशारद पंडितराज।
जो उस मूढ़-महामण्डल में मानी जाती उसकी बात,
तो मैं क्या, कौओं के कुल में जीता एक न रहता तात।

९४

ऊत उलूकों के ठगने को मैंने रचे प्रपंच अनेक,
नाग, मन्दविष ने ज्यों अपने ऊपर आप चढ़ाये भेक।
राजा ने पूछी वह गाथा, कहा सचिव ने सुन लो वीर,
वृद्ध सर्प वरुणाचल वासी, आ बैठा पोखर के तीर।

९५

पूछा देख उसे मेंढक ने क्या तू ताक रहा चुपचाप,
अहि बोला वाहन भेकों का बना गया मुझको मुनिशाप।
इतना सुनते ही चढ़ बैठा, फनपर भेकराज 'जलपाद',
फिर मण्डूक चढ़े बहुतेरे, रेंगा सर्प सबों को लाद।

९६

थोड़ी देर फिरा लहराता, फिर दिखलाई धीमी चाल,
चल-चल दौड़, चढ़ैत पुकारे, भूखा हूँ यों बोला व्याल।
कहा कृपा कर नीरपाद ने खा लेना दर्दुर दो चार,
यों भुजंग भोजन भेकों का करने लगा प्रपंच पसार।

९७

आकर अन्य उरग ने पूछा, ऐसा क्यों करता है मूढ़,
कहा मन्दविषने मत मेरा कपट अन्ध का-सा है गूढ़।
अहि बोला वह अन्ध कहानी कहदे कहने लगा भुजंग,
माल खिलाती थी परपति को कुलटा छलकर पति के संग।

९८

पूछा पति ने प्यारी, पेड़े किसे खिलाती है प्रतिवार,
बोली नारि महामाया की पूजा करती हूँ व्रतधार।
फिर यों सोची पकड़ न पावे मालिक मेरे छलका छोर,
लेकर सब सामान सिधारी, चण्डी के मन्दिर की ओर।

९९

प्रतिमा के पीछे जा छिपका, थाँगी घरवाला घर छोड़,
फिर पहुँची कुलबोर उमा की पूजा कर बोली कर जोड़।
पति मेरा अन्धा हो जावे कहदे मा क्या करूं प्रयोग,
कर स्वर-भंग कहा स्वामी ने उसे दिया कर मोहन भोग।

१००

मनमानी विधि सीख शिवा से ललना लौटी घूंघट मार,
उसके आने से पहले ही घर में आ बैठा भरतार।
आकर कुछ बातें कर बोली, प्रभु, कृश अंग आप के ताक,
मैं चिंतातुर हूँ कल ही से हलवा खाना दोनों छाक।

१०१

दुलहा के हलवा खाने का दुलही ने कर दिया प्रबंध,
थोड़े दिन खाकर यह बोला, मैं तो हाय हो गया अन्ध!
सुनते ही रोपड़ी रँगीली मन में हँसी महा सुखमान,
जाने लगा जार घर उसके फला भवानी का वरदान।

१०२

जलकर उस कृत्रिम अन्धे ने मारा जार लगाय कपाट,
मारपीट मुखड़ा कर काला छोड़ी नारि नासिका काट।
यों समझाय सर्प को अपनी लीला का निश्चित परिणाम,
खाडाले वे मेंढक सारे गया मंदविष अपने धाम।

१०३

मेघवर्ण, मैंने इस ढब से खोया अरिमर्दन का खोज,
अब सानन्द प्रजा पूजेगी बेटा, तेरे चरण-सरोज।
शत्रुहीन वायस वीरों का अब न सुनोगे आरतनाद,
अपनी प्यारी काक-जाति का शासन करो बिसार प्रमाद।

१०४

रहा न रावण-सा अभिमानी रहे न राम लोकअभिराम,
रहा न कोई कौरव-कुल में रहे न अर्जुन-गुरु-घनश्याम।
खोटे और खरे सब खाये, काल-व्याल ने वदन पसार,
ऐसा सोच प्रजा पर प्यारे, करना पूरा-पूरा प्यार।

१०५

वैर-फूट के पास न जाना, सब से रखना मेल-मिलाप,
पुण्यशील सुख से दिन काटें, पापी करते रहें विलाप।
पक्षपात के साथ किसी को कभी न देना दण्ड कठोर,
सुन उपदेश महामन्त्री का वायस बढ़े दुर्ग की ओर।

१०६

शत्रु-नाशकर आय विराजी, बरगद पर कौओं की पाँति,
हे शङ्कर, क्या हम न हँसेंगे देख भारतोदय इस भाँति।
उजबकपन से उल्लू हारे, चतुराई से जीते काग,
पाठक चञ्चरीक समझेंगे, इस प्रसंग को पद्मपराग।

समालोचक-लक्षण

१

जिसके द्वारा शंकर ससार न होगा,
जिसके द्वारा सद्धर्म-प्रचार न होगा,
जिसके द्वारा लौकिक व्यवहार न होगा,
जिसके द्वारा परलोक-सुधार न होगा।
ऐसे ग्रन्थों पर जिसे रोष आता है,
वह वीर समालोचक पदवी पाता है।

२

जिनसे विवेक-द्रुम के दल झड़ जाते हैं,
जिनसे हित-हरि के पंख उखड़ जाते हैं,
जिनसे व्रत-बन्धन ढीले पड़ जाते हैं,
जिनसे सबके सब ढंग बिगड़ जाते हैं।
उन बातों पर जो कभी न पतियाता है,
वह वीर समालोचक पदवी पाता है।

३

जो पक्षपात पामर को मार भगावे,
अन्याय-असुर के उर में आग लगावे,
झूठी सहृदयता के गढ़ गीत न गावे,
मन-मन्दिर में समता की ज्योति जगावे।
उस न्याय निरंकुश को जो अपनाता है,
वह वीर समालोचक पदवी पाता है।

४

विज्ञान, शिल्प, वाणिज्य प्रचारक प्यारे,
नाना विधि विषय-विशारद न्यारे-न्यारे,
प्रतिभाशाली सम्पादक-सुकवि हमारे,
सज्जन भाषा-साहित्य-सुधारक सारे।
जो इन सबके सादर सद्गुण गाता है,
वह वीर समालोचक पदवी पाता है।

५

सब यन्त्र-कला-कौशल के काम सँभालो,
नूतन आविष्कारों के नाम निकालो,
कृषि-विद्या और रसायन में रस डालो,
कोरी कहानियों के कलबूत न ढालो।
जो इस प्रकार उन्नति को उमगाता है,
वह वीर समालोचक पदवी पाता है।

६

"हम देश-भक्त उन्नति की गैल गहेंगे,
कर देशी वस्तु-प्रचार प्रसन्न रहेंगे,
फटकार, मार, आघात अनेक सहेंगे,
पर वार-वार 'वन्देमातरम्' कहेंगे।'
ऐसे प्रण को जो घर-घर पहुंचाता है,
वह वीर समालोचक पदवी पाता है।

७

जिनके सब सुन्दर गद्य लेख पढ़ते हैं,
उनके कुपद्य-कण्टक उर में गढ़ते हैं,
कुछ केवल कविता के बल से बढ़ते हैं,
विरले चम्पू रच-रच ऊँचे चढ़ते हैं।
जो कवि-कुल में तीनों दल दरसाता है,
वह वीर समालोचक पदवी पाता है।

८

व्याकरण-केहरी से न कभी डरती है,
पिङ्गल काटे सौ बार नहीं मरती है,
साहित्य-मत्त गज के मग में चरती है,
तुकियों के उर-वन में विहार करती है।
उस कविता-कुत्ती को जो धमकाता है,
वह वीर समालोचक पदवी पाता है।

९

कुछ काट-छाँट कर आशय इधर-उधर के,
छल का बल पाय छपाये पोथे घर के,
व्यवसाय-सखा शुभचिन्तक भारत-भर के,
बन बैठे ग्राह महाविद्या-सागर के।
ऐसे ठगियों को जो ठग बतलाता है,
वह वीर समालोचक पदवी पाता है।

१०

कुछ ग्रन्थ किसी भाषा के पढ़ लेते हैं,
टूटी-फूटी कविता भी गढ़ लेते हैं,
मिथ्याभिमान-कुञ्जर पर चढ़ लेते हैं,
लड़-भिड़ कलंक माथे पर मढ़ लेते हैं।
उनका घमण्ड जिसकी ठोकर खाता है,
वह वीर समालोचक पदवी पाता है।

११

हिन्दी की छाती पर पग धर देते हैं,
रस-रीति नायिकाजी की भर देते हैं,
तुक जोड़ समस्या पूरी कर देते हैं,
भूषण-समूह के कान कतर देते हैं।
उस कवि-मण्डल में जो न कभी जाता है,
वह वीर समालोचक पदवी पाता है।

१२

अब तो मुख परकीया से सत्वर मोड़ो,
इन के शठ धृष्ट सेवकों के सिर तोड़ो,
सुख-मूल स्वकीया का शुभ संग न छोड़ो,
समयानुसार रसपति का सार निचोड़ो।
जो कवि-नायकजी को यों समझाता है,
वह वीर समालोचक पदवी पाता है।

१३

आपस में लड़ते हैं नाना मत वाले,
अपने-अपने अनुकूल ग्रन्थ गढ़ डाले,
अब करते हैं, पत्रों के कालम काले,
पढ़ देखो सबके लेख, प्रसंग निराले।
इस कल-कल को जो निष्फल बतलाता है,
वह वीर समालोचक पदवी पाता है।

१४

भोजन को माँगें राज-भोग की भिक्षा,
पीते रहते हैं, दूध और आमिक्षा,
ये क्या जानें कहते हैं किसे तितिक्षा,
देते फिरते हैं 'तत्वमसी' की शिक्षा।
इनके गन्धर्व नगर को जो ढाता है,
वह वीर समालोचक पदवी पाता है।

१५

भगवान भास्कर भारत छोड़ सिधारे,
हा दैव, दुरे दैवज्ञ-सुधाकर-तारे,
जातक-ताजक-तम ने फल-पटल पसारे,
बनगए ग्रहों के ठेकेदार भरारे।
जिसको इनका संवाद नहीं भाता है,
वह वीर समालोचक पदवी पाता है।

१६

उपदेशक-दल के लुंड-मुंड लीडर हैं,
जातीय सभा के सभ्य महा मिस्टर हैं,
देशी सुधार के सर-सर प्रोफेसर हैं,
सब हैं परन्तु कोरी घें-घें के घर हैं।
इनकी ध्वनि सुन जिसका जी मचलाता है,
वह वीर समालोचक पदवी पाता है।

१७

करताल चिकारा ढोल बजाने वाले,
बेजोड़ तुक्कड़ों के पद गाने वाले,
हा-हा हू-हू पर तान उड़ाने वाले,
वैदिक दल के गन्धर्व कहाने वाले।
इनके पीछे जिसकी धिक्-धिक् धाता है,
वह वीर समालोचक पदवी पाता है।

१८

पढ़ मूल ग्रन्थ को अर्थ, प्रयोजन जाने,
फिर गद्य-पद्य के गौरव को पहचाने,
उस ग्रन्थ-प्रणेता को अरि-मित्र न माने,
अनुभूत निबन्धों के गुण-दोष बखाने।
जिसके मन में यों सत्य समा जाता है,
वह वीर समालोचक पदवी पाता है।

१६

जिस आगम का आशय न समझ में आवे,
उस पै न वृथा अटकल की लाग लगावे,
जब अर्थ-भाव मन में समस्त भर जावे,
तब जैसा हो वैसा लिख लेख बतावे।
सब तन्त्रों का सद्भाव जिसे आता है,
वह वीर समालोचक पदवी पाता है।

२०

लिख नाम ग्रन्थ का, कीमत और ठिकाना,
फिर जिल्द, छपाई, कागज के गुण गाना,
कह ग्रन्थकार को कविवर पिण्ड छुड़ाना,
सबकी रचना को खोटी-खरी बताना।
जिसका न लेख ऐसी रसीद दाता है,
वह वीर समालोचक पदवी पाता है।

(सरस्वती, अगस्त १६०६)

हमारा अधःपतन

१

शङ्कर सुखमूल शोकहारी,
रे रुद्र, त्रिशूल-शक्ति-धारी।
टुक देख दयालु न्यायकारी,
गत गौरव दुर्दशा हमारी।

२

श्रेयस्कर सत्य युग कहाया,
अधिकार अधर्म ने न पाया।
समझी श्रीराम की कहानी,
त्रेता की नीति-रीति जानी।

३

द्वापर के अन्त की लड़ाई,
वीरों के वैर की बड़ाई ।
हारे, पर हाथ कुछ न आया,
जीते फल सर्वनाश पाया ।

४

आया कलिकाल-कोप जब से,
उत्पात उठे अनेक तब से ।
उद्यम के प्राण ले रहा है,
दुर्दैव दरिद्र दे रहा है ।

५

याजक न रहे न सिद्ध योगी,
सम्राट् रहे न राज-भोगी ।
व्यापार-विशेष कम रहे हैं,
कोरे कङ्गाल हो रहे हैं ।

६

आचार-विचार धर्म-निष्ठा,
प्रण-पालन प्रेम की प्रतिष्ठा ।
विद्या-बल वित्त सब कहाँ है,
विज्ञान-विनोद अब कहाँ है ।

७

खो बैठे धर्म-धीरता को,
संवित्, सन्तोष, वीरता को ।
निर्मल निधि न्याय की न भावे,
सुविधा न सुधार की सुहावे ।

८

अगणित अनमोल ग्रन्थ खोये,
गड़बड़ कर वेद भी बिगोये ।
इतिहास रहे न गुरु जनों के,
दर्शन हैं शेष दर्शनों के ।

९
ज्योतिष की ज्योति जगमगाती,
भूगोल-खगोल को जगाती ।
उतरी ग्रह-वेध की नली में,
डूबी अब जन्म-कुण्डली में ।

१०
वह योग-समाधि मोदकारी,
वह आयुर्वेद रोगहारी ।
जानें जिनके न अंग पूरे,
अब योगी-वैद्य हैं अधूरे ।

११
पढ़ते हैं वेद को न शर्मा,
लड़ना जानें न वीर वर्मा ।
गिन-गिन गाड़ें न गुप्त धन को,
कोसें सब दास दासपन को ।

१२
कविराज समाज में न बोलें,
प्रतिभाशाली उदास डोलें ।
गुणियों के मुख-सरोज सूखे,
फिरते हैं शिल्पकार भूखे ।

१३
शृंगार उतार भूषणों के,
उगले दुर्भाव दूषणों के ।
कविता रस-भंग आज-कल की,
हो जाय कहीं न और हलकी ।

१४
जितने मन्वादि के कथन हैं,
कर्तव्य-करील के छदन हैं ।
अब जो करतूति में भरी है,
उस विधि की जड़ बिरादरी है ।

१५

जो बात नयी निकालते हैं,
भोलों की भूल टालते हैं।
भटकें वे हाय रोटियों को,
चिथड़े न मिलें लँगोटियों को।

१६

पाखण्ड-भरी पवित्रता है,
छल-बल के साथ मित्रता है।
अस्थिर मन घर घमण्ड का है,
डर है तो राज-दण्ड का है।

१७

बकने को व्याकरण अलम है,
लड़ने को न्याय भी न कम है।
विद्या-वारिधि उपाधि पाई,
अब शेष रही न पण्डिताई।

१८

मत-भेद-पसार फूट फैली,
बिन मेल रही न एक शैली
भागे सुख-भोग, रोग जागे,
बड़भागी हो गए अभागे।

१९

उपदेश नहीं निकल रहे हैं;
कटु भाषण बाण चल रहे हैं!
मनमाने पक्ष अड़ रहे हैं,
प्रामादिक लेख लड़ रहे हैं।

२०

व्यभिचारी पेट के पुजारी;
बन बैठे बाल ब्रह्मचारी।
मिथ्या सब 'सोऽहमस्मि' बोलें,
साकार अनेक ब्रह्म डोलें।

२१

बच्चों के तेजहीन बच्चे,
कच्चे, व्यवहार के न सच्चे।
ये भीरु भला न कर सकेंगे,
थोड़े दिन पेट भर सकेंगे।

२२

विधवा रिस रोक रो रही हैं,
लाखों कुल-कानि खो रही हैं।
जारों के गर्भ धारती हैं,
जनती हैं और मारती हैं।

२३

भूखे पशु पोच लट रहे हैं,
देखो बिन काल कट रहे हैं।
गोकुल में शोक छारहा है,
हा, याद अशोक आ रहा है।

२४

घी-दूध-दही सदैव खाते,
सौ में दो-चार भी न पाते!
सब तीत सनेह की निचोड़ी,
छलियों ने छाछ भी न छोड़ी!

२५

क्योंजी बेजोड़ ब्याज खाना,
दीनों को रात-दिन सताना।
समझे हैं जो सुशील इनको,
कहते हैं वे कुशील किनको।

२६

जीवन-भर जी लगाय लोगो,
मनभाये भव्य भोग भोगो।
कहते हैं, माल-मस्त ऐसा,
किसका अन्याय, न्याय कैसा।

२७

जल का कर, बीज, व्याज, पोता,
भूलें न किसान भूमि-जोता।
ऊँचे खलियान डालते हैं,
तो भी बस पेट पालते हैं।

२८

परदेशी माल आ रहे हैं,
देशी कलदार जा रहे हैं।
देखा जिनका न ठीक लेखा
हमको पर कुछ नहीं परेखा।

२९

विज्ञापन काम दे रहे हैं,
'वी० पी-पी' दाम दे रहे हैं।
लंठों की लूट मच रही है,
पूँजी भर-पेट पच रही है।

३०

कितने ही राज-कर्मचारी,
जिनके कर बाग है हमारी।
वेतन भरपूर पारहे हैं,
तिस पर भी घूँस खारहे हैं,

३१

झण्डा इसलाम ने उड़ाया,
सिंहासन सिंह से छुड़ाया।
लूटे घर घेर-घेर मारे,
प्यारे कुल कटगये हमारे।

३२

जो वैदिक धर्म खो चुके हैं,
मोमिन मशहूर हो चुके हैं,
वे भाई भक्त भूल के हैं,
प्यारे न खुदा रसूल के हैं।

३३

गोरे गुरुदेव शिष्य काले,
दोनों बन मुक्ति के मसाले।
अपनाय हमें सुधारते हैं,
इंजील पढ़ाय तारते हैं।

३४

विद्यालय दो प्रकार के हैं,
भण्डार परोपकार के हैं।
कहती है कान खोल शिक्षा,
वेतन लोगे कि धर्म-भिक्षा।

३५

अँगरेज़ी खिलखिला रही है,
उरदू खुश गुल खिला रही है।
दोनों से नागरी बड़ी है,
तोभी चुपचाप ही खड़ी है।

३६

सीखे हम अंक, बीज, रेखा,
फल भिन्न सिलेट से न देखा।
भूगोल-खगोल जानते हैं,
पर, शब्द प्रमाण मानते हैं।

३७

खाई विज्ञान की दुलत्ती,
रस चाखा पर न पाव रत्ती।
विद्या की करचुके कमाई,
रोते हैं, नौकरी न पाई।

३८

बैठे चुपचाप वैद्यवर हैं,
बोलें न हकीमजी किधर हैं।
सथिये, जर्राह बेख़बर हैं,
सब के आधार डाक्टर हैं।

३९

झगड़ालू लड़-झगड़ रहे हैं,
अभियोग अनेक अड़ रहे हैं।
न्योछावर न्याय की न देगा,
तो किस को कौन जीत लेगा।

४०

कंगाली जी जला रही है,
महँगी बरछी चला रही है।
भू-भक्षक मुख पसारती है,
मारी दिन-रात मारती है।

४१

सिंहों में स्यार गिन गये हैं,
सब के हथियार छिन गये हैं।
यदि होती शक्ति तो न मरते,
चूहों के कान हम कतरते।

४२

धरणी, धन, धाम दे चुके हैं,
विस्तृत विश्राम ले चुके हैं।
शुभचिन्तक देश-भक्त हम हैं,
अनुरक्त गृही विरक्त हम हैं।

४३

जिनको सब देश जानते थे,
अपने शिरमौर मानते थे।
जिनके हम हाय वंशधर हैं,
पूरे परतन्त्र तुच्छतर हैं।

४४

सुख-साधन-हीन हो चुके हैं,
अवनति के बीज बो चुके हैं।
अब क्या हम और भी गिरेंगे,
अथवा फिर दैव, दिन फिरेंगे।

४५

हा, आग अधर्म की जली है,
आँधी अन्धेर की चली है।
यों तो सर्वस्व मेध होगा,
इस विधि का कब निषेध होगा।

४६

कीचड़ में केहरी पड़ा है,
गीदड़-दल घात में खड़ा है।
गिद्धों ने घाव कर लिये हैं,
कौओं ने पेट भर लिये हैं।

४७

ऊंचा चढ़ना अचेत गिरना,
उन्नति की ओर फिर न फिरना।
देखा दुर्दृश्य आज ऐसा,
प्रभु का यह प्यार-कोप कैसा।

४८

भारत की जो दशा रही है,
कविता ने सो कथा कही है।
अनुकूल सरस्वती रहेगी,
तो आगे और कुछ कहेगी।

('सरस्वती', मई १९०६)

अविद्यानन्द का व्याख्यान

१

तुही शंकराकार संसार है, निराकार है और साकार है।
तुही सर्व-स्रष्टा विधाता तुही, गुणी निर्गुणी ज्ञानदाता तुही।

२

अरे ओ अजन्मा कहाँ तू नहीं, न कोई ठिकाना जहाँ तू नहीं।
किसी ने तुझे ठीक जाना नहीं, इसीसे महा सत्य माना नहीं।

३

तुझे तर्क ने तोल पाया नहीं, किसी युक्ति के हाथ आया नहीं।
कहीं कल्पना-बाँझ का पूत है, कहीं भावना का महा भूत है।

४

मुझे क्या किसी भाँति का तू सही, कथा मङ्गलाभास की-सी कही।
जहाँ भक्ति तेरी रहेगी नहीं, वहाँ धर्म-धारा बहेगी नहीं।

५

अनूठी कृपा है महाराज की, अनोखी अथाई जुड़ी आज की।
भली भिन्नता के महा भक्त हैं, जली एकता के न आसक्त हैं।

६

अरे, आज मेरी कहानी सुनो, नयी बात, लीला पुरानी सुनो।
किसी अंश पै दंश देना नहीं, यहाँ तर्क से काम लेना नहीं।

७

अरे जो न माने बड़ों का कहा, उसे ध्यान क्या सभ्यता का रहा।
पुकारे खड़ी धर्म-ग्रन्थावली, विरोधी भले काम का है कली।

८

लिखा है कि विद्या रहेगी नहीं, अविद्या सचाई गहेगी नहीं।
सदाचार का नाश हो जायगा, जगा वैर को प्रेम सो जायगा।

९

युगाचार से भागना भूल है, अविश्वास ही दुःख का मूल है।
डरेगा नहीं जो किसी पाप से, बचेगा वही शोक-सन्ताप से।

१०

सुने स्वर्ग से लौ लगाते रहो, पुनर्जन्म के गीत गाते रहो।
डरो कर्म प्रारब्ध के योग से, करो मुक्ति की कामना भोग से।

११

महीनों पड़े देव सोते रहें, महीदेव डूबे-डुबोते रहें।
मरी चेतनाहीन गंगा बही, न पूरी कला तीरथों में रही।

१२

इसीसे सुरों की न सेवा करो, चढ़े भूतनी-भूतड़ों से डरो।
मसानी-मियाँ को मना लीजिये, जखैया-रखैया बना लीजिये।

१३

हँसो हंस को शारदा को तजो, उलूकासनी इन्दिरा को भजो।
धनी का धरो ध्यान छोटे-बड़े, रहो द्रव्य की लालसा में खड़े।

१४

अनाड़ी गुणी मानते हैं जिसे, गुणी जालिया जानते हैं जिसे।
उसे दान से—मान से पूजिये, हठी-हेकड़ों के हितू हूजिये।

१५

सुधी साधु को मान खाना न दो, किसी दीन को एक दाना न दो।
बड़े हो बड़ा दान देना वहाँ, बड़ाई करे वर्ण-माला जहाँ।

१६

कभी गाय बूढ़ी नहीं पालना, किसी कौल को दान दे डालना।
बड़ाई मिलेगी बड़ी आप को, इसी भाँति काटा करो पाप को।

१७

तने तर्क-ताने पुराने रहें, नयी चाल के बोल बाने रहें।
घने जाल-जाली बुना कीजिये, न कोरी कहानी सुना कीजिये।

१८

रचो ढोंग पाखण्ड छूटे नहीं, छुआछूत का तार टूटे नहीं।
मिले झुंड में गोल बोला करो, न अंधेर की पोल खोला करो।

१९

जहाँ झंझटों का झड़ाका न हो, ध्वजा-धारियों का धड़ाका न हो।
वहाँ खोखले खेल खेला करो, पड़े पार पै दण्ड पेला करो।

२०

महा मूढ़ता के सँगाती रहो, दुराचार के पक्षपाती रहो।
जुड़ें चौधरी पंच-गौणा जहाँ, न बोला करो बोल सीधे वहाँ।

२१

नयी सीख सीखो सिखाते रहो, महा मोह माया दिखाते रहो।
विरोधी मिलें जो कहीं एक-दो, उन्हें जाति से—पाँति से छेक दो।

२२

बसै भैरवी चक्र में वीरता, विराजी रहे ज्ञान-गम्भीरता।
वहाँ वीर बानैत जाया करो, कटे कंटकों को जलाया करो।

२३

कभी प्रेम का पान खाना नहीं, विना फन्द खाना-कमाना नहीं।
न ऊँचे चढ़ो, नीच होते रहो, प्रतापी बड़ों को बिगोते रहो।

२४

ठगो देशियों को ठगाया करो, मिला मेल मेले लगाया करो।
ढके ढोंग का ढाँच ढीला न हो, धबीली कहीं लोभ-लीला न हो।

२५

नयी ज्योति की ओर जाना नहीं, पुराने दिये को बुझाना नहीं।
धनी-सम्पदा को न हाँगा करो, भिखारी बने भीख माँगा करो।

२६

अविद्वान, विद्वान, छोटे-बड़े, बड़े थे, बड़े हो रहेंगे बड़े।
सदा आप का बोल बाला रहे, कुदेवावली का उजाला रहे।

२७

महा तन्त्र के मन्त्र देते रहो, खरी दक्षिणा दान लेते रहो।
लगातार चेले बढ़ाते रहो, नयी चेलियों को पढ़ाते रहो।

२८

घटी चाल को चञ्चला कीजिये, भलाई न भूलो भला कीजिये।
खरे खेल खेलो खिलाते रहो, सुधा सेवकों को पिलाते रहो।

२६

महा मूढ़ मानी मिजापी रहें, सँगाती-सखा पोच-पापी रहें।
धनी-धींग बूटो पिलाते रहें, खरे माल खोटे खिलाते रहें।

३०

नहीं सींचना खेत संग्राम के, खड़े खेत जोता करो ग्राम के।
कड़े फूट के बीज बोया करो, सड़े मेल का खोज खोया करो।

३१

छड़ी धार छैला छबीले बनो, रँगीले, रसीले, फबीले बनो।
न चूको भले भोग भोगी बनो, किसी बेड़नी के वियोगी बनो।

३२

रचो फाग, होली मचाया करो, नयी बेड़िनों को नचाया करो।
बने भंगड़ी, रंग डाला करो, भले भाव जी के निकाला करो।

३३

अमीरो धुआँधार छोड़ा करो, पड़े खाट के बान तोड़ा करो।
गलीमार मूंछें मरोड़ा करो, न ठाली रहो काम थोड़ा करो।

३४

न प्यारा लगे नाच-गाना जिसे, कलंकी करे माँस खाना जिसे।
कसूमा, सुरा, भंग पीता नहीं, उसे जान लेना कि जीता नहीं।

३५

हँसे होलिका में न पाऊ बने, न दीपावली का कमाऊ बने।
न होली-दिवाली सुहाती जिसे, उसे छोड़ लू-लू कहोगे किसे।

३६

बड़ी चाह से व्याह बूढ़े करो, नकीले कुलों की कुमारी वरो।
न बेटा सगी सास बाला कहे, न माजी लला साठ साला कहे।

३७

जहाँ बेटियाँ बेचना धर्म है, जहाँ भ्रूण-हत्या भला कर्म है।
बनें रडियाँ बाल रंडा जहाँ, वहाँ पाप जीता रहेगा कहाँ।

३८

लगा लाग दूकान खोला करो, कभी ठीक सौदा न तोला करो।
कहो ग्राहकों से कि धोखा नहीं, भला कौन-सा माल चोखा नहीं।

३९

लगातार पूंजी बढ़ाते रहो, कमाते रहो; व्याज खाते रहो।
न कंगाल का पिंड छोड़ा करो, लहू लीचड़ों का निचोड़ा करो।

४०

रुई नाज देशी दिया कीजिए, विदेशी खिलौने लिया कीजिए।
हवेली-घरों को सजाया करो, पड़े मस्त बाजे बजाया करो।

४१

खरी खाँड़ देशी न लाया करो, बुरी 'बीट' चीनी गलाया करो।
लुके लाट शीरा मिलाते रहो, दुरंगी मिठाई खिलाते रहो।

४२

पराई जमा मारनी हो जहाँ, अजी, काढ़ देना दिवाला वहाँ।
किसी का टका भी चुकाना नहीं, न थोथे उड़ाना थुकाना नहीं।

४३

सगे बाप की भी न सेवा करो, पराधीनता का कलेवा करो।
कमीना किसी से कहाना नहीं, घटा मान आँसू बहाना नहीं।

४४

चितेरे, कलाकार कारीगरो, उठो काम का नाम ऊंचा करो।
पड़े गुप्त क्यों.. विश्वकर्मा बनो, सुशर्मा बनो वीर वर्मा बनो।

४५

न भाषा पढ़ो, राज-भाषा पढ़ो, बढ़ो वीर ऊंचे पदों पर चढ़ो।
करो चाकरी घूंस खाया करो, मिले बेतनों को बचाया करो।

४६

गवाही कभी ठीक देना नहीं; कहीं सत्य का नाम लेना नहीं।
भलेमानसों को सताया करो, खरे खाउओं को बचाया करो।

४७

धता इण्डिया की धजों को कहो, सजे लन्दनी फ़ैशनों से रहो।
टके होटलों में ठगाया करो, बराँडी पियो 'मीट' खाया करो।

४८

बहू-बेटियों को पढ़ाना नहीं, घरेलू घटी को बढ़ाना नहीं।
पढ़ी नारि नैया डुबो जायगी, किसी मित्र की मेम हो जायगी।

४६
सुनो तुक्कड़ो बात भद्दी नहीं, तुकों की करामात रद्दी नहीं।
यहाँ भूल का क़ाफ़िया तंग है, अरे नागरो, नागरी ढंग है।

५०
कहे पद्य पंचास थोड़े नहीं, गिनो गाँठ बाँधो गपोड़े नहीं।
सुनादो छिली ईंट को गालियाँ, कथा हो चुकी पीट दो तालियाँ।

('सरस्वती', फ़रवरी १६०७)

एरण्ड-वन-बिडाल-व्याघ्र

१
शङ्कर, पञ्चानन बिन बोलें, डोलें निधड़क नीच शृगाल,
काँव-काँव कर सुन कौओं की, मौन धार उड़ गये मराल।
कौन सुधारे, कब सुधरेगी, बिगड़ी कुटिल काल की चाल,
फूल-फूल एरण्ड-विपिन में, झूलें बन-बन बाघ बिड़ाल।

२
रहा न जिसकी सुन्दरता का धरणी-तल पर कोई जोड़,
फूँक रहे थे उस कानन को, काट-काट कर धींग-धसोड़।
उनके पास अचानक आया, वह ज्ञानी गुरु करुणाकन्द,
जिसका नाम निकाल रहे थे, हिलमिल 'दया' और 'आनन्द'।

३
देख दुर्दशा सुन्दर वन की, हाय-हाय कर अश्रु बहाय,
बोला जल कर क्यों करते हो, कर्म कठोर मनुष्य कहाय।
लाज लगी सकुचे तरुघाती, माना मुनिवर का उपदेश,
छोड़ कटाकट रूख रखाये, फिर से सुधरा बिगड़ा देश।

४

ठौर-ठौर उकसी हरियाली, उलहे गुल्म-लता, तरु-पुञ्ज,
विकसे फूल, फली, फल भूले, रम्य सौरभित सजे निकुञ्ज।
बीते दिन दरिद्र-सङ्कट के, उपजे विविध भाँति के अन्न,
कीट, पतङ्ग, नाग, पशु, पत्ती, उमगे पाय सुपास प्रसन्न।

५

सभ्य सुबोध बने वनवासी, श्री सुखधाम बसे पुर ग्राम,
उमड़ा प्रेम, मिटे आपस के अनबन लूट, फूट संग्राम।
साधु गृहस्थ धर्म-व्रत-धारी करने लगे दान जप-याग,
यों कर सर्वसुधार प्रतापी अगुआ मुक्त हुआ तन त्याग।

६

मुनि के मङ्गलमूल मेल से बीत रहा था हितकर काल,
फिर फड़का दुर्दैव दुष्ट का दारुण रुद्र रोप विकराल।
गरजे शिष्य पाठ वणिकों के, जड़-विज्ञान-हीन पढ़ वेद,
अटका विप्रों की अड़गड़ में अटल अक्खड़ों का मतभेद।

७

रगड़े भाँखर, भाड़, बसोंटे, धुँआधार कर भड़की आग,
पजरे पामर, पेड़, पखेरू, सूख गये सब भील तड़ाग।
व्याकुल व्यग्र नारि-नर भागे, छोड़े धन, धरणी, घरवार,
हाय मचा जलते जङ्गल में, हृदय-विदारक हाहाकार।

८

अबला, बालक, वृद्ध पुकारे, भुलसे प्यारे कुल-परिवार,
युवकों ने पर प्राण बचाये, अपने अंग पजार-पजार।
आग न पहुँची दैवयोग से, उस अछूत पुरवा के पास,
जिसके निकट घने अरण्डों में, वन-बिलार करते थे वास।

९

बोले ठग बिलार अभिमानी, हैं हम उस अटवी के बाघ,
जिसको नहीं तपा सकता है, तीव्र तरणि का ताप निदाघ।
जिसके डर से केहरि भागे, हम से डरती है वह आग,
क्यों न हमें वनराज कहेंगे, भक्ति-भाव से खग, मृग, नाग।

१०

सिंह और हम एक रूप हैं, अन्तर भेद दीर्घ लघु काय,
इंगलिशमैन और नैपाली, सुभट कहाते समता पाय।
जितने जन्तु अण्ड-मण्डल में, रहते हैं रच भेद विधान,
वे सब हुक्म हमारा माने, छोड़ बड़प्पन का अभिमान।

११

ज्ञान गिरादे नरक कुण्ड में, पकड़ भेद-पद्धति के केश,
सकल प्रजा से प्यार करेंगे, श्री बिडाल-पति पूज्य प्रजेश।
समता से वन में विचरेगी, सरला, सुखदा, रुचिरा रीति,
पक्षपात का सिर कुचलेगी, न्याय-निपुणता मण्डित नीति।

१२

छूत-अछूत न बढ़ने देंगे, सब को कर लेंगे अब शुद्ध,
इस प्रकार को मान चुके हैं, मुनि सद्धर्म-प्रचारक बुद्ध।
खान-पान की दुर-दुर छीछी, भिनके कुपति प्रजा से दूर,
सुख से जीवन-काल बितावें, सरस भोग भोगें भरपूर।

१३

जीवों की उन्नति-अवनति के, कारण केवल हैं गुण कर्म,
हेतु नहीं-गरिमा-लघिमा का, जन्म-जनित स्वाभाविक धर्म।
इस प्रकार से समझाते हैं, सब को नारायण कृत वेद,
फिर क्या मेल मार सकता है, कल्पित जाति-पाँति भय-भेद।

१४

उमड़े मेल नकुल नागों में, मेंडक, बगले करें विहार,
कर विरोध सारे प्रतियोगी, विचरें प्रेम पसार पसार।
गिरगिट चूहे चिड़ियों का भी, करता रहे राज-बल त्राण,
सुभट हमारे नहीं हरेंगे, बिन अपराध किसी के प्राण।

१५

सुबुध बनावेंगे अबुधों को, बढ़िया विद्यालय बिन फ़ीस,
चाल-चलन का अंक न होगा, उलट तिरेसठ से छत्तीस।
इस वन में न रहेगा कोई, प्रतिभा-पौरुष अर्थ विहीन,
उचित प्रतिष्ठा-पद पावेंगे, सर्व कुलीन और अकुलीन।

१६

श्री गुरु उदरानन्द हमारे, स्वामि शिवामुत साधु-सुजान,
कूद 'सटेशन' की पोखर में, पढ़ 'परभाती, करें 'सनान'।
'बेद-'शासतर' 'मन्तर' बाँचें, न्याय 'धरम' का बढ़े विकास,
शोधें करम 'शलोक' बखानें, कर 'सत्यारथ' का 'परकाश'।

१७

पीपल बाम्हन के मुड़ बोझा, निशि के दर्शक दिन के अन्ध,
श्री उलूक ऋषि रहें सुनाते, सदुपदेश के सार निबन्ध।
गान करें अपने भजनों का, गायक-नायक रासभ-राज,
कविता ताल-स्वरों पर रीझें, करतल पीटें जन्तु-समाज।

१८

जो छल-बल की छाक छकावे, परस अविद्या का विष पाक,
धूलि उड़ादे उस उद्धत की, कुकवि-क्रूर-कटुभाषी काक।
जिनका हमसे योग रहेगा, होगा उनका सुयश प्रकाश,
कर देंगे प्रतिकूल खलों को, मार-काट कर वंश-विनाश।

१९

होड़ हमारे बल, प्रताप की, कहिए कर सकता है कौन,
निर्बल जन्तु वचन बिल्लों के, सुनते रहे धार कर मौन।
उठ कर एक लोमड़ी बोली, शशक बने द्रुतगामी दूत,
मन्त्री-पद पर शोभित होंगे, मेरे मृदु मुख-पण्डित पूत।

२०

कथन लोखरी का सुनते ही, ठग-बिलार बोले मुखमोड़,
बाधिन बनने की अभिलाषा, सफल न होगी लालच छोड़।
राजदूत कब हो सकते हैं, क्षुद्रकाय खरहे डरपोक,
ऊँचे पद पाकर सुख देगा, सब से अधिक हमारा थोक।

२१

बरगद के ऊपर बैठी थी, कान लगाकर जिन की पाँति,
उतर बिलारों से हँस बोले, वे बलिष्ठ वानर इस भाँति।
जिनकी छाँह न छू सकते हैं, तुम से तुच्छ महाधम दास,
शूर-शिरोमणि उन सिंहों का, कायर करते हो उपहास।

२२

घूँस, छछूँदर, मूषक, न्योले, गिरिगिट, मेंडक, साँड़े, सर्प,
गोह, छिपकली, क्षुद्र, पखेरू, इन सबको दिखलाना दर्प।
श्वान, शृगाल, सेह, वृक, चीते, हरिण, लोमड़ी, शश, लंगूर,
बीजू, चरक आदि रहते हैं, नीच जानकर तुम से दूर।

२३

जिन से कभी न हो सकती है, प्रतिभट गीदड़ की भी होड़,
उनको कौन सुबोध कहेगा, मृगनायक विजयी का जोड़।
लो हम पर ही धावा करदो, चखलो स्वाद समर का आज,
जीत गये तो बन्दर-दल भी, समझेगा तुम को मृगराज।

२४

इतना सुनते ही बन-बिल्ले, झपटे झट करील की ओर,
कठिन कण्टकों में घुस बोले, 'म्याउँ-म्याउँ' कर बोल कठोर।
किलकिलाय वानर वीरों ने, घेर लिया वह झाँखर-झाड़,
बिगड़े कहा कुचल डालेंगे, तुमको मार पछाड़-पछाड़।

२५

बाहर कीश लताड़ रहे थे, भीतर बकते रहे बिलार,
हुआ न संगर सत्यानृत का, अटके कण्टक विघ्न बगार।
इसके आगे जब कुछ होगा, सब सुन लेना तब का हाल,
पाठक शङ्कर से वर माँगो, बढ़े न नकली बाघ-बिड़ाल।

(दोहा)

फूले फूल वसन्त के, उगले आग निदाघ।
अण्डों के बन में बसे, बन-बन बिल्ले वाघ।

पञ्च-पुकार

पञ्चशरघ्न, पुरघ्न, पिनाकी, पञ्चानन, पशुराज,
पाँच प्रचण्ड नाम शङ्कर के, पञ्चनाद-इव आज—
उछल ऊंचा उच्चारूँगा,
किसी से कभी न हारूँगा।

बुध विद्यावारिधि गुरु-ज्ञानी, मेरे वासर सूर,
उन का-सा अभिमानी मन है, मेरा भी भरपूर—
उलझने को झिंगारूँगा,
किसी से कभी न हारूँगा।

फागुन का फल फाग फबीला, फूला एप्रिल फूल,
दो गुण गटक दुलत्ती मारूँ हाँकूँ अन्ध-उसूल—
तीसरी आँख उघारूँगा,
किसी से कभी न हारूँगा।

चुस्त पजामा, ढिलमिल जामा, सजे साहिबी टोप,
ताकें तसलीमुल .फैशन को, मियाँ, पुजारी, पोप—
नक्ल ओछी न उतारूँगा,
किसी से कभी न हारूँगा।

चूनरि चीर, फाड़दी फरिया, पहना लाया गौन,
लेडी पञ्च ब्लैक दुलहिन को, दाद न देगा कौन—
प्रिया के पैर पखारूँगा,
किसी से कभी न हारूँगा।

सुन-सुन मेरे शब्द, बोलियाँ, चौंक पड़ें चण्डूल,
पर, जो हिन्दू कथन करेगा, हिन्दी के प्रतिकूल—
उसे धमका धिक्कारूँगा,
किसी से कभी न हारूँगा।

'इँगलिश डाग', 'नागरी गेंडा', 'उरदू दुम्बा' तीन,
निकलें पेपर, पत्र, रिसाले, मेरे रहें अधीन—
केहरी-सा धधकारूँगा,
किसी से कभी न हारूँगा।

उरदू के बेनुक्त रक़मचे, लिक्खूँ क़ाबिले वीद,
बीनी खुद बुरीद को पढ़लो, बेटी जोद यज़ीद—
चुनीदा नज़्र गुज़ारूँगा,
किसी से कभी न हारूँगा।

जिस मण्डल में मतवालों का, उफनेगा उन्माद
मैं भी उस दल में करने को, बेहूदा बकवाद—
विना पाथेय पधारूँगा,
किसी से कभी न हारूँगा।

जिस के तर्क-जलधि में डूबे, मत-पन्थों के पोत,
उस के 'सत्यामृतप्रवाह' का क्यों न बहेगा सोत—
बनूँगा मीन मझारूँगा,
किसी से कभी न हारूँगा।

भूला गिरिजा, गिरिजापति को, मैं गिरजा में जाय,
समझा सद्गुण गाड पुत्र के, गोरी प्रभुता पाय।
श्याम-कुल को उद्धारूँगा,
किसी से कभी न हारूँगा।

फड़क फूट कर फुट्टलों में, फूल फली है फूट,
भेद भक्त भट मण्डल मेरा, क्यों न करेगा लूट।
पुजें पूजा न विसारूँगा,
किसी से कभी न हारूँगा।

ठेके पर लेकर वैतरणी, देकर डाढ़ी-मूँछ,
वाटर-बायसिकिल के द्वारा, विना गाय की पूँछ—
मरों को पार उतारूँगा,
किसी से कभी न हारूँगा।

जाति-पाँति के विकट जाल में, जूझें फँसे गमार,
मैं अब सबको सुलझा दूँगा, कर के एकाकार—
महा सद्धर्म प्रचारूँगा,
किसी से कभी न हारूँगा।

रसिक रहूँगा राजभक्ति का, बैठ प्रजा की ओर,
बाँध बधिक विद्रोही-दल को, दूँगा दण्ड कठोर—
खटकतों को सँहारूँगा,
किसी से कभी न हारूँगा।

गोरे गुरु-गण की ख़ातिर में, खरच करूँगा दाम,
दमकेगा दुमदार सितारा, बनके जुगनू नाम—
ख़िताबों को फटकारूँगा,
किसी से कभी न हारूँगा।

लन्दन में कर वास बना हूँ, बैरिस्टर कर पास,
घेर मुवक्किल घटिया मे भी, लूँगा नक़द पचास—
बड़प्पन को विस्तारूँगा,
किसी से कभी न हारूँगा।

जग में जीवन-भर भोगूँगा, मनमाने सुख-भोग,
परम रंक महँगी के मारे, प्राण तजें लघु-लोग—
उन्हें तो भी न निहारूँगा,
किसी से कभी न हारूँगा।

यदि आगे अब से भी बढ़िया, दारुण पड़े दुकाल,
तो जड़ जमजावे उन्नति की, थलके तोंद विशाल—
प्रतिष्ठा के फल धारूँगा,
किसी से कभी न हारूँगा।

प्रति मुद्रा पर एक टका से, कम न करूँगा व्याज,
धन-कुवेर का मान मिटादूँ, लाद व्याज पर व्याज—
ग़रीबों के घर जारूँगा,
किसी से कभी न हारूँगा।

पढ़ "वन्देमातरम्" करेंगे, सौदा सब दल्लाल,
तिगुनी दर लेकर बेचूँगा, निरा विदेशी माल—
स्वदेशी जाल पसारूँगा,
किसी से कभी न हारूँगा।

इतने पुतलीघर खोलूँगा, बन कर मालामाल,
जिनको पूरी मिल न सकेगी, पामर-कुल की खाल।
दही में मूसल मारूँगा,
किसी से कभी न हारूँगा।

प्रथम महत्ता के मन्दिर पै, सुयश-पताका गाढ़,
फिर फूटे लघुता के घर में, दबक दिवाला काढ़—
रक़म औरों की मारूँगा,
किसी से कभी न हारूँगा।

मदिरा, खजुरी, भंग, कसूमा, आसव सर्व समान,
इन पवित्र मादकद्रव्यों का, कर पंचामृत पान—
नशीली बात विचारूँगा,
किसी से कभी न हारूँगा।

जिस में वीरों की अभिरुचि का, चल न सकेगा खोज,
ऐसा कहीं मिला यदि मुझको, कण्टक कुल का भोज—
मुखानन्दी न जुठारूँगा,
किसी से कभी न हारूँगा।

जिसने निगला धन्वन्तरि के, अमृत-कुम्भ का मोल,
उस मदमाती डाकटरी की, बढ़िया बोतल खोल—
पिऊँगा जीवन वारूँगा,
किसी से कभी न हारूँगा।

जो जगदीश बनादे मुझको, अनथक थानेदार,
तो छल छोड़ धर्म-सागर में, गहरी चूबक मार—
अकड़ के अंग निखारूँगा,
किसी से कभी न हारूँगा।

यद्यपि मुझको नहीं सुहाते, वैदिक दल के कर्म,
ठाठ बदलता हूँ अब तो भी, धार सनातम धर्म—
इसी से जन्म सुधारूँगा,
किसी से कभी न हारूँगा।

पास करूँगा कुलपद्धति के, परमोचित प्रस्ताव,
हाँ, पर कभी नहीं बदलूँगा, मैं गुण, कर्म, स्वभाव—
गपोड़े मार बगारूँगा,
किसी से कभी न हारूँगा।

नई चाल के गुरु-कुल खोलूँ, फाँस फ़ीस के फन्द,
निरख-परख दाता पावेंगे, दिव्य 'दर्शनानन्द'—
पुरानी रीति विसारूँगा,
किसी से कभी न हारूँगा।

अगुआ बनूँ, जेल में पड़ के, निकलूँ पिण्ड छुड़ाय,
बैठ-बैठ कर नर-यानों पै, पटपट पूजा पाय—
हुमक हूँ-हूँ हुंकारूँगा,
किसी से कभी न हारूँगा।

गरजूँगा क़ौमी मजलिस में, गर्मी-नर्मी पाय,
सूरत नहीं बिगड़ने दूंगा, लात-लीतरे खाय—
लीडरों को ललकारूँगा,
किसी से कभी न हारूँगा।

यदि चौमुख बाबा की बिटिया, बनी रही अनुकूल,
तो तुक्कड़ समझेंगे मुझ को, कवितारण्य-बबूल—
कटीला पाल पसारूँगा,
किसी से कभी न हारूँगा।

आठ बटा अट्ठावन पढ़लो, पाठक पञ्च पुकार,
जो मृदु मुख लिक्खाड़ लिखेगा, इस का उपसंहार—
उसे दे दाद दुलारूँगा,
किसी से कभी न हारूँगा।

निदाघ-निदर्शन

१

बीते दिन वसन्त ऋतु भागी, गरमी उग्र कोप कर जागी।
ऊपर भानु प्रचण्ड प्रतापी, भूपर भभके पावक पापी।
आतप-व्रात मिले रस-रूखे, झाबर-झील, सरोवर सूखे।
जिन पूरी नदियों में जल है, उन में भी काँदा-दलदल है।

२

अवनी-तल में तीत नहीं है, हिमगिरि पै भी शीत नहीं है।
पूरा सुमन-विकास नहीं है, और लहलही घास नहीं है।
गरम-गरम आँधी आती है, बुलबुल बरसाती जाती है।
झाँखर, झाड़, रगड़ खाते हैं, आग लगे वन जल जाते हैं।

३

लपकें लट लूँ लहराती हैं, जल-तरंग-सी थहराती हैं।
तृषित कुरंग वहाँ आते हैं, पर न बूँद वन की पाते हैं।
सूख गई सुखदा हरियाली, हा, रसहीन रसा कर डाली।
कुतल जवासों के न जले हैं, फूल-फूल कर आक फले हैं।

४

पावक-बाण दिवाकर मारे, हा, बड़वानल फूंक-पजारे।
खौल उठे नद-सागर सारे, जलते हैं जलजन्तु बिचारे।
भानु-कृपा न कढ़े वसुधा से, चन्द्र न शीतल करे सुधा से।
धूप हुताशन से क्या कम है, हाय, चाँदनी रात गरम है।

५

जंगल गरमी से गरमाया, मिलती कहीं न शीतल छाया।
घमस घुसी तरु-पुंजों में भी, निकले भभक निकुंजों में भी।
सुन्दर वन, आराम घने हैं, परमरम्य प्रासाद बने हैं।
सब में उष्ण ब्यार बहती है, घास, घमस घेरे रहती है।

१२

पान करें पाचक जलजीरा, चखते रहें फुलाय कतीरा।
बरफ़ गलाय छने ठंडाई, औषधि पर न प्यास की पाई।
बँगलों में परदे खस के हैं, बार-बार रस के चसके हैं।
सुखिया सुख-साधन पाते हैं, इतने पर भी अकुलाते हैं।

१३

अकुला कर राजे-महाराजे, गिरि-शृंगों पर जाय विराजे।
धूलि उड़ाय प्रजा के धन की, रक्षा करते हैं तन-मन की।
जितने वकला-बैरिस्टर हैं, वीर बहादुर हैं, मिस्टर हैं।
सुख से कमरों में रहते हैं, गरजें तो गरमी सहते हैं।

१४

गोरे गुरुजन भोग-विलासी, बहुधा बने हिमालय वासी।
कातिक तक न यहाँ आते हैं, वहीं प्रचुर वेतन पाते हैं।
निर्धन घबराते रहते हैं, घोर ताप, संकट सहते हैं।
दिन-भर मुड़बोझ ढोते हैं, तब कुछ खा-पीकर सोते हैं।

१५

खलियानों पर दाँय चलाना, फिर अनाज-भूसा बरसाना।
पूरा तप किसान करते हैं, तो भी उदर नहीं भरते हैं।
हलवाई, भुरजी-भटियारे, सौनीभगत, लुहार विचारे।
नेक न गरमी से डरते हैं, अपने तन फूंका करते हैं।

१६

हा, बोयलर की आग पजारे, झपटे झाय लपक लूँ मारे!
उड़ती भूभल फाँक रहे हैं, जलते इंजिन हाँक रहे हैं।
भानु-ताप उपजावे जिसको, वह ज्वाला न जलावे किसको।
व्याकुल जीव-समूह निहारे, हाय हुताशन से सब हारे।

१७

जेठ जगत को जीत रहा है, काल-विदाहक बीत रहा है।
भभक भभूके मार रहे हैं, हाय-हाय हम हार रहे हैं।
पावक-बाण प्रचण्ड चले हैं, पञ्चराज भी बहुत जले हैं।
बादल को अवलोक रहे हैं, गरमी की गति रोक रहे हैं।

१८

जब दिन पावस के आवेंगे, वारि-बलाहक बरसावेंगे।
तब गरमी नरमी पावेगी, कुछ तो ठंडक पड़ जावेगी।
भाट बने कालानल रवि का, ऐसा साहस है किस कवि का।
शंकर कविता हुई न पूरी, जलती-भुनती रही अधूरी।

दरिद्र विद्यार्थी

१

सब ओर फिरा गुरु-द्वार उदार न पाया,
कुछ भी न पढ़ा झखमार, हार घर आया,
जिसमें त्र्यम्बक पशुराज, रुद्र रहते हैं,
सुखदा कवि कौल कुदेव, जिसे कहते हैं,
जिसमें सुविचार सुकर्म, स्रोत बहते हैं,
जिसमें कलुषी कुल भी न कष्ट सहते हैं,
उस भव-नगरी का भेद, न मुझको भाया,
कुछ भी न पढ़ा झख मार, हार घर आया।

२

जिसने प्रिय भारत हिन्द बना कर मारा,
हम पर हिन्दूपन लाद गुरुत्व उतारा,
समझा जिसने लघुदास, आर्यदल सारा,
वह उरदू रखती क्यों न कुनाम हमारा,
ज़रकश मुन्शी मग़रूर न मैं कहलाया,
कुछ भी न पढ़ा झख मार, हार घर आया।

३

गुरु गौर श्याम तन शिष्य मनोहर दीखें,
गिटपिट बोलें वृष-मूत्र, जाल लिपि सीखें,

जिनके सुन युक्ति-प्रमाण, तर्क अति तीखे,
करते प्रतिवाद न व्यास, वशिष्ठ सरीखे,
नेटिव मिस्टर बन हा न, बूट खटकाया,
कुछ भी न पढ़ा झखमार, हार घर आया।

४

जिनके सुख भोग-विलास, ठाठ बढ़ते हैं,
जिनको धन देकर धींग, धनी पढ़ते हैं,
जिनके बुध बुद्ध समान शिष्य कढ़ते हैं.
जिनके गौरव-गिरि पै न, रङ्क चढ़ते हैं,
उन गुरुकुलियों ने हाय, न मैं अपनाया,
कुछ भी न पढ़ा झखमार, हार घर आया।

५

निगमागम का गुरु भार, तोल सकता था,
उरदू दुलहिन की पोल खोल सकता था,
कटु इंगलिश में माधुर्य घोल सकता था,
निज भाषा लिख-पढ़ शुद्ध बोल सकता था,
शङ्कर बिन वित्त अबोध रहा पछताया,
कुछ भी न पढ़ा झखमार, हार घर आया।

उद्‌बोधनाष्टक

१

काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह की पँचरंगी कर दूर,
एक रंग तन, मन, वाणी में भर ले तू भरपूर।
प्रेम पसार न भूल भलाई, वैर-विरोध विसार,
भक्ति-भाव से भज शंकर को धर्म दया उर धार।

२

देख, कुदृष्टि न पड़ने पाव पर-वनिता की ओर,
विवश किसी को नहीं सुनाना कोई वचन कठोर।
अबला, अबलों को न सताना पाय बड़ा अधिकार,
भक्ति-भाव से भज शंकर को धर्म-दया उर धार ।

३

आय न उलझें मतवालों के छल, पाखण्ड, प्रमाद,
नेक न जीवन-काल बिताना कर कोरे बकवाद ।
बाँटें मुक्त ज्ञान बिन उन को जान अजान, लबार,
भक्ति-भाव से भज शंकर को धर्म दया उर धार।

४

हिंसक, मद्यप, आमिष-भोजी, कपटी, वञ्चक, चोर,
ज्वारी, पिशुन, चबोर, कृतघ्नी, जार, हठी, कुलबोर।
असुर, आततायी, गुरु-द्रोही इन सब को धिक्कार,
भक्ति-भाव से भज शंकर को धर्म दया उर धार ।

५

जो सब छोड़ सदा फिरते हैं निर्भय देश-विदेश,
तर्क-सिद्ध श्रेयस्कर जिन से मिलते हैं उपदेश ।
ऐसे अतिथि महापुरुषों का कर सादर सत्कार,
भक्ति-भाव से भज शंकर को धर्म दया उर धार।

६

माता, पिता, सुकवि, गुरु, राजा, कर सब का सम्मान,
रुग्ण, अनाथ, पतित, दीनों को दे जल, भोजन, दान।
सुभट, गदारि, शिल्पकारों को पूज सुयश विस्तार,
भक्ति-भाव से भज शंकर को धर्म दया उर धार।

७

लगन लगाय धर्मपत्नी से कुल की बेलि बढ़ाय,
कर सुधार दुहिता-पुत्रों का वैदिक पाठ पढ़ाय ।
सज्जन, साधु, सुहृद, मित्रों में बैठ विचार प्रचार,
भक्ति-भाव से भज शंकर को धर्म दया उर धार।

८

पाल कुटुम्ब सदुद्यम द्वारा, भोग सदा सुख-भोग,
करना सिद्ध ज्ञान-गौरव से निःश्रेयसप्रद योग ।
जप, तप, यज्ञ, दान, देवेंगे, जीवन के फल चार,
भक्ति-भाव से भज शंकर को धर्म दया उर धार ।

वसन्त सेना

[वसन्तसेना का वर्णन संस्कृत के मृच्छकटिक नाटक में आया है, उसके आधार पर सुप्रसिद्ध चित्रकार राजा रविवर्मा ने एक भावपूर्ण चित्र अङ्कित किया था । उसी चित्र पर सरस्वती-सम्पादक आचार्य श्री महावीर प्रसाद द्विवेदी के इच्छानुसार श्रीशंकरजी ने यह 'वसन्त सेना' शीर्षक कविता लिखी थी । दूसरी कविता 'केरल की तारा' भी स्व० रविवर्मा के चित्र पर है । यह भी आचार्य द्विवेदीजी के ही अनुरोध से लिखी गयी थी । दोनों कविताएं १९०६ ई० की सरस्वती में प्रकाशित हुई थीं । सं०]

१

लैला के शुतर का न जरस बजेगा यहाँ,
खाक न उड़ेगी कहीं मजनूँ के बन की ।
शीरीं के कलाम की भी तलख़ी चखोगे नहीं,
टाँकी न पहाड़ पै चलेगी कोहकन की ।

कामकन्दला के नाच-गाने की लताफ़त में,
गाँठ न खुलेगी माधवानल के मन की।
कंचन की चाह छोड़ कंचनी अकिंचन को
शंकर दिखावेगी लगावट लगन की।

२

विक्रम के आगे की है नायिका नवेली यह,
शूद्रक रचित मृच्छकटिक में पाई है।
स्वामिनि मदनिका की भामिनि रदनिका की,
धूता की सवति वारवनिता की जाई है।
मौसी रोहसेन की है नाम है 'वसन्त सेना',
चारुदत्तजी की प्राण-वल्लभा कहाई है।
राजा रविवर्मा की चित्र-चातुरी ने आज,
शंकर सरस्वती के अंक में दिखाई है।

३

चित्र की विचित्रता में अंगों की गठन पर,
रसिक-सुजान भर-पूर ध्यान दीजिए।
कोमल कलेवरा की सुन्दर सजावट के,
रंग-ढंग देखिए प्रसंग रस पीजिए।
जैसी सुनपाई ठीक वैसी ही बनाई उस,
चतुर चितेरे की बड़ाई बड़ी कीजिए।
मिसरी के साथ बाँस-फाँस का-सा मेल मान,
शंकर की भद्दी कविता भी पढ़ लीजिए।

४

'पूरण' 'सुधाकर' के अंक में कलंक बसे,
खारी जल-कोष 'रतनाकर' ने पाया है।
'भानु' भगवान काले धब्बों से धबीले रहें,
स्वामी 'श्याम-सुन्दर' के संग योगमाया है।

सुन्दरी वसन्तसेना बाई का विशुद्ध मन,
पालक महीपति के साले का सताया है।
शंकर की रचना में ठीक इसी भाँति हाय,
भद्दापन दूषण बनारसी समाया है। ❀

५

ज्वारी को छुड़ाय कर चोर का बसाया घर,
दूत की दया से मणिमाला मिली यार की।
काम की सताई आई, पीतम ने पाई बाई,
नथनी उतारली बढ़ाई बेलि प्यार की।
प्रेमरस पीती रही, मार सही जीती रही,
शंकर जलादी जड़ कोटपाल जार की।
राज-बल पाया प्राण प्यारे को बचाया अब,
दुलही कहाती है पवित्र परिवार की।

❀आचार्य श्री महावीरप्रसाद द्विवेदी के सम्पादन-काल में 'सरस्वती' और काशी नागरी-प्रचारिणी सभा के मध्य कुछ झड़प-सी हो गयी थी। सभा के तत्कालीन प्रधान मन्त्री ने दलबन्दी की भावना से प्रेरित होकर लिखा था कि 'सरस्वती' में 'भद्दी कविताएँ' निकलती हैं। आचार्य द्विवेदीजी को यह बात बहुत नापसन्द आई और उन्होंने उक्त धारणा के विरुद्ध कई लेख भी लिखे। सभा के पक्ष-पोषक थे राय देवीप्रसाद 'पूर्ण', श्री 'सुधाकर' द्विवेदी, कविवर 'रत्नाकर'जी, श्री जगन्नाथ प्रसाद 'भानु', श्री 'श्यामसुन्दर' दास आदि। अतः उन्हीं को लक्ष्य करके यह छन्द लिखा गया है। उस समय इस छन्द की बड़ी चर्चा हुई थी।

६

सोहनी सुरंग सारी कुरती किनारीदार,
कामदार कंचुकी करेब की कसी रहे।
ठौर-ठौर पूषण-से भूषण प्रकाश करें,
ओजकी उमङ्ग अङ्ग-अङ्ग में लसी रहे।
बातें अनुराग-भरी शील सभ्यता के साथ,
शंकर धनी की धज ध्यान में धसी रहे।
चित्र-सी विचित्र महा सुन्दरी वसन्तसेना,
मित्र चारुदत्त के चरित्र में बसी रहे।

७

सीस पै पसार फन लङ्क लों लपेटा मार,
लटकी लटक दिखलाती बल खाती थी,
माँग मुख फाड़, काढ़ मोतियों के दाने-दाँत,
भूमर की जीभें लप-लप लपकाती थी।
शंकर शिरोमणि की ज्योति का उजाला पाय,
रोप-भरी प्यारे रूप-कोप को रखाती थी।
बात वेणी नागिन की तबकी कही है जब,
नाचती वसन्त सेना आई गीत गाती थी।

८

कज्जल के कूट पर दीप-शिखा सोती है कि,
श्यामघन-मण्डल में दामिनी की धारा है।
यामिनी के अंक में कलाधर की कोर है कि,
राहु के कबन्ध पै कराल केतु तारा है।
शंकर कसौटी पर कंचन की लीक है कि,
तेज ने तिमिर के हिये में तीर मारा है।
काली पाटियों के बीच मोहिनी की माँग है कि,
ढाल पर खाँड़ा कामदेव का दुधारा है।

९

उन्नत उरोज यदि युगल उमेश हैं तो,
काम ने भी देखो दो कमानें ताक तानी हैं।
शंकर कि भारती के भावने भवन पर,
मोह महाराज की पताका फहरानी है।
किंवा लट नागिनी की साँवली सँपेलियों ने,
आधे विधु बिम्ब पै विलास विधि ठानी है।
काटती हैं कामियों को काटती रहेंगी सदा,
भृकुटी कटारियों का कैसा कड़ा पानी है।

१०

तेज न रहेगा तेज धारियों का नाम को भी,
मंगल मयंक मन्द-मन्द पड़ जायँगे।
मीन बिन मारे मर जायँगे सरोवर में,
डूब-डूब शंकर सरोज सड़ जायँगे।
चौंक-चौंक चारों ओर चौकड़ी भरेंगे मृग,
खंजन खिलाड़ियों के पंख झड़ जायँगे।
बोलो इन अँखियों की होड़ करने को अब,
कौन-से अड़ीले उपमान अड़ जायँगे।

११

आँख से न आँख लड़ जाय इसी कारण से,
भिन्नता की भींत करतार ने लगाई है।
नाक में निवास करने को कुटी शंकर कि,
छवि ने छपाकर की छाती पै छबाई है।
कौन मान लेगा कीर तुण्ड की कठोरता में,
कोमलता तिल के प्रसून की समाई है।
सैकड़ों नकीले कवि खोज-खोज हारे पर,
ऐसी नासिका की और उपमा न पाई है।

१२

अम्बर में एक यहाँ दौज के सुधाकर दो,
छोड़ें वसुधा पै सुधा मन्द मुसकान की।
फूले कोकनद में कुमुदिनी के फूल खिले,
देखिए विचित्र दया भानु भगवान की।
कोमल प्रवाल के-से पल्लवों से लाखा लाल,
लाखे पर लालिमा विलास करे पान की।
आज इन ओठों का सुरंगी रस पान कर,
कविता रसीली हुई शंकर सुजान की।

१३

आनन कलानिधि में दूनी कला देख-देख,
चाहक चकोरों के उदास उर ऊलेंगे।
दाड़िम के दानीफल दाने उगलेंगे नहीं,
कुन्द कलियों के झुण्ड झाड़ में न भूलेंगे।
सीप के सपूतों पर शोभा न करेगी प्यार,
शंकर चमेली और मोतिया न फूलेंगे।
दाँतों की बतीसी मणि-मालिका हँसो की इस,
दामिनी की दूती को न देवता भी भूलेंगे।

१४

शंख जो बराबरी की घोषणा सुनावेगा तो,
नार कट जायगी उदर फट जायगा।
शकर कली की छवि कदली दिखावेगा तो,
ऐंठ अट जायगी छबाउ छट जायगा।
कानन में कोकिल सुराग सरसावेगा तो,
होड़ हट जायगी घमंड घट जायगा।
कोई कंठ-कंठी इस कंठ की बँधावेगा तो,
हुण्डी पट जायगी प्रसाद बँट जायगा।

१५

उन्नति के मूल ऊंचे उर अवनीतल पै,
मन्दिर मनोहर मनोज के यमल हैं।
मेल के मनोरथ मथेंगे प्रेम-सागर को,
साधन उतुंग युग मन्दर अचल हैं।
उद्धत उमङ्ग-भरे यौवन खिलाड़ी के ये,
शंकर-से गोल कड़े कन्दुक युगल हैं।
तीनों मत रूखे रसहीन हैं उरोज पीन,
सुन्दर शरीर सुर-पादप के फल हैं।

१६

कंज-से चरण-कर, कदली-से जंघ देखो,
क्षुद्र तण्डुला-से दो उरोज गोल-गोल हैं।
कृष्ण कुण्डला-से कान, भृंग वल्लभा-से दृग,
किंशुक-सी नासिका, गुलाब-से कपोल हैं।
चंचरीक पटली-से केश नई कौंपल से,
अधर अरुण कल कण्ठ के-से बोल हैं।
शंकर वसन्त सेना बाई में वसन्त के-से,
सोहने सुलक्षण अनेक अनमोल हैं।

१७

कंचनी की रीति से रही न छैल छोकरों में,
कुल दुलहिन के-से काम करती रही।
धीरता, उदारता, सुशीलता, प्रवीणता से,
शङ्कर प्रसिद्ध निज नाम करती रही।
अन्तलौं भलाई को न भूली किसी भाँति से भी,
प्रेम का प्रचार आठों याम करती रही।
चित्र के समान कर मस्तक को लाय-लाय,
ज्ञानी गुरु लोगों को प्रणाम करती रही।

१८

बाग़ की बहार देखी मौसमे बहार में तो,
दिले अन्दलीब को रिझाया गुलेतर ने।
हाय, चकराते रहे आस्माँ के चक्कर में,
तो भी लौ लगी ही रही माह की महर से।
आतिशे मुसीबत ने दूर की कुदूरत को,
बात की न बात मिली लज्ज़ते शकर से।
शङ्कर नतीजा इस हाल का यही है बस,
सच्ची आशिक़ी में नफ़ा होता है ज़रर से।

केरल की तारा

१

वीर-मण्डल की महाविद्या, महामाया नहीं,
बालि की वनिता न समझो जीव को जाया नहीं।
सत्य-सागर सूरमा हरिचन्द की रानी नहीं,
आपने यह पाँचवीं तारा अभी जानी नहीं।

२

चित्र-विद्या-विज्ञ रविवर्मा दिखाते हैं इसे,
भाव ज्यों के त्यों दिखाने और आते हैं किसे।
चित्र से बढ़कर चितेरे की बड़ाई कीजिए,
जी लगाकर जी लगाने की कथा सुन लीजिए।

३

कल इसी के योग से थिर भाव मेरा खो गया,
सो गया तो स्वप्न में संकल्प पूरा हो गया।
ध्यान में भरपूर केरल देश की छवि छागई,
मुसकराती सामने प्रत्यक्ष तारा आगई।

४

माँग देकर पाटियों में पीठ पर चोटी पड़ी,
फाड़ मुँह फैलाय फन छवि-राशि पै नागिन अड़ी।
भाल पर चाहक चकोरों का बड़ा अनुराग था,
क्यों न होता चन्द्र का वह ठीक आधा भाग था।

५

भ्रू नहीं मैंने कहा रसराज के हथियार हैं,
काम के कमठा कि ये तारुण्य की तलवार हैं।
मीन खंजन मृग मरें दृग देह-द्रुम के फूल हैं,
इन्दु, मंगल, मन्द से तीनों गुणों के मूल हैं।

६

फूल अम्बर के न कानों को बताकर चुप रहा,
रूप-सागर के सजीले सीप हैं यों भी कहा।
गोल गुदकारे कपोलों को कड़ी उपमा न दी,
पुष्प पाटल-से समझ सौन्दर्य-सुषमा चूमली !

७

नाक थी किंवा कुटी छवि की छपाकर पै नई,
लौर लटकन की कि बिजली लौ दिया की बन गई।
खिलखिला कर मुख बतीसी को कहा बेलाग यों,
कुन्द की कलियाँ कमल के कोष में छिपती हैं क्यों।

८

सब जड़ाऊ भूषणों के सोहने शृंगार थे,
कण्ठ में केवल मनोहर मोतियों के हार थे।
पीन कृश, उकसे-कसे, कोमल-कड़े छोटे-बड़े,
गुप्त सारे अंग साड़ी की सजावट में पड़े।

९

देख उसको मोद-मद से मत्त मैं भी बन गया,
कुछ दिनों तक साथ रहने का इरादा ठन गया।
था समय बरसात, चारों ओर घन घिरने लगे,
बेधड़क वह और मैं उस देश में फिरने लगे।

१०

देख बेपुर और कालीकट नगर सिरमौर को,
चल पड़े रत्नागिरी, टेलीचरी मँगलौर को।
गैल में नाले, नदी-नद स्वच्छ जल-पूरित पड़े,
सैकड़ों एला सुपारी, नारियल केला खड़े।

११

फूल नाना भाँति के जंगल पहाड़ों में खिले,
सिंह, भालू, भेड़िये, चीते, हिरन, हाथी मिले।
चारु चन्दन के लिये ऊँचे मलयगिरि पर चढ़े,
सूँघते सौरभ-घने श्रीखण्ड को आगे बढ़े।

१२

कालड़ी के पास प्यारी पूरणा भी आगई,
सिद्ध शंकर देव की जन्मस्थली मन भा गई,
न्हा चुके सुमता चुके सन्ध्या-हवन भी कर लिया,
बाग़ में डेरा दिया, भोजन किया, पानी पिया।

१३

मैं बिछोने पं पड़ा वह सुन्दरी गाने लगी,
सोहनी बरसात में पीयूष बरसाने लगी।
वार चकवा रो रहा चकवी नदी के पार थी,
वेदना उनको विरह की हाय विष की धार थी।

१४

बस यहाँ तक देखते ही आँख मेरी खुल गई,
स्वप्न के सुख की अलौकिक मधुर मिश्री घुल गई।
यह उसी का चित्र है, तावीज़ में मढ़ लीजिए,
मन लगाकर फिर दुबारा पद्य यह पढ़ लीजिए।

वियोग-वज्रपात !

साठ वर्ष से अधिक समय हुआ फतेहगढ़ से 'कवि-व-चित्रकार' नामक मासिक पत्र प्रकाशित होता था। उसके स्वामी और सम्पादक श्री पं० कुन्दनलालशर्मा थे। पण्डितजी प्रसिद्ध हिन्दी-हितैषी अंग्रेज़ कलक्टर ग्राउस साहब के बड़े मित्र थे। इन्हीं की सहायता व प्रेरणा से कवि-व-चित्रकार प्रकाशित किया गया था। पत्र लीथो में छपता था। इस में चित्र-कला सम्बन्धी बातें, कविताएं तथा समस्या-पूर्तियाँ होती थीं। पण्डित कुन्दनलालजी कवि और चित्रकार दोनों थे। इन्होंने जीवन-भर कवियों और चित्रकारों को बड़ा प्रोत्साहन दिया। कवि-व-चित्रकार में उस समय के सभी विद्वान् और कवि लिखते थे। पं० महावीर-प्रसाद द्विवेदी, महामहोपाध्याय पं० सुधाकर द्विवेदी, भारत-मार्तन्ड पं० गुट्टूलाल, पं० अम्बिकादत्त व्यास, विद्या-वारिधि पं० ज्वाला प्रसाद मिश्र, महाकवि शंकर इत्यादि कवियों की कविताएं और समस्या-पूर्तियाँ प्रकाशित होती थीं। कमजोर कागज पर लीथो में छपा हुआ कवि-व-चित्रकार ही अपने समय का सब से बड़ा और प्रसिद्ध पत्र था। पं० कुन्दनलाल जी ने बड़े उत्साह से इसे निकाला था। कठिनता से बारह-चौदह अंक निकले होंगे कि पण्डितजी राजयक्ष्मा रोग-ग्रस्त हो गए और हिन्दी की महती सेवा करके केवल छत्तीस वर्ष की आयु में चल बसे !

महाकवि शंकर की पण्डितजी से बड़ी मित्रता थी। उन्होंने अपने मित्र के देहान्त पर यह 'वियोग-वज्रपात' लिखा है। कवि-व-चित्र-कार की दी हुई कुछ समस्याओं की पूर्तियाँ पं० कुन्दनलालजी के वियोग-जन्य दुःख में की गई हैं। इन पूर्तियों से कवि की विकलता का पूरा परिचय मिलता है।

पं० कुन्दनलाल के देहान्त के पश्चात् उनके मित्र फ़तेहगढ़-निवासी स्वर्गीय सेठ हरिप्रसादजी ने कवि-व-चित्रकार का अन्तिम अंक निकाला था। इस अंक में पण्डितजी का चित्र था और कवियों की स्वर्गीय के प्रति शोकाञ्जलियाँ थीं। शंकरजी का नीचे लिखा कवित्त उक्त शोकांक में विशेष स्थान पर चित्र के साथ ही दिया गया था। उस समय किसी पत्र या पुस्तक में कोई चित्र प्रकाशित होना बड़े आश्चर्य की बात समझी जाती थी। इस शोकांक के साथ ही कवि-व-चित्रकार की भी समाप्ति हो गई! इस अंक में शंकरजी ने कवि-व-चित्रकार के मुख से ही उसकी वियोग-विह्वलता का वर्णन कराते हुए समाप्ति की सूचना भी बड़े ही कारुणिक शब्दों में दिलाई है। कवि-व-चित्रकार कहता है:—

बारो बलहीन दीन मैं हूं कवि चित्रकार,
प्यारे सेठ हरपरसाद ने पढायो हूँ।
शोक-विष छाय रह्यो मेरे अंग-अंगन में,
बैरी काल-ब्याल ने रिसाय धर खायो हूं।

साँची कहूं शंकर शरीर न रहेगो अब,
अन्त के मिलाप कों तिहारे तीर आयो हूँ।
जाको मेरे उर में विराजत विचित्र चित्र,
ताके तन-त्याग को सँदेसो लिख लायो हूँ।

कवि-व-चित्रकार ने अपने स्वामी और सम्पादक के 'तनत्याग का सँदेसा' देकर अपने पाठकों से अन्तिम मिलाप किया और वह सदा-सर्वदा को विलीन हो गया ! सं०]

१

हमको अब जामन भामन कौ तन घातक शोक सतावतु है,
वह स्वर्ग-शिरोमणि देवन के दल में सुरराज कहावतु है।
धर देह यहाँ शुभ कर्म किये पर कौन वहाँ सुख पावतु है,
कवि शंकर यों उपकारिन कौ "दोउ लोकन में जसु छावतु है"।

२

काढ़ दिये कविरत्न घने हमको जिन भारत-सागर को मथ,
श्री सुखदायक शिल्प सिखाय दिखाय दिये सब उन्नति के पथ।
जीवन दै जग जीवन के हित प्राण तजे हरि प्रेम कथा कथ,
या करनी बिन और भला "उपकार कहावत कौन पदारथ।"

३

देश बिदेशन के सद्ग्रन्थ पढ़े जिन सीख लिये गुण सारे,
धर्म विभूषित दान दयाकर दीन विवेकिन के दुख टारे।
हे हर, हाय, हितू सब के प्रिय पण्डित कुन्दन लाल हमारे,
देह बिसार पसार सुकीरति शंकर सो "सुर लोक सिधारे"।

४

'शंकर' बन्धु हितू सुत सम्पति मित्र घने घरनी घर नीकी,
जीवन को फल पाय उछंग तजी सुखमा धरनी धर नीकी।
कीरति की तरनी पर बैठ लही गति बैतरनी तरनी की,
कुन्दनलाल भये सुख-भाजन "या जग में करनी कर नीकी"।

५

जीवन के बल जीवित हैं, जगतीतल पे सब जीव चराचर,
ता बिन कुन्दनलाल गुनी परलोक गये उर लाय हरा हर।
कूद पड़ो दुख सागर में सिर पै धर मित्र वियोग धराधर,
'शंकर' या मर प्रान तजो "तन बार करो जिन बार बराबर"।

६

या जग में बहुधा नर-नारि कहें निशि-बासर यों सुन भैया,
जात न शंकर बित्त बिना दुख एक यही सुख दान दिवैया।
जो धन के बल आय मिलें बुध कुन्दनलाल सुकर्म करैया,
हाँ, तब तो हम हूँ कहि हैं "अब तो सब कौ गुरुदेव रुपैया"।

७

हाय, अमंगल मूरति मौत पिशाचिनि मंगल साज सजैना,
पापिन धाय चढ़ै जब जापर को तब त्याग शरीर भजैना।
प्राण हरे जग जीवन के अपकार करे नित नेक लजैना,
याहि सखा न सिखाय सके कहि "सार यहै उपकार तजैना"।

८

पालत ही कवि-कञ्जन को मृदु मूरति भारत के सविता की,
आज अचानक अस्त भई वह शङ्कर देख छपी छवि ताकी।
ये बुध कुंदनलाल न जा डर हा समता न करे पवि ताकी,
कुन्दनलाल लुटाय गए कह "उन्नति यों करिये कविता की"।

९

हा, बहु बार अनेक प्रकार विचार-विचार किए उपचार,
हार गए सिर मार गदारि उतार सके न महा दुख भार।
कुन्दनलाल प्रपंच असार बिसार गए कित शोक पसार,
फार गए सबके उर शंकर "भाल लिखी लिपि को सक टार"।

१०

सादर मान बढ़ाय दया कर देत रहे उपहार घनेरे,
वर्ष छतीस बसे बसुधा पर ईश भये अब देवन केरे।
शंकर जाय जहाँ सुख सों प्रिय पण्डित कुन्दनलाल बसेरे,
ले चल, काल, तहाँ हमको "यह चाहत हैं कवि और चितेरे"।

११

सूखौ देह न स्वास को, कफ के कढ़े न प्राण,
पापी पक्षाघात के लगे न घातक बाण,
लगे न घातक बाण मौत को मौत न आई,
बैरी काल कराल भयौ हमको दुखदाई,
हाय, शोक ने स्वाद करौ कविता कौ रूखौ,
कोविद कुन्दनलाल-कल्पतरु शंकर सूखौ ।

(दोहा)

अब तौ हम सबको भयो, बैरी ब्रह्मा बाम,
अधिक लिखे मत लेखनी थम जा आँसू थाम ।

वियोग-वज्राघात

[स्वर्गीय श्री पं० अम्बिकादत्त व्यास संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान् और हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि थे। व्यासजी द्वारा रचित संस्कृत के प्रसिद्ध गद्य महाकाव्य 'शिवराज-विजय' को कौन संस्कृत-प्रेमी नहीं जानता। अपने समय में व्यासजी का हिन्दी-कवियों में बहुत ऊँचा स्थान था। उनका देहान्त अब से लगभग ५० वर्ष पूर्व हुआ। शंकरजी के वे बड़े मित्र थे। अपने मित्र के वियोग में शंकरजी ने निम्नलिखित कविता रची थी। यह कविता कानपुर से प्रकाशित होने वाले रसिकमित्र नामक मासिक पत्र में छपी थी। यह पत्र समस्यापूर्तियों का पत्र था उस समय के सबही प्रसिद्ध-प्रसिद्ध कवि रसिकमित्र द्वारा दी हुई समस्याओं की पूर्तियाँ करते थे। शंकरजी

और व्यासजी भी उन्हीं कवियों में से थे। नीचे की कविता में शंकरजी ने रसिकमित्र की साल-भर की बारह समस्याओं की पूर्तियाँ व्यासजी के वियोग से विह्वल हो करुण रस में की हैं—स०]

१

मूरति सुकवि की छबीली छबि-छबि की,
किरण रूप रवि की अचानक अथै गई।
मोह तम हरनो, अमोघ हित करनी,
कलेस की कतरनी अकाल में कितै गई।
हाय, हम सबको धरावे धीर अब को,
अनूठे अनुभव को समेट संग लै गई।
प्यारे जन जोर के निहार नेह तोर के,
"चटाक चित्त चोर के कपाट पट्ट दै गई।"

२

जीवन बिताय जाय बैठत हैं जीव जहाँ,
शंकर तहाँ की अति अकथ कहानी है।
रेल की न रेल-पेल तार-तड़िता के नाहिं,
डाक-डाकियान की न जानी है न आनी है।
भेजत हो अन्न पट पानी भूत प्रेतन को,
ऐसी रीति आप ने पुरोहितजी जानी है।
सोई बिधि हमको बताओ महाराज आज,
व्यासजी के पास एक "पतिया पठानी है।"

३

व्यासजी, बिसार निज देश को निवास वसि,
देवन के देश में न बासर बिताइये।
हेरत हैं हारे-से तिहारे घरबारे सारे,
प्यारे परिवार पै सनेह सरसाइये।

रावरे ये बूड़त हैं मोह महासागर में,
बावरे अधीरन को धीरज बँधाइये।
हाय, हम लोगन की हीन दशा देखन को,
एक बेर भारत में "फेर चले आइये।'

४

श्रोता उपदेश के बखानत हे बार-बार,
व्यासजी ने व्यास को विवेक-बल पायो है।
ज्योतिषी जतावत है ज्योतिष के ग्रन्थन को,
सार सारो इनही के उर में समायो है।
जीवन को जीवन गदारि गुनी जानत हे,
गायक बतावत हे सारदा को जायो है।
कविता रसीली सुनि रसिया पुकारत हे,
रोको रसराज पै "मनोज चढ़ि आयो है।"

५

बाजत हे जीत के नगाड़े जगतीतल पै,
धीर-वीर ज्ञानी गुन गावत हें जिनके।
नाम, धाम, कीरति के काम सुने ग्रन्थन में,
शंकर न और पते पावत हैं तिनके।
दृश्य देहधारी जो दिखावत हैं आज काल,
खोज अगलेनकों मिलेंगे नाहिं इनके।
व्यासजी विसार बेष विधि की बनावट को,
देख चले "तुमहूँ तमासे चार दिन के।"

६

काशी विश्वनाथ की पुरी में तन त्याग कर,
व्यास बड़भागी ध्रुवधाम को सिधाये हैं।
शोक ने सँगातीन के उर अवनीतल पै,
संकट के अंकुर अनेक उपजाये हैं।

ढार-ढार आँसू दुख रोकत हैं बार-बार,
बावरे बियोगी बिधि बाम के सताये हैं।
भारत अभागे तोहि वारिधि में बोरन को,
मानो तन धारी घन "गरजन आये हैं।"

७

रसभये बिरस रहे न रोग-हारी गुन,
चूरन में, क्वाथ में, स्वरस में न गोली में।
हारे करि-करि के अनेक उपचार मिली,
जीवन-जरी न कविराजन की झोली में।
छूटि गई नारी, देह सीरी भई सारी कछु,
देर हितकारी हरिनाम रह्यो बोली में।
ऊपर को उड़ि गयो व्यास को विशुद्ध हंस,
बैठकर देवन की उड़न "खटोली में।"

८

समझो यदि व्यास विशारद के अनुसार भली करनी करि हौ,
फल पाय भलो सुख जीवन को पल में भवसागर को तरि हौ।
कब लों छिनभंगुर भोगन के उपताप हुतासन में जरि हौ,
कवि शंकर शोक तजौ तुम हू "बचि हो न अजी निहचै मरि हौ"।

९

मत पान करो कवितामृत को, अब केवल शोक हलाहल पीजै,
बुध व्यास बिना हम होड़ बदें, बिन जोड़ कहाँ सब सों कह दीजै।
अनमेल मिले तुकजोरन के दल में उपहार-उपाधि न लीजै,
कवि शंकरजी कवि-मण्डल में कविराज कहाय "गरूर न कीजै।"

१०

कभी चलते नहीं थे चाल कोई बेठिकाने की,
न छोड़ी बान अपनी जीत का डंका बजाने की।
हमारे व्यासजी शतरंज के ऐसे खिलाड़ी थे,
कभी शह ली न बाजी पर किसी से मात खाने की।
लगी लौ व्यासजी को बंधनों से छूट जाने की,
गये गोलोक को सीधे रही दुबिधा न आने की।
मिलेगा आपको हरिचन्दजी के पास ही आसन,
कहीं अड़गड़ न पड़ जाये हमारा जी दुखाने की।

११

शोक-भरी सुधि पाय, बनारस-वासी आये,
शंकर सो अरथी उठाय गंगातट लाये,
रोय-रोय 'राधा कुमार' ने व्यास पिता को,
पावक दे नरमेध कियो चेताय चिता को,
सब साथिन की अँखियान सों, अश्रु-प्रपात परे लगे,
झर बुझी न जर-जर हाड़ हू, बन-बन फून "झरै लगे"।

१२

वैदिक धर्म धुरीण महाव्रत पूरण पण्डित,
संवित्शील विशुद्ध साधु सद्गुण-गण मण्डित,
'घटिका शतक' शतावधान साहित्य-विशारद,
शंकर भारत-रत्न आदि पाये अनेक पद।
अवधूत 'अम्बिकादत्त' सो अचल समाधि लगाय कै,
अनुभूत भूत भावन भये, शोक मसान "जगाय कै"।

गणपति-प्रयाण

१

आपदा की आग ने उबाले शोक-सागर में,
हाय रे 'अनभ्र वज्रपात' का प्रमाण है।
छेद रहा सैकड़ों वियोगियों की छातियों को,
एक ही वियोग-जन्य-वेदना का बाण है,
काल विकराल ने कुचाल की कृपाण गही,
क्यों न प्रेम-कातर कटेंगे कहाँ त्राण है।
शंकर मिलावेगा मिलेंगे परलोक ही में,
प्राणहारी प्यारे गणपति का प्रयाण है।

२

पण्डित प्रतापी, पुण्यशील गणपतिजी ने,
शंकर स्वदेश का सुधार किया काम से।
भारत-निवासियों में कौन परिचित नहीं,
आपके पवित्र यश और नामी नाम से।
स्वामी दर्शनों के सिद्ध धार 'कृपाराम' की-सी,
वैदिक बने हैं जन्म पाय जिस ग्राम से।
हा विधि, हमारो शोक-संहिता के नायक ने,
छोड़ा जग, कूच किया उसी 'जगराम' से।

३

ज्ञान गुणशील गणपतिजी हमारे मित्र,
नागर निवासी 'चूरू' नामक नगर के।
पाराशर गोती विश्व विश्रुत 'पारीक' विप्र,
अंगज प्रतापी 'भानीराम' वैद्यवर के।
दारा और पुत्र का विलोक परलोक-वास;
घूमे अनपत्य पै न पास गये घर के।
अंक राम जीवन के हायन बिताय हाय,
त्यागे हम साथी बने शंकर अमर के।

४

माना महाविद्या का महत्त्व महाविद्यालय,
मंगल मनाते रहे सिद्ध-समुदाय का।
तो भी गुरुकुल में पधारे न प्रवास त्याग,
पाठकों को पाठ न पढ़ाय सके न्याय का।
ब्रह्म गुण गाय ब्रह्म-लोक में विराजे जाय,
पाया पद शंकर सकाय से अकाय का।
मुक्त गणपति हुए बन्ध में गणों को बाँध,
हाय ह्रास होगा न हमारी हाय-हाय का।

५

पादरी बनारसी ने खोली पण्डितों की पोल,
राजा को रिझाय डींग हाँकी विज्ञपन की।
ऐसा सुन गाजे गणपतिजी सभा में जाय,
रौंद-रौंद मारी जानकारी 'जानसन' की।
शंकर सवाई काश्मीर की बनाई बात,
पाई राज-कोष से विदाई मानधन की।
जाते थे दुबारा उसी देश को अकारण क्यों-
छोड़े प्राण पन्थ ही में रोकी रुचि मन की।

६

मानव-समाज में निरीश्वरता नाचती है,
आधे से अधिक बौद्ध, जैन युक्त पौन हैं।
चूके चारवाक न बृहस्पतिजी गाज रहे,
ऊले युक्तिवाद ब्राडलादि का न मौन है।
एकता का पाठ सीखा सोऽहमस्मि शंकर से,
भेद का विलास भी कुभावना का भौन है।
स्वामी दयानन्द कहाँ; हा न गणपति यहाँ,
बोलो, ब्रह्मविद्या का बचाने वाला कौन है ?

७

घेरेंगे-घसीटेंगे घमण्ड-भरे पन्थ-मत,
भारतीय सभ्यता-विरोधी जान खावेंगे।
शंकर भिड़ेगी धर्म-द्रोहियों की भारी भीड़,
कोलाहल वैरी सत्य-न्याय के मचावेंगे ।
ऐसे धर्म-संकट में हार की सहैंगे मार,
वैदिक बनावटी न सूरमा कहावेंगे ।
नाम के नकीले जब जीत न सकेंगे तब,
हाय गणपतिजी किसे न याद आवेंगे।

८

मानो न अलीक भूमिकम्प ही से काँपता है,
विद्युदादि वेगों से पहाड़ हिलता नहीं।
भानु का प्रकाश भव्य कारण विकास का है,
तारों की चमक पाय पद्म खिलता नहीं।
शंकर रबीली कड़ी रेती रेत डालती है,
क्षुद्र छुरी छैनियों से हीरा छिलता नहीं।
हाय, गणपति की अनूठी वक्तृता के बिना,
अन्य उपदेश सुने स्वाद मिलता नहीं।

९

पैसों के पुजापे पाने वालों को न पूजते हैं,
पूज्य न हमारे लण्ठ लालची लुटेरे हैं ।
विद्या के विरोधी वञ्चकों को दान देते नहीं,
ठाली ठग-मँगते मिटाय मान फेरे हैं ।
शंकर सुधारक उपाधिधारी लीडरों में,
आगमज्ञ, ग्रेजुएट, मुन्शी बहुतेरे हैं ।
पोंगा पण्डितों की पण्डिताई के न चाकर हैं,
ज्ञानी गणपति की-सी चातुरी के चेरे हैं।

१०

शंकर मरण-शोक-शूल गणपतिजी का,
ज्ञानी-गुणियों की छातियों में गढ़ जायगा।
नाचेंगे प्रचण्ड नीच ऊँचे प्रतियोगी बिना,
ब्रह्मनाद काँटा किसका न कढ़ जायगा।
ऊलेगी उमंग मूढ़ता की मूढ़-मण्डल में,
पाप के पहाड़ पै प्रमाद चढ़ जायगा।
नाम के महानुभाव मायिक महासुरों की,
मोहमयी माया का महत्व बढ़ जायगा।

११

खोती है दुरन्त जन्म माता गणपतिजी की
प्राण-पोत पुत्र-शोक-सिन्धु में डुबोती है।
बोती है विषाद मुक्ति माँगती है शंकर से,
काल विकराल की कुचाल को बिगोती है।
पोतती निराशा-मसि दैव के दुरानन पै,
देखो दुःख-कातरा विकल कैसी होती है।
धोती है कलंक शेष जीवन का आँसुओं से,
सोती है न नेक दिन-रात पड़ी रोती है।

१२

वैदिक समाज में विषाद के लुटेरे लगे,
लूटे विज्ञ जौहरी अमोल रत्न खो चुके।
हो चुके हताश अवनति के गढ़े में गिरे,
हारे हाथ उन्नति की धारणा से धो चुके।
मृत्यु का मिलाप न अमंगल को मारता है,
कोस-कोस काल की कुचाल को बिगो चुके।
रोते ही रहेंगे प्राण प्यारे गणपतिजी को,
अन्तलों कहेंगे नहीं हाय हम रो चुके।

१३

रुद्रता रुलाने को बगारी रुद्र शंकर ने,
घोला विष कड़वा सुधारस मधुर में ।
शोक परलोक-वास प्यारे गणपतिजी का,
आग उगलेगा नहीं कौन से सदुर में ।
झोंके महाविद्या के सुभक्त काल कौतुकी ने,
दाहक वियोग दुःख-पावक प्रचुर में ।
आँखों से प्रपात आँसुओं के पड़ते हैं तो भी,
ज्वाला न बुझेगी तो जलेंगे ज्वालापुर में ।

१४

भारत का रत्न, भारती का बड़भागी भक्त,
शंकर प्रसिद्ध सिद्ध सागर सुमति का ।
मोहतम-हारी ज्ञान-पूषण, प्रतापशील,
दूषण-विहीन, शिरोभूषण विरति का ।
लोक-हितकारी, पुण्य-कानन-विहारी वीर,
धीर धर्मधारी, अधिकारी शुभगति का ।
देखलो, विचित्र चित्र, बाँचलो चरित्र मित्र,
नाम लो पवित्र, स्वर्गगामी गणपति का ।

गुरुकुल गौरवाष्टक

१

शिवसच्चिदानन्द अविनाशी, शंकर जिसने जान लिया,
चेतनता जड़ता का जिसने, तारतम्य पहचान लिया ।
जिसने हित-साधन जीवों का, जीवन का फल मान लिया,
पुनरुद्धार दरिद्र देश का, करना जिसने ठान लिया ।
उस मुनि दयानन्द दानी का उपदेशामृत पान करो,
गुरुकुल पूजो वैदिक वीरो, विद्या, बल, धन, दान करो ।

२

गप पजार पुण्य पावक में, प्रतिभा पाय पवित्र बनो,
चरम चातुरी की चरचा के चाहक चारु चरित्र बनो।
विश्व विकास विलोक विचारो, विधि वैचित्र्य विचित्र बनो,
माननीय मानव-मण्डल के मंगल मंडित मित्र बनो।
आदर दो अभिज्ञ अगुओं को असुरों का अपमान करो,
गुरुकुल पूजो वैदिक वीरो, विद्या, बल, धन, दान करो।

३

बालक ब्रह्मचर्य व्रत धारें, धर्म-कर्म भरपूर करें,
ब्रह्म-विवेक-प्रकाश पसारें, मोह महातम दूर करें।
युक्ति-प्रमाण-तर्क पटुता से, भ्रम को चकना चूर करें,
पन्थ न पकड़ें मतवालों के, साधु स्वभाव न क्रूर करें।
सरल सुलक्षण सन्तानों को, संयम शील सुजान करो,
गुरुकुल पूजो वैदिक वीरो, विद्या, बल, धन, दान करो।

४

पुर बाहर शिक्षा-सदनों में, लड़की-लड़के वास करें,
भिक्षुक बनें किसी के व्रत को, भंग न भोग-विलास करें।
निखिल तंत्र निष्णात प्रतापी, पढ़-पढ़ पूरे पास करें,
बन विद्याभूषण पूषण से, गुरुता पर उद्भास करें।
इस प्रकार से अध्यापन का, शुद्ध-विशुद्ध विधान करो,
गुरुकुल पूजो वैदिक वीरो, विद्या, बल, धन, दान करो।

५

रटें न उन ग्रन्थों को जिनके, गुणधर ज्ञानागार न हो,
पढ़ें न उनसे जिनके द्वारा, मानव-धर्म प्रचार न हो।
चलें न उनके पीछे जिनका, जीवन परमोदार न हो,
बसें न उनमें जिनको प्यारा, सबका सर्व सुधार न हो।
सावधान सन्तति-समूह को, नैतिक न्याय निधान करो,
गुरुकुल पूजो वैदिक वीरो, विद्या, बल, धन, दान करो।

६

दुहिता पुत्र प्रजेश-प्रजा के, उठ उन्नत उत्साह करें,
गुण-कर्मानुसार पदवी ले, निरभिमान निर्वाह करें।
षोडश वर्ष बिताय कुमारी, विदुषी वर की चाह करें,
बुध कुमार पच्चीस अब्द के, होकर धर्म विवाह करें।
यों मिल दम्पति प्रेम पसारें, साहस सदनुष्ठान करो,
गुरुकुल पूजो वैदिक वीरो, विद्या, बल, धन दान करो।

७

अब तक हानि हुई सो होली, समझो फिर भी भूल न हो,
बालकपन के नवजातों का, जन्म अमंगल मूल न हो।
आधि अशक्ति अकिंचनता का, योग त्रिदोष त्रिशूल न हो,
अगला कर्म कलाप किसी का, पिछलों के प्रतिकूल न हो।
प्रेम-प्रताप मेल की महिमा, वैर बिसार बखान करो,
गुरुकुल पूजो वैदिक वीरो, विद्या, बल, धन, दान करो।

८

धन्य-धन्य इस स्वर्ण सुयुग में, जाति अरक्षित एक नहीं,
पढ़ते हैं परिवार प्रजा के, धमकाता अविवेक नहीं।
भव्य विभूति बढ़ी वैभव की, व्यापारिक व्यतिरेक नहीं,
अवसर है ऊँचा चढ़ने को, कहिए किस की टेक नहीं।
जननी जन्म-भूमि विभुता की, भारत के गुण गान करो,
गुरुकुल पूजो वैदिक वीरो, विद्या, बल, धन, दान करो।

'तागड़ दिन्ना नागर बेल'

(१)

शंकर पूजेगा उसे, क्यों न हनूद समाज,
जो उपजा है हिन्द में, हिन्दी-कवि-कुल-राज।

शंकर न्याय-तुला पै तोल, ढोंग-ढोल की पोल न खोल।
लागू लोग न उगलें गन्द, बोले विश्व ढकफुलानन्द।
टेसू कहें न ऊत अलेल,
तागड़ दिन्ना नागर बेल।

फूला सुयश फला संन्यास, क्या मैं नहीं कलियुगी व्यास।
आदर पाता हूँ सब ठौर, मुझ-सा सिद्ध न होगा और।
खेल रहा उन्नति के खेल,
तागड़ दिन्ना नागर बेल।

उमगा उन्नति का उत्कर्ष, हिन्द होगया भारतवर्ष।
हिन्दू बनकर हिन्दी बोल, ऊँचा पद पाया बिन मोल।
आर्य योग को दिया ढकेल,
तागड़ दिन्ना नागर बेल।

विद्योदधि-मुक्ता कवि-रत्न, बन बैठा मैं विना प्रयत्न।
काव्य-कला का कर विस्तार, तड़का आज तीसरी वार।
अपनाया साहित्य सकेल,
तागड़ दिन्ना नागर बेल।

गढ़ता नहीं गमारू गद्य, लिखता नहीं लँड़ूरे पद्य।
कोरी तुकबन्दी कर बन्द, सुनलो मेरे बढ़िया छन्द।
तुक्कड़-कुल का काढ़ा तेल,
तागड़ दिन्ना नागर बेल।

भूले भूतपूर्व कवि लोग, करना हिन्दू शब्द प्रयोग।
प्यारे, केशव, तुलसी, सूर, हा चल बसे हिन्द से दूर।
डालगये हिन्दी पर डेल,
तागड़ दिन्ना नागर बेल।

पाता है जिसका हथियार, महावीरता से उपहार ।
ऐसा शंकर भी तुक जोड़, कर न सकेगा मेरी होड़ ।
ओढ़ी जय की खाल उचेल,
तागड़ दिन्ना नागर बेल ।

धर्म प्रचारें हे करतार, तेरे दूत, पूत, अवतार ।
सबका नहीं एक-सा वेद, फैल गये नाना मतभेद ।
झगड़ें झुण्ड झंझटें झेल,
तागड़ दिन्ना नागर बेल ।

न्याय-नीति को लेकर साथ, प्रभुता आई जिनके हाथ ।
हा, उनकी करते हैं होड़, हिन्द निवासी तीस करोड़ ।
एक निकाले दस की मेल,
तागड़ दिन्ना नागर बेल ।

राज-भक्ति का पीकर सोम, होमरूल का कर दो होम ।
द्रव्य-दान का पटको आज्य, दूर हिन्द से रहे स्वराज्य ।
ठने फूट की ठेलमठेल,
तागड़ दिन्ना नागर बेल ।

पकड़ा सत्य ढँढोरा पीट, घेरे घाघ घसीट-घसीट ।
देख 'मार्शल ला' का दर्प, छोड़ा 'रौलट बिल' का सर्प ।
पिटकर भोग रहे है जेल,
तागड़ दिन्ना नागर बेल ।

बदलें जाति-पाँति की नीति, पकड़ें कौल चक्र की रीति ।
तो बन जावेगा बस काम, मनसा पूरी करदे राम ।
सहैं न नक्कूनाथ नकेल,
तागड़ दिन्ना नागर बेल ।

वस्त्र गेरुआ मुण्डित मुण्ड, निगलें भीख ब्रह्म के झुण्ड,
पियें त्याग का तत्व निचोड़, स्वामी बने दासपन छोड़ ।
दम्भ योग की बही बहेल,
तागड़ दिन्ना नागर बेल ।

मोधू-मंडल के प्रतिकूल, क्यों लिखते हो लेख फुजूल।
यों बेजोड़ बजा कर गाल, बड़े न होंगे छोटेलाल।
मारो मौज मिलाकर मेल,
तागड़ दिन्ना नागर बेल।

ज्ञान-भानु का हो न प्रकाश, हो न अविद्या-तमका नाश।
मत-पन्थों पे पड़े न मार, ठगते रहें मूढ़-मक्कार।
कपट-जाल की दौड़े रेल,
तागड़ दिन्ना नागर बेल।

'तागड़ दिन्ना नागर बेल'

(२)

शंकर स्वामी काटदे, मोह-जाल-भ्रम-फन्द,
टेसू से करदे मुझे, सेण्ट ढकफुलानन्द।

नाना नाम उपाधि अनेक, सब का सार-भूत मैं एक,
टेसू कहना करदो बन्द, बोलो स्वामि ढकफुलानन्द।
पंचो मुझसे करलो मेल,
तागड़ दिन्ना नागर बेल।

किंशुक फूलें पात विसार, मैं धज लाल गुरू की धार।
ठकुर सुहाती बोली बोल, बोध बाँटता हूं बिन मोल।
ढाया ढोंग ढकेल-ढकेल,
तागड़ दिन्ना नागर बेल।

तन में धार गेरुआ सूट, पैरों में बढ़िया फुलबूट।
हाथ बाल्टी हँसलीदार, छाता-बेंत बग़ल में मार।
खेल खिलाता हूं खुल खेल,
तागड़ दिन्ना नागर बेल।

छूटे भ्रामक भोग-विलास, रँड़ुआ हुआ लिया संन्यास।
रहा न सेवकता का रोग, स्वामी कहते हैं सब लोग।
मुण्डा हूँ अलमस्त अलेल,
तागड़ दिन्ना नागर बेल।

उमगा उन्नत ज्ञानागार, विद्या का बन गया विहार।
किया महत्ता ने मनमस्त, पुष्ट होगए अंग समस्त।
मोटा मल्ल बना दँड पेल,
तागड़ दिन्ना नागर बेल,

सहे न चित चिन्ता की चोट, मारा मदन बाँध लंगोट।
मेरे तपका पाय प्रताप, अन्ध अबोध विसारे पाप।
है सुख-रस की रेलापेल,
तागड़ दिन्ना नागर बेल।

भाँति-भाँति के व्यंजन-पाक, उड़ें छकाछक छँ-छे छाक।
पीकर दूध मलाईदार, मेवा से भरपेट पिटार।
फल खाता हूँ भरी चँगेल,
तागड़ दिन्ना नागर बेल।

योग-भोग के सब सामान, देते रहते हैं यजमान।
"मौंक हाल" को मान कुटीर, रहता हूं सरिता के तीर।
ठनी ठाठ की ठेलमठेल,
तागड़ दिन्ना नागर बेल।

दम्भ सुमति सीता का चोर, दम्भी यातुधान कुलबोर।
मैं खल-घाती-राम-कृपालु, शिष्य-सँगाती वानर, भालु।
आश्रम मेरा शैल-सुबेल,
तागड़ दिन्ना नागर बेल।

धर्म धारणा के ध्रुव धाम, करता हूँ सारे शुभ काम।
मेरी सुरति शक्ति का सार, उपजा औरों का उपकार।
द्रोण दया का दिया उड़ेल,
तागड़ दिन्ना नागर बेल।

उच्च विचार ज्ञान गम्भीर, मीठे बोल बलिष्ठ शरीर।
शुद्धाचार चरित्र उदार, करता हूँ ध्रुव धर्म-प्रचार।
गही न्याय की नीति-नकेल,
तागड़ दिन्ना नागर बेल।

रट-रट हिन्दी का साहित्य, गद्य-पद्य पढ़ता हूँ नित्य।
पढ़लो मेरे लेख प्रचण्ड, क्या झूँठा है उचित घमण्ड।
तोड़ी पिंगल की इसकेल,
तागड़ दिन्ना नागर बेल।

करता हूं दो बार सनान, धरता हूँ सामाधिक ध्यान।
हूँ गलबज्जों का सिरमौर, बकने जाता हूँ सब ठौर।
सैर कराती है बस रेल,
तागड़ दिन्ना नागर बेल।

चढ़ वेदी पै जोड़ समाज, बनता हूँ वक्ता-मुनि-राज।
बार-बार कर पानी पान, देता हूँ वचनामृत-दान।
पकड़ी दुष्ट-घातिनी सेल,
तागड़ दिन्ना नागर बेल।

मेरे शिष्य प्रसिद्ध-प्रसिद्ध, शिक्षा लेते अनुभव-सिद्ध।
परमादर्श स्वार्थ को मान, करें सत्य का अनुसन्धान।
काढ़ें कुसुर-कुलों की मेल,
तागड़ दिन्ना नागर बेल।

पूजें मुझको गीदड़ दास, करते सिंहों का उपहास।
मोह-महासुर को संहार, पाते चर्म-पुष्प उपहार।
चोट-चटों पै चुपड़ें तेल,
तागड़ दिन्ना नागर बेल।

जाति-पाँति के बन्धन तोड़, छुआछूत पर छी-छी छोड़।
बुद्ध बढ़ियों के अनुसार, ऊलें उठें गिरे परिवार।
घटियापन पै डालें डेल,
तागड़ दिन्ना नागर बेल।

वैदिकता का तत्व निचोड़, और अविद्या का घर फोड़।
पक्षपात पर मारी लात, सब को ठीक बता दी बात।
तोड़ा जटिल जाल का जेल,
तागड़ दिन्ना नागर बेल।

शंकर स्वामी का उपदेश, समझो साधु सुधारो देश।
काल आगया मङ्गलमूल, कर्म-योग में भरो न भूल।
मानो करो न नेक झमेल,
तागड़ दिन्ना नागर बेल।

'नौकरशाही'

नौकरशाही दे चुकी, भारत तुझे स्वराज्य,
डाल न आशा-आग में, असहयोग का आज्य।

क्रूर कुशासन की धज धारी, कट्टर कूट कुनीति पसारी।
हा, न लोक-मत से डरती है, भारत का भुरता करती है।
अकड़ अड़ाती है चित चाही,
अटकी कुटिला नौकरशाही।

राजा धौंस-धमक सहते हैं, अनुगामी रईस रहते हैं।
जनता "जी हुजूर" कहती है, बेदर बदरौ में बहती है।
निगले गन्द खुशामद-माही,
अटकी कुटिला नौकरशाही।

मौज उड़ाते रिशवत खौआ, उमगे प्लीडर माल कमौआ।
ऊलें पुलिसमैन पटवारी, विचरे चरुआचक्र सुखारी।
सबने गैल गही गुमराही,
अटकी कुटिला नौकरशाही।

डेढ़ टका प्रतिवासर पाते, पर कर चन्दा टैक्स चुकाते ।
चूँसे रुधिर कचहरी चण्डी, रगड़े रेल उड़ा कर झण्डी ।
कम न दिलाते दाम सलाही,
अटकी कुटिला नौकरशाही ।

लागत, व्याज, नीरकर, पोता, चार चुकाकर भूतल-जोता ।
जो कुछ बचता है वह खाते, जीवन संकट काट बिताते ।
कुदशा कृषकों ने अवगाही,
अटकी कुटिला नौकरशाही ।

घोर अमंगल घेर रहा है, भंग दरिद्र बखेर रहा है ।
महँगी कष्ट पेट भर देगी, नाश निरुद्यमता कर देगी ।
पोच प्रजा पर पड़ी तबाही,
अटकी कुटिला नौकरशाही ।

हा, दिन-रात ढोर कटते हैं, जीवन के साधन घटते हैं ।
दूध-दही पर गाज पड़ी है, झेल रहे कुछ मार कड़ी है ।
दी गोपाल सुयश पर स्याही,
अटकी कुटिला नौकरशाही ।

पहुंचे वीर स्वदेश-दुलारे, जीते रण में जाय न हारे ।
घायल हुए कटे तन त्यागे, दिन काटें अवशिष्ट अभागे ।
गौर न समझें श्याम सिपाही,
अटकी कुटिला नौकरशाही ।

हा, महमूद संगदिल डाकू, उफ़, नादिर, तैमूर हलाकू ।
ये जालिम चंगेज़ सितम थे, ओडायर-डायर से कम थे ।
देगा बस इतिहास गवाही,
अटकी कुटिला नौकरशाही ।

इष्ट देव सब शिष्ट मनाते, संकट सूचक भाव जनाते ।
पौराणिक सुमरें श्रीधर को, वैदिक अपनाते शंकर को ।
मियाँ कहें ले खबर इलाही,
अटकी कुटिला नौकरशाही ।

भूखा दरिद्र भटके दिन-रात रोटियों को,
बस पेट पालता है बढ़िया विहार तेरा।
मत-पंथ ढोंगियों की अनमेल मोह-माया,
बेड़ा न कर सकेगी भव-सिन्धु पार तेरा।

बन हिन्द हिन्दुओं का अब इण्डिया कहाया,
देखा न नाम पर भी अभिमान-प्यार तेरा।
तुक्कड़ गितक्कड़ों को कविरत्न मानता है,
लगले गढ़न्त गन्दी कविता-प्रसार तेरा।
वेदान्त-सार समझा शङ्कर-प्रसाद पाया,
कर कर्महीन भागा मायिक विकार तेरा।

पुरानी पाठशाला

१

शंकर वैदिक धर्म यहाँ जब जाग रहा था,
जनता में शुभ कर्मयुक्त अनुराग रहा था।
उद्यम उन्नति नाश, समंगल खेल रहा था,
सबका सबके साथ, यथोचित मेल रहा था।

२

धर्म धुरन्धर धोर, समाज सुधार रहे थे,
धार न्याय, बल वीर, सुनीति प्रचार रहे थे।
श्रम, साहस, उद्योग, पसार सुयोग रहे थे,
सभ्य, भव्य, बिन रोग, लोग सुख भोग रहे थे।

३

जीवन के अधिकार, अमंगल धाम नहीं थे,
शुद्ध चरित्र उदार, कलंकित काम नहीं थे।
सम थी प्रजा, प्रजेश, छिपे छलछिद्र नहीं थे,
स्वर्ग सहोदर देश, दुकाल दरिद्र नहीं थे।

४

छल, पाखण्ड, प्रमाद-भरे मत-पन्थ नहीं थे,
विकट वितण्डावाद, विधायक ग्रन्थ नहीं थे।
मत्त मनोसुख मूढ़, बने ऋषिराज नहीं थे,
अधम अधर्मारूढ़, असभ्य समाज नहीं थे।

५

सद्गुण, कर्म, स्वभाव, प्रकट जिनके जैसे थे,
वे विभक्त निज भाव भरित वैदिक वैसे थे।
वर्ण विवेक विधान, प्रकृति में फेर नहीं था,
अब का-सा अभिमान-जनित अन्धेर नही था।

६

सिद्ध सुधारक शिष्य, सुबुध शर्मा बनते थे,
रक्षक वीर बलिष्ठ, सुभट वर्मा बनते थे।
कृषि वाणिज्य प्रवीण, गुप्त पद अपनाते थे,
जड़ धी क्षमता क्षीण, दास बस बन जाते थे।

७

अन्त्यज, दस्यु, चमार, प्रभृति सबके प्यारे थे,
खान, पान, व्यवहार, चलन रखते न्यारे थे।
जन्म जाति कृत पाँति, प्रवर्त्तन एक नहीं था,
जब का अबकी भाँति, मलीन विवेक नहीं था।

८

जब थे गरिमागार, वरद विद्यालय जैसे,
अब न अशुल्काधार, बनेंगे गुरुकुल वैसे।
अबुध वैदिकाभास, विवेक न बो सकते हैं,
क्या टीचर धनदास, कुटीचर हो सकते हैं।

९

ब्रह्मचर्य व्रत धार, वेद बालक पढ़ते थे,
जिनके शोधसुधार, न अबके-से बढ़ते थे।
जटिल काछ कौपीन, साज संयम करते थे,
पर न तितिक्षा हीन, बनावट पै मरते थे।

१०

कन्द,मूल,फल,शाक, शिष्य गुरु सब खाते थे,
बढ़िया व्यञ्जन, पाक, विरक्त न बनवाते थे।
माँग-माँगकर भीख, पेट भरते रहते थे,
माल सटकना सीख, न 'लाधन दे' कहते थे।

११

पढ़ विद्या प्रण-पाल, ज्ञान-गिरि पै चढ़ते थे,
कर पूरा व्रत-काल, ब्रह्मकुल से कढ़ते थे।
तरुणस्नातक विज्ञ, वधू विदुषी वरते थे,
दोनों सुदृढ़ प्रतिज्ञ, प्रेम-सागर तरते थे।

१२

धर्म सुकर्म-कलाप, समोद किया करते थे,
दम्पति मेलमिलाप, सनेह पिया करते थे।
देख पौत्र गृह-त्याग, वनी याजक बनते थे,
फिर योगी गतराग, परिव्राजक बनते थे।

१३

दे-दे कर उपदेश, देश-भर में फिरते थे,
पर न त्याग उद्देश्य, किसी घर में घिरते थे।
जिनके चारुचरित्र, सदागम सिखा रहे हैं,
उनके चित्र विचित्र, निदर्शन दिखा रहे हैं।

१४

बाल छात्र बटु तीन, वृद्ध ऋषि एक निहारो,
वैदिक काल कुलीन, प्रकट करते हैं चारो।
आश्रम के सब ओर, मृगीमृग डोल रहे हैं,
घन वृक्षों पर मोर, कीर, पिक बोल रहे हैं।

दोहा

तब के भावों से भरा, देखो अभिनव चित्र।
जब के विद्यापीठ थे, इस प्रकार के मित्र।

[नोट - यह कविता एक चित्र
के आधार पर लिखी गयी थी—सं]

दयानन्दोदय

१

कब सत्य सनातनधर्म, आप अपनाते,
यदि दयानन्द गुरुदेव, उदार न आते।
अवतार कहा कर जो, न कु-भार उतारे,
बन कर जो बुद्ध विशुद्ध, न यश विस्तारे।
जनता पर जिसका पुत्र, न प्रेम पसारे,
कर प्यार न जिसका दूत, समाज सुधारे।
उस एक सर्व-गत के न भक्त बन जाते,
यदि दयानन्द गुरुदेव, उदार न आते।

२

जिसमें मतभेद प्रवाह, घने बहते हैं,
जिसमें अनमेल कुभाव, भरे रहते हैं।
जिसके कुल घोर दरिद्र, दुःख सहते हैं,
हँस-हँस हिन्दू बन हिन्द, जिसे कहते हैं।
इस भारत में सुविचार, प्रचार न पाते,
यदि दयानन्द गुरुदेव, उदार न आते।

३

कर घोर घृणा मुख मोड़, पाहनी हर से,
चल दिए महाव्रत धार, पिता के घर से।
पढ़ विरजानन्द विरक्त, ज्ञान-सागर से,
बन वैदिक सिद्ध प्रसिद्ध, मिले शङ्कर से।
किसके यों अनुकरणीय, चरित्र सुनाते,
यदि दयानन्द गुरुदेव, उदार न आते।

४

दृढ़ ब्रह्मचर्य-बलधार, विवेक बढ़ाया,
तज भोग, सिद्ध कर योग, जन्म-फल पाया।
करणी-धरणी पर धर्म-मेघ बरसाया,
सब को देकर उपदेश, देश अपनाया।
बुध वरद संविदादर्श, किसे बतलाते,
यदि दयानन्द गुरुदेव, उदार न आते।

५

भारत-भर में भय त्याग, विचरते डोले,
सबके गुण-दूषण टेक टिकाय टटोले।
धर तर्क-तुला पर कूट, कथानक तोले,
कर परम सत्य स्वीकार, असत्य न बोले।
किसके गुण यों जय बोल-बोलकर गाते,
यदि दयानन्द गुरुदेव, उदार न आते।

६

नव द्रव्य धर्म गुण कर्म, शुभाशुभ जाने,
अनुभूत प्रमाण-प्रयोग, विधान बखाने।
समझे ऋषि-तन्त्र सुधार, सुधारस साने,
भ्रम-जाल-भरे नर-ग्रन्थ, विशुद्ध न माने।
किस पर मारालिक न्याय, निदान कराते,
यदि दयानन्द गुरुदेव, उदार न आते।

७

समुचित आचार-विचार, शोध समझाये,
कर पुण्य प्रकाशित पाप, जघन्य जनाये।
रच पद्धति वैदिक योग व्रतादि बताये,
लिख लेख सदर्थ अनर्थ, भेद दरसाये।
विधि और निषेध अजान, न जान जनाते,
यदि दयानन्द गुरुदेव, उदार न आते।

८

गढ़ दम्भ-दैत्य का तोड़, मोह-मठ फोड़े,
कर दूर अवैदिक दर्प, प्रपंच मरोड़े।
मत-पन्थ प्रसारक पत्त, न जीवित छोड़े,
सटकी भ्रम की भरमार, भिड़े न भगोड़े।
खड़तल खण्डन की मार, कहो कब खाते,
यदि दयानन्द गुरुदेव, उदार न आते।

९

जब गुरुकुल विद्यापीठ, सदा बढ़ते थे,
जब करद ब्रह्मचारी न वेद पढ़ते थे।
जब शिष्य यथोचित वर्ण धार कढ़ते थे,
जब उन्नति पै प्रण रोप-रोप चढ़ते थे।
अब क्या तब के अनुसार, षडंग पढ़ाते,
यदि दयानन्द गुरुदेव, उदार न आते।

१०

प्रतिभा-धर दत्त दयालु, विप्र पढ़पावे,
त्तत्रिय पढ़ वेद बलिष्ठ, वरिष्ठ कहावे।
कर कृषि-वाणिज्य सुबोध वैश्य बन जावे,
वह शूद्र जिसे द्विजदास अबोध बनावे।
गुण, कर्म, स्वभाव न वर्ण-विभाग बनाते,
यदि दयानन्द गुरुदेव, उदार न आते।

११

कर ब्रह्म-कथामृत पान, विसार उदासी,
बन गये मृत्यु-भय त्याग, अमर संन्यासी।
उमगे बुध सज्जन देश, विदेश निवासी,
चिड़ गये विदूषक चोर-चबोर बिसासी।
किसके बलसे किस भाँति, किसे समझाते,
यदि दयानन्द गुरुदेव, उदार न आते।

स्वामी दयानन्द सरस्वती

१

जहाँ घोषणा राम के नाम की है,
जहाँ कामना कृष्ण के काम की है।
अहिंसा जहाँ शुद्ध बुद्धार्य की है,
प्रशंसा जहाँ शंकराचार्य की है।
वहाँ दैव ने दिव्य योगी उतारे,
प्रतापी दयानन्द स्वामी हमारे।

२

अनायास चेता गया एक चूहा,
गिरी भूल, ऊँची चढ़ी उच्च ऊहा।
जड़ीभूत भूतेश की भक्ति भागी,
महादेव के प्रेम की ज्योति जागी।
उठे इष्ट की ओर सीधे सिधारे,
प्रतापी दयानन्द स्वामी हमारे।

३

हितू, बन्धु, माता, पिता, मित्र छोड़े,
लगे मुक्ति की खोज में बन्ध तोड़े।
भले भोग त्यागे, गही योग शिक्षा,
फिरे देश में माँगते धर्म-भिक्षा।
बने भद्रिका भारती के दुलारे,
प्रतापी दयानन्द स्वामी हमारे।

४

टिका टेक ठाना उसी ठौर जाना,
जहाँ ठीक पाना सुना था ठिकाना।
मिले योगियों से निकाली कचाई,
मिटा अन्ध विश्वास सूझी सचाई।
कहाये 'प्रज्ञानन्द' के शिष्य प्यारे,
प्रतापी दयानन्द स्वामी हमारे।

५

मनोभावना साधना से मिलादी,
सुधा ध्यान को धारणा की पिलादी।
समाधिस्थ हो ब्रह्म में लौ लगाई,
मिली सम्पदा सिद्धियों की न भाई।
टिके एकता में मिटा भेद सारे,
प्रतापी दयानन्द स्वामी हमारे।

६

निहारी महा चेतना की महत्ता,
उसी में जुड़ी जानली जीव-सत्ता।
उघारी उपादान की योग माया,
जगज्जाल में तीन का मेल पाया।
बसे विश्व की विश्वता से न न्यारे,
प्रतापी दयानन्द स्वामी हमारे।

७

रहे आदि से अन्त लों ब्रह्मचारी,
पढ़ी वेदविद्या, अविद्या विसारी।
कहा सज्जनों से बनो स्वर्ग-भोगी,
भजो सच्चिदानन्द को मुक्ति होगी।
न होना कभी आलसी यों पुकारे,
प्रतापी दयानन्द स्वामी हमारे।

८

ढके ढोंगियों का किया ढाँच ढीला,
लताड़ी छुआछूत की छद्म लीला।
दिखा दोष पाखण्ड का खोज खोया,
खलोपाड़ खोटे खलों को बिगोया।
प्रमादी पछाड़े किसी से न हारे,
प्रतापी दयानन्द स्वामी हमारे।

९

प्रसादी सदा प्रेम की बाँटते थे,
घृणा से किसी को नहीं डाँटते थे।
सजीला सदाचार को जानते थे,
न चोखा किसी चिन्ह को मानते थे।
कभी वस्त्र धारे कभी थे उघारे,
प्रतापी दयानन्द स्वामी हमारे।

१०

न खाता किसे काल-कूटस्थ-अत्ता,
बही सिन्धु में बूँद की भक्तिमत्ता।
'दिया' न्याय का नीचता ने बुझाया,
दया और आनन्द का अन्त आया।
दिवाली हुई हाय, होली, पजारे,
प्रतापी दयानन्द स्वामी हमारे।

आर्य्यपञ्च की आल्हा

१

हे वैदिक दल के नर नामी, हिन्दू-मण्डल के करतार,
स्वामि सनातन सत्यधर्म के भक्ति-भावना के भरतार।
सुत वसुदेव-देवकीजी के नन्द यशोदा के प्रिय लाल,
प्राणाधार रुक्मिणीजी के, प्यारे गोपिन के गोपाल।

२

मुक्त, अकाय बने तनधारी, श्रीपति के पूरे अवतार,
सर्व-सुधार किया भारत का कर सब क्रूरों का संहार।
ऊँचे अगुआ यादव-कुल के वीर अहीरों के सिरमौर,
दुविधा दूर करो द्वापर की ढालो रंग-ढंग अब और।

३

भड़क भुला दो भूत काल की सजिये वर्तमान के साज,
फैशन फेर इंडिया-भर के गोरे-गाड बनो ब्रजराज।
गौर वर्ण वृषभानु-सुता का काढ़ो, काले तन पर तोप,
नाथ, उतारो मोरमुकुट को सिर पै सजो साहिबी टोप।

४

पौडर, चन्दन पोंछ लपेटो आनन की श्री ज्योति जगाय,
अञ्जन अँखियों में मत आँजो आला ऐनक लेहु लगाय।
रत्न-धर कानों में लटका लो कुण्डल काढ़ मेकराफून,
तज पीताम्बर, कम्बल काला डाँटो कोट और पतलून।

५

पटक पादुका पहनो प्यारे बूट इटाली का लुकदार,
डालो डबल वाच पाकट में चमकें चेन कंचनी चार।
रखदो गाँठ-गठीली लकुटी छाता-बेंत बगल में मार,
मुरली तोड़-मरोड़ बजाओ बाँकी बिगुल सुने संसार।

६

फरिया चीर-फाड़ कुबरी को पहिनालो पँचरंगी गौन,
तरुण त्रिभंगी लाल तुम्हारी लेडी और बनेगी कौन।
मुँदना नहीं किसी मन्दिर में काटो होटल में दिन-रात,
पर नज़खौआ ताड़ न जावें बढ़िया खान-पान की बात।

७

वैनतेय तज व्योमयान पै करिये चारों ओर विहार,
फक-फक फूँ-फूँ फूँको चुरटें उगलें गाल धुँआ की धार।
यों उत्तम पदवी फटकारो 'माधो मिस्टर' नाम धराय,
बाँटो पदक नयो प्रभुता के भारत जाति-भक्त हो जाय।

८

कहदो सुबुध विश्वकर्मा से रच दे ऐसा हाल विशाल,
जिस पै गरमी-नरमी वारे कांगरेस-कुल की पण्डाल।
सुर, नर, मुनि डेलीगेटों को देकर नोटिस, टेर्ल ग्राम,
नाथ ! बुलालो उस मण्डप में, बैठें जेंटिलमैन तमाम।

९

उमगें सभ्य सभासद सारे सर्वोपरि यश पावें आप,
दर्शक रसिक तालियाँ पीटें नाचें मंगल, मेल-मिलाप।
जो जन विविध बोलियाँ बोले टर्रीली गिट-पिट को छोड़,
रोको, उस गोबरगणेश को करे न सर-भाषा की होड़।

१०

वेद-पुराणों पर करते हैं, आरज-हिन्दू वाद-विवाद,
कान लगाकर सुनलो स्वामी, सबके कूट कटीले नाद।
दोनों के अभिलषित मतों पै बीच सभा में करो विचार,
सत्य झूँठ किसका कितना है, ठीक बता दो न्याय पसार।

११

जगदीश्वर ने वेद दिये हैं यदि विद्या-बल के भंडार,
उनके ज्ञाता हाय न करते तो भी अभिनव आविष्कार।
समझा दो वैदिक सुजनों को उत्तम कर्म करें निष्काम,
जिनके द्वारा सब सुख पावें जीवित रहैं कल्प लों नाम।

१२

निपट पुराणों के अनुगामी, ऊलें निरखो इनकी ओर,
निडर आप को भी कहते हैं, 'नर्त्तक, जार, भगोड़ा, चोर'।
प्रतिदिन पाठ करें गीता के, गिनते रहैं रावरे नाम,
पर हा, मनमौजी मतवाले, बनते नहीं धर्म के धाम।

१३

कलुष, कलंक कमाते हैं जो उनको देते हैं फल चार,
कहिये, इन तीरथ देवों के क्यों न छीनते हो अधिकार।
यों न किया तो डर न सकेंगे डाकू उदरासुर के दास,
अधम, अनारी, नीच, करेंगे, मनमाने सानन्द विलास।

१४

वैदिक, पौराणिक पुरुषों में, टिके टिकाऊ मेल-मिलाप,
गैल गहैं अगले अगुओं की, इतनी कृपा कीजिये आप।
जिस विधि से उन्नत हो बैठे यूरुप, अमरीका, जापान,
विद्या, बल, प्रभुता, उनकी-सी दो भारत को भी भगवान।

१५

देव, आज के अधिवेशन में पूरे करना इतने काम,
'हिप-हिप हुर्रों' के सुनते ही खाना टिफ़िन पाय आराम।
झंझट, झगड़े मतवालों के जानो सब के खण्ड-विभाग,
तीन-चार दिन की बैठक में कर दो संशोधन बेलाग।

१६

बनिये गौर श्यामसुन्दरजी ताक रहे हैं दर्शन दीन,
हम को नहीं हँसाना बनके, बाघ, वितुण्डी, कछुआ, मीन।
धार सामयिक नेतापन को दूर करो भूतल का भार,
निष्कलंक अवतार कहेंगे, शंकर सेवक बारम्बार।

सलोने की आल्हा

१

सावन की पूरनमासी को जग में भयो मच्छ अवतार,
बीन गिड़ोये हरि ने खाये, सो समझै करे संसार;
यह गमार-गाथा झूँठी है, ऐसे पण्डित कहे न कोय,
साँची सावन की पूनों को, पूजा हयग्रीव की होय।

२

ऋषि तरपनी नाम है याको, निरणय सिन्धु देखो लाय,
ग्रन्थ न मानें अपनी तानें, ता मूरख ते कहा बसाय।
सब त्यौहारन को राजा है, भूदेवन को यह त्यौहार,
करो श्रावणी उड़े तरमयी, बैठो पीत जनेऊ धार।

३

सुन के बाम्हन मौन भये सब, दुखिया बोल उठे दो-चार,
खीर-खाँड़ के भोजन कैसे, खाइं काल अलोनी दार।
पण्डित ऐसी राह बताओ, जो बिन महनत पावें दाम,
हम सब मिलके माल उड़ावें, जग में होय तिहारो नाम।

४

रक्षा-बन्धन के ग्रन्थन में, हमने पढ़े प्रमाण अनेक,
अपने सत्य धर्म को महिमा, को जन जाने बिना विवेक।
भय्या, मानो बात हमारी, पहले सौना पूज-पुजाय,
पाछे आछे भोजन करके घर-घर राखी बाँधो जाय।

५

प्राण पोखनी जीवन जी की, पण्डित भली बताई बात,
'बाम्हन को धन कवल भिक्षा", यामें शङ्का नाहिं समात।
जो-जो सुनी करी सब सो-सो, छके अमनियाँ लाय उधार,
धन की आस लगी धुन बाँधे, राखी बाँधन चले बजार।

६

लेउ असीस बँधावो राखी, खड़े पुकारें घेर दुकान,
घिसे दमड़िया, घिलुआ पाई कौड़ी दान करें जिजमान।
कितने बाखर में दुर बैठे, कितने रहे अटा में सोय,
'लाला' 'लाला' मची दुआरे, सो सुन शोर-सनाको होय।

७

भैया, बेटा, दादा, चाचा, जो कहि खोल द्वार घुस जाय,
जम की सूरत जानें ताकूं टारें, कौड़ी चार गहाय।
गुरू, पुरोहित, पाँडे, पाधा, मेलू मिस्सर घेरें आय,
प्राण बचाय बिचारे तिन कों कुछ-कुछ घेवर देंइ मंगाय।

८

धागाधारी धर धमकावें अक्खड़ भगड़ालू महाराज,
बड़े घरा की या चौखट पे कौड़ी देत न आवे लाज।
पुरखा-पंगति सों चलि आई मेरी मेटी मिटै न टेक,
नयौ नवाबी मैं ना लें हों दीजे डब्बल पैसा एक।

६

छह-छह कौड़ी सबसे लाये, हससे ठानी पैसा देउ,
तगा तोर कै लाला बोले, धागे धग्गड़ वापस लेउ ।
यह सुनि मिस्सर को रिस बाढ़ी, दोउ दिस होन लगी तकरार,
लाला ईंट उखारन लागे, बाम्हन फेंकी पाग उतार ।

१०

भई धड़ाधड़ धामकधूसा, लोगन कीनो बीच-बचाउ,
लाला मौन गहो गम खाओ, मानो मिस्सरजी घर जाउ ।
याको सार काढ़ गहि लीजें हम साहब से कहें पुकार,
पाठक भैया झूँठ न मानो, है सावन की साँची रार ।

टेसूराय

नाम तुम्हारा टेसूराय, भनभन भौंरा-सा भन्नाय ।
ताड़ कुडौल त्रिदंडी डील, डर-डर अण्डे डालें चील ।
रहे रूप की रेलापेल,
तागड़ दिन्ना नागर बेल ।

उलझे झाड़-झुण्ड-से बाल, मटके फोड़े मुण्ड विशाल ।
दमके लाल भाल पै खौर, चन्दे की मा ढोरे चौर ।
पोत रहे अंडी का तेल,
तागड़ दिन्ना नागर बेल ।

भृकुटी मटकें तान कमान, काटें कान खरा के कान ।
कड़ कड़डा-सी आँख निहार, कौड़ी-टैया करें जुहार ।
करो कटाकट काजल मेल,
तागड़ दिन्ना नागर बेल ।

बैठी नाक मेंड़की मार, गाल पखाल भरें फुसकार।
गुच्ची-सा मुख रोंथे पान, बघ-नख दाँतों पे कुरबान।
नकबिच्ची में परी नकेल,
तागड़ दिन्ना नागर बेल।

मीठे ओठ मरोड़े मूँछ, प्यार करे कुत्ते की पूँछ।
ठिगनी ठोड़ी लम्बी नार, हाथ करछुली के भरतार।
गलकट्टों की पड़ी हमेल,
तागड़ दिन्ना नागर बेल।

धड़ की करे केकड़ा होड़, धर साले की टाँगें तोड़।
तीन गोड़ के लूले लाल, झींझी धन को करो निहाल।
दोनों हिल-मिल खेलो खेल,
तागड़ दिन्ना नागर बेल।

नाभिकुंड में दिया जलाय, करदो दूर अलाय-बलाय।
हम सब साथी गावें गीत, हर दम होय हार की जीत।
खालो खल को खाल उचेल,
तागड़ दिन्ना नागर बेल।

ऐसी चाल चलो लमटंग, ढीला पड़े ढोंग का ढंग।
घटे महामारी का रोग, बढ़ें हमारे हाकिम लोग।
हम लोगों से भरे न जेल,
तागड़ दिन्ना नागर बेल।

ऐंठू सीख तुम्हारी सीख, हिन्दू बालक माँगें भीख।
इन बातों का मिले न मर्म, है यह बाल सनातन धर्म।
चलबे भैंसा बनजा रेल,
तागड़ दिन्ना नागर बेल।

नौ रातों का भर भंडार, हम सबने खालिया कसार।
आज पायता पूज पुजाय, पीकर पीलो टेसूराय।
शङ्कर मारो कंकड़-ढेल,
तागड़ दिन्ना नागर बेल।

भारत का भाट

१

चामुंडा रिपु, चंड, मुंड, चिक्षुर, महिषासुर,
ब्रह्मा, विष्णु, महेश, शत्रु, मधुकैटभ, मुर, पुर,
शुम्भ, निशुम्भ, हिरण्यचक्षु, वृत्तासुर, तारक,
कायाधव पितु, शंख, दशानन, कंस, प्रतारक,
सब रुद्र-रूप धारण करो, अमरासुर संग्राम हो,
रण भट्ट महाभारत रचै, उज्वल व्यास कवि नाम हो।

२

अरी चण्डो चेत-चेत सारी शक्तियां समेत,
मदमाते भूत-प्रेत करें तेरे गुण-गान।
कर कोप किलकार आँख तीसरी उघार,
ताकते ही तलवार भीरु भागें भय मान।
गिरें वैरियों के झुण्ड, फिरें रुण्ड बिन मुण्ड,
भरें शोणित से कुण्ड मचे घोर घमसान।
मद पीले गटागट्ट, गले काट कटाकट्ट
मरें पापी पटापट्ट हँसें रुद्र भगवान।

३

शंकरा सपूतों के समाज का सुधार कर,
काट दे कपूतों को कराल वेष धरले।
पुण्यशील शुद्ध परिवारों का पसार यश,
पातकी, प्रमादी पामरों के प्राण हरले।
मंगल बगार माता शूरों के समूह पर,
क्रूरों के कपाल काली कता से कतर ले।
भट्ट भले लोगों में भलाई की जगादे ज्योति,
वंचकों के शोणित से खप्पर को भर ले।

४

देव-दानवों में मार-काट मच जायगी तो,
देवता कथक्कड़ों के कूच कर जायेंगे।
देखते ही दृश्य विकराल कोरे कायरों के,
पतले पुरीष से पजामे भर जायेंगे।
जोकि हथियार भी पकड़ना न जानते हैं,
ऐसे नरसिंह बिन मारे मर जायेंगे।
भट्ट की कराल मुखी कविता को सुनते ही,
बड़े-बड़े वीर नामधारी डर जायेंगे।

५

भूसुर न भागें जामदग्न्यजी की ओर कहीं,
आगे रण-रंग की न चरचा चलाऊंगा।
ठोकरें न खाय ठाकुरों की ठकुराई फिर,
ठकुर-सुहाती रस-रीति से रिझाऊंगा।
पोले पेटवालों को न धोतियाँ धुलानी पड़ें,
गीदड़ों को गूदड़ों का बाघ न दिखाऊंगा।
बैठे रहो भट्ट के भगोड़ यजमानो अब,
छोड़के प्रसंग कुछ और ही सुनाऊँगा।

६

कालीजी की काली प्रतिमा के पग पूजा करो,
काँपो न कृपाण-चपला की चमचम से।
मार-धाड़ देखने की हुड़क बुझाया करो,
रामलीला ही की धूम-धाम धम-धम से।
राधिका,बिसाखा,ब्रजराज को रिझाया करो,
रासधारियों के छोकड़ों की छम-छम से।
तीसरा नयन फट्ट खोल देंगे भट्ट कहीं,
भोलानाथजी को न जगाना 'बम'-'बम' से।

७

राज-कर्मचारियों के सुयश बखाना करो,
खाना नहीं ठोकरें बखेड़ियों के खेलों में।
काँगरेसियों को कभी सूरत दिखाना नहीं,
नाम न लिखाना दयानन्दजी के चेलों में।
पत्रों की पुकार सुन जोश में न आना अजी,
मन्द भागियों की भाँति जाना नहीं जेलों में।
भट्ट परदेशी शिल्पकारों के खिलौने आदि,
भेजा करो भारत को ठूँस-ठूँस रेलों में।

८

बेच-बेच बूचड़ों के हाथ पोच पशुओं को,
जीवन की नाथ काट नाक में नचाओरे।
छागी,मृग,मीन,कुक्कुटादि को कुयोनियों के,
जाल से छुड़ाय खाय पेट में पचाओरे।
छीन-छीन दाम,धरा,धाम रंक ऋणियों को,
चोर, ठग, डाकुओं के डर से बचाओरे।
आओरे कृतज्ञ, कारुणिक दया-दान-वीरो,
भारत में भट्ट धूम धर्म की मचाओरे।

९

हड्डियों के योग से निखारी बतलाने वाले,
पंच पंचगव्य छूने पर भी पिलाते हैं।
खाँड मत मानो जानो खड्डी खंडहर की-सी,
'छी, छी' कर छोड़ो कड़ी क़समें दिलाते हैं।
तो भी लोग लाते हैं, गलाते हैं, गदीली कर,
मैली मनमानी कर खाते हैं, खिलाते हैं।
भट्ट भूरी दानेदार गंगाजी की रेणुका-सी,
चमकीली चीनी में अशुद्धियाँ मिलाते हैं।

१०

यों ही उपदेश फटकारो उपदेशकजी,
देश पै स्वदेशी का सुरंग चढ़ जायगा।
आदर मिलेगा महा पुण्य के पहाड़ पर,
आपकी उदारता का झण्डा गढ़ जायगा।
उद्यम की नाक में नकेल पड़ जायगी तो,
उन्नति की ऊँची ऊँटनी पै चढ़ जायगा।
पाय करनी का फल जेल में गए तो भट्ट,
तोल घट जायगो पै मोल बढ़ जायगा।

११

देवनागरी की राम रें-रें को प्रणाम कर,
बूढ़ी बोलियों का मान माथे न मढ़ावेंगे।
फ़ारिसलों फ़ारसी की छार-सी उड़ाय चुके,
उरदू के दायरे का दौर न बढ़ावेंगे।
बाप ने पढ़ी थी अब आपने पढ़ी है वही,
प्यारी राज-भाषा बाल-बच्चों को पढ़ावेंगे।
ऐसे बड़भागी भट्ट भारत की भारती को,
ऊल-ऊल उन्नति की चोटी पै चढ़ावेंगे।

१२

बूट, पतलून, कोट-पाकट में वाच पड़ी,
छज्जेदार टोपी छड़ी छतरी बगल में।
बोलें अँगरेज़ी खान-पान करें होटलों में,
साहिबी-मुसाहिबी को लाते हैं अमल में।
बाईसिकलों पै चढ़े चुरटें उड़ाते फिरें,
गोरे रंग ही की कमी पाओगे नक़ल में।
भट्ट अब ऐसे ही स्वदेशी बन जाओ सब,
देखलो नमूने नई सभ्यता के दल में।

१३

काम चापलूसी के सहारे से चलाया करो,
देखो न दिखाना लेखनी की करामातों को।
पत्र-प्रेरकों के अनुकूल किसी अङ्क में भी,
छापना न भारत की दुःख-भरी बातों को।
न्याय से अनीति के नमूने बतलाना नहीं,
पातकी, प्रमादी के प्रचण्ड पक्षपातों को।
सम्पादक लोगो, राय भट्ट की न मानोगे तो,
खाओगे कराल काल कट्टर की लातों को।

१४

अन्त लों स्वतन्त्रता की सूरत न देख पावे,
बेड़ी परतन्त्रता की पैरों में पड़ी रहे।
विद्या की सहेली सीधी सभ्यता के मारे मान,
साथ ले अविद्या को असभ्यता अड़ी रहे।
भेद के भबूके उठें वैर को बुझे न आग,
आपस की फूट सदा सामने खड़ी रहे।
संकट की मूलाधार दुलही दरिद्रता से,
आँख भट्ट भारत भिखारी की लड़ी रहे।

१५

फूट गई बाखर झरोखेदार झोंपड़ी में,
गाँजी ओढ़ सोता हूँ सराय की-सी खाट पै।
भंग की तरंग में उमंग जाग जाती है तो,
सैकड़ों कवित्त लिख लेता हूँ कपाट पै।
कोरी वाह-वाह कोई कौड़ी भी न दान करे,
सूम खड़े कविता-तरंगिनी के घाट पै
घेर रहा दारुण दरिद्र कर कोप तो भी,
देवों की दया है भारी भट्ट के ललाट पै।

१६

मिश्र महाराज विद्याबारिधि को छोड़कर,
कविता-'तुरकिनी' की 'सुन्नत' करेगा कौन?
'पूरण' 'साहित्य-हत्याकार' की कृपा के बिना,
तुक्कड़ों पै दूषणों के गट्ठर धरेगा कौन?
शंकर-से सेवक तजेंगे महाभीरुता तो,
स्वामिनी 'सरस्वती' की डाँट से डरेगा कौन?
भारत के भट्ट की भवानी रूठ जायगी तो,
भारती-भवन को भड़ौओं से भरेगा कौन?

१७

भेद मत-पन्थों के भिड़ादो भोंड़ी भिन्नता से,
कोप को कुतर्क की तुला पे तोलते रहो।
ढोंगिया ढँढोरा पीटो ढोंग के ढकोसलों का,
बाँध-बाँध गोल डामाडोल्ल डोलते रहो।
आप जिसे मानो, जानो ठीक सम्प्रदाय उसे,
औरों की निरादर से पोल खोलते रहो।
प्रेम को घटा के भट्ट वैर को बढ़ाते हुए,
हिन्द के निवासी हिन्दू हिन्दी बोलते रहो।

१८

राहत-मुसीबत के साथ किसी तौर से भी,
जिन्दगी का वक़्त पूरा करना ज़ुरूरी है।
दोज़ख में जाना बुरे फ़ेलों का नतीजा है तो,
नाक़िस मुआमलों से डरना ज़ुरूरी है।
कारामद होती हैं न कोशिश किसी की कोई,
मौत कब छोड़ती है मरना ज़ुरूरी है।
पावेगा नजात माँग शंकर ख़ुदा से दुआ,
बहरे जहाँ से भट्ट तरना ज़ुरूरी है।

शंकर-क्रन्दन

रोने को मानो, भारत-गौरव-गान :

शुद्ध सच्चिदानन्द आपको, नित्य निरञ्जन जान,
कल्पित पोल-ठोस में ठूँसा, अस्थिर जगदुत्थान । १

ज्ञान, चेतना का जड़ता का, तारतम्य पहचान,
जाना दो अज एक अजा का, मायिक भेद मिलान । २

नैसर्गिक विज्ञान-घोषणा, सुनते हैं कवि-कान,
दे जाते हैं विधि-निषेध के, रस में कविता सान । ३

अग्नि, वायु, आदित्य, अंगिरा, चार महर्षि-प्रधान,
बीज-रूप बोगए विश्व में, ब्रह्म-विवेक-विधान । ४

ब्रह्मा से लेकर जैमिनिलों, अनघ आर्य विद्वान,
वैदिक सिद्ध बने वेदों के, मन्त्र बखान-बखान । ५

शिक्षा, कल्प, निरुक्त जानता, चमका ज्योतिष-ज्ञान,
हो व्याकरण छन्द का ज्ञाता, उमगा मनु ज्यायान । ६

आयुर्वेद प्रचार-प्रयोगी, समझे रोग-निदान,
आठ प्रकार चिकित्सा चेती, वैद्य बने मति-मान । ७

धींग धनुर्वेदी भट गाजे, धीर-वीर-बलवान,
अस्त्र-शस्त्र धारे रिपुमारे, लोक-पाल प्रण ठान । ८

दिव्य नाद गान्धर्व वेद का, सुन कर्णामृत मान,
गूँजे ग्राम, ताल, स्वर, बाजे, किया राग-रस-पान । ९

जागी गरिमा शिल्प-वेद की, उमड़ा अनुसन्धान,
विरचे आविष्कृत यन्त्रों से, वोहित, यान,विमान । १०

दार्शनिकता के पाटव ने, युक्ति-शरासन तान,
तर्क-बाण से वेध लक्ष्य को, किये प्रमाण प्रदान । ११

नीति न्याय से नारि-नरों को दिया यथोचित मान,
श्रील-सभ्यता-शील साम्य ने, किये समान-समान । १२

शिष्ट सुवक्ता साधु जनों का, अनुभवात्मक भान,
करता था साहित्य-सिन्धु में, पटुता परक-स्नान । १३
कर्म सुधार धर्म का शर्मा, करते थे ध्रुव ध्यान,
क्यों न प्रजा-पालन का वर्मा, करते सदनुष्ठान । १४
बनते थे उद्यम के द्वारा, गुप्त समृद्धि-निधान,
दासों पर सुखदा सेवा की, चढ़ती थी न थकान । १५
ढोर पाल खदुआ खेती के, रूँद-खूँद खलियान,
करते थे जीवन-सामग्री, सबको दान किसान । १६
चार वर्ण आश्रम चारों में, खपता था न ख-मान,
चारों फल पाते थे सुकृती, कर पूरा प्रणिधान । १७
ऐसी उन्नति का प्रतियोगी, अवनति का बौरान,
नाचा वैदिक धर्म-क्षेत्र में, बोकर ढोंग-ढपान । १८
भूले भक्त मनोमुखता के, ऊले असदवधान,
काटे जड़धी मतवालों ने, सदुपदेश-उद्यान । १९
रोका थे हिम-शैल, सिन्धु से, दो प्राकृत व्यवधान,
तो भी करने लगे विदेशी, चोर कुयोग कुदान । २०
सेना साज राम विरही ने, कर सानुज प्रस्थान,
बण्टाढार किया रावण का, पाया सुयश महान । २१
फैली फूट, महाभारत का, हुआ घोर घमसान,
कुचला देश कृष्ण-कृष्णा ने, कर मलियामैदान । २२
जिसका नहीं बना था कोई, द्वीप-खण्ड उपमान,
हा, देखा उस आर्य देश को, शक्ति शून्य सुनसान । २३
पीने लगे प्रचण्ड प्रमादी, कौल, कुलामृत छान,
कण्टक चूर किये वीरों ने, निरख चक्र-चालान । २४
आमिष-भोजी मदिरानन्दी, मटके मस्त जवान,
हुए रण्डियों के अनुरागी, सुन-सुन टप्पे-तान । २५
जन्म हुआ पाखण्ड-प्रथा का छोड़ विवेकज ज्ञान,
भक्त सुनाते दम्भ-देव को, ठन्न ठनाठन ठान । २६

शूल कुयोग योगिनी भद्रा, खटका खेट खुटान,
उलझा जाल जन्मपत्री का, तान अबोध वितान । २७

दारा मार सिकन्दर आया, अपना कर ईरान,
लौट गया हो रुग्ण, हिन्द को कर न सका वीरान । २८

वैध अहिंसा धर्म सुझाया, धन्य बुद्ध भगवान,
ब्रह्म विशुद्ध बने विज्ञानी, शंकर महिमा मान । २६

लूट-लूट ले गया लुटेरा गज़नी का सुलतान,
तोड़े बुत फोड़े बुतखाने, कर पामाल मकान । ३०

खल की मिल्लत से गोरी ने धर पकड़ा चौहान,
मार पिथौरा को दहली का शाह बना अफगान । ३१

जाति-शत्रु, अख्यात पातकी रे जयचंद ! कुपान,
मुक्त करेगा नीच तुझे भी, क्या शिव जगदीशान । ३२

इसलामी हेकड़शाही का अटका उग्र उठान,
मार ठोकरें राजघरों का चूर किया अभिमान । ३३

रोक प्रचार देश-भाषा का, तड़की तुर्क-जबान,
फूँके ग्रन्थागार हसद ने, बाँच-बाँच कुरआन । ३४

गल्प-गपोड़ों की जय जागी, देख विनोद-विहान,
आल्हा-ऊदल के दंगल में, कूद पड़ा मलखान । ३५

घिनखोओं ने आपस में भी छिड़की छूत-छुतान,
रोटी-दाल विसार उड़ाते, पय पेड़े पकवान । ३६

दोचें भूत चुड़ेल दबोचें, पटकें प्रेत पधान,
रौंदें जाहिरपीर, जखैया, मियाँ मदार मसान । ३७

ऊलें विधवा-दल के द्रोही, पञ्च उच्च कुलवान,
गर्भ गिराते पाप कमाते, अड़ की अड़की आन । ३८

दो जोधाबाई अकबर को, उपजा मियाँ-मिलान,
धन्य बने मामा सलीम के, मान बढ़ाकर मान । ३६

क़ैद किये औरंगज़ेब ने, वालिद शाहजहान,
भाई काटे, काफ़िर कुचले, अमर किया ईमान । ४०

जीते बीते तुगलक, खिल्जी, लोदी, मुगल, पठान,
सारे ही मिल गए खाक में, खोल-खोल अरमान । ४१
माल विदेशी बेच रहे थे, जो घर-घर दूकान,
शासक-वृन्द बने वे गोरे, लाद प्रबन्ध-पलान । ४२
गरजी गोरी नौकरशाही, तान कुनीति-कमान,
मार रही है तीर त्रास के, समझी प्रजा निशान । ४३
पालें घूँस न्याय-मन्दिर के, कमरे, दर, दालान,
प्लीडर-पण्डों के पग पूजें, अपराधी यजमान । ४४
लागू टैक्स नहीं घटते हैं, घटते नहीं लगान,
घटते हैं कंगाल प्रजा के, उद्यम-वारि-वहान । ४५
जो भूखे भर-पेट न पाते, दलिया, दाल, पिसान,
दारुण शीतकाल वे काटें, बिन कन्था-परिधान । ४६
कटते हैं वे पशु बेचारे, हा, बिन जंगल दान,
पेट बने आमिष-खोरों के, जिनके कबरस्तान । ४७
खाये प्लेग—मार-फीवर ने, बदनसीब इन्सान,
जान बचाने को जंगल में बसें छवा कर छान । ४८
बिकती है जो तूल उसी के आते बुनकर थान,
परखें तीस एक के तो भी करते हैं अहसान । ४६
नोट कागज़ी देकर लेते, जीवन-प्रद सामान,
लाकर बेचें काच, खिलौने, मोटर आदि निदान । ५०
दे खिताब क्या चीज माल है, जान करें कुरबान,
पूजें गोरी गरिमा तुझ को, बढ़कर श्यामा शान । ५१
दूर बसें सम्राट हमारे, कर कोरा अनुमान,
जाँच रहे हैं राजचक्र का, नैतिक-धर्म-धसान । ५२
सारी प्रजा-झुण्ड चिड़ियों का, चाकर-चक्र शचान,
कौन करादे इन दोनों का मेल, मिटा कर म्लान । ५३
'ओडायर', 'डायर' ने जाना, जिसको दमन-स्थान,
तारे शोक-सिन्धु से हमको, वही बाग़ 'जलयान'। ५४

मान घटाना भूत काल का, वर्त्तमान अपमान,
क्या भविष्य का पेट भरेगा सर्वनाश अवसान । ५५

जननी हुई हिन्दुओं की तू, बनकर हिन्दुस्तान,
बदले नाम इंडिया तेरा, है किसका इमकान । ५६

जन्म-भूमि तू उपजाती थी, शूर, स्वतन्त्र, सुजान,
होजा बाँझ जने मत माता, हीज, गुलाम, अजान । ५७

श्रीमुनि दयानन्द का बाजा, सर्व-सुधार निसान,
त्यागा ऊँचे तिलक-न्याय ने, कूट कुनीति निचान । ५८

उतरे हैं गाँधीजी अगुआ, खा परहित का पान,
क्या न करेगी राय आपकी मुशकिल को आसान । ५९

जागा क्षुब्ध राष्ट्र-सागर में, असहयोग-तूफान,
जनता में जातीय जोश के उठने लगे उफान । ६०

हो प्रताप, गोविन्द, शिवाजी, श्रीरणजीत समान,
खोज मिटादे पारतन्त्र्य का, उठ सदार्य सन्तान । ६१

शंकर देखा काल-पखेरू, दिखला रहा उड़ान,
बचे न जीवनधारी दाने, चुगे चतुर, नादान । ६२

रोने को मानो, भारत-गौरव-गान ।

भारतमाता का निरीक्षण

निहारे मैंने, अपने आप निहारे ।

नैसर्गिक शिक्षा-पद्धति के, पाठ-प्रसंग विसारे,
युक्ति-प्रमाणहीन गप्पों को उगल गपोड़े मारे । १

पन्थ चलाये मतवालों ने निज-निज न्यारे-न्यारे,
कौन कहे इन फुट्टैलों से करते हो तुम क्यारे । २

जाति-पाँति के भेद-भाव ने छोड़ अछूत छुतारे,
सामाजिक उन्नति-देवी के मन्दिर, दुर्ग उदारे। ३
धर्माधार जान जनता ने जिनपै जीवन वारे,
हठवादी बुद्धू वे विधि ने यम के दूत उतारे। ४
दाराहीन हुए व्यभिचारी, रसिया रँडुआ क्वारे,
भीख माँगते मस्त मुचण्डे घेर-घेर घर-द्वारे। ५
बाल-व्याह ने ब्रह्मचर्य के कच्चे कुम्हड़ बनारे,
बोध-विहीन बालिकाओं को, वरते हैं वर बारे। ६
कट्टर कट्टू काट रहे हैं, खटकें छुरे-कटारे,
धेनु आदि पशुओं की रक्षा कर गोपाल मुरारे। ७
निगलें लूटं लुटेरे डाकू, ठगिया चोर लठारे,
खेलें जुआ सटाकर सट्टे ज्वारी, मुखर मुखारे। ८
मादकता-सिंहनी दहाड़ी दुर्गुण-गज चिंघारे,
प्रतिभा-गाय डरी ले भागी, बोध-विचार लबारे। ९
चाँडू चन्द, गँजेड़ी, चरसी, मदकी मत्त मुछारे,
ताड़ी मदिरा भंग गटकू, खा अहिफेन मठारे। १०
भक्त भद्र-मुख तम्बाकू के, बुदरा छैल छरारे,
फुक्कड़ थुक्कड़ सूँघा घूमे, कर चुन्धे चखतारे। ११
तुक्कड़ गितुआ गाजें-बाजें ढोलक चंग चिकारे,
क्या कविता संगीत-कला के रक्षक स्वर्ग सिधारे। १२
बाँट उधार व्याजखोरों ने वित्त-विलास बगारे,
चूँसें रक्त रंक ऋणियों का, भज कल्दार करारे। १३
काम स्वदेशी से न चलाते, ठग लालच के मारे,
माल बिदेशी बेच रहे हैं, खोलें कपट-पिटारे। १४
दे-देकर अन्नादि उचक्के, परदेशी उपकारे,
ले-ले मोटर, वाच, खिलौने, खीँख-झींख झखमारे। १५
अभियोगों के इन्द्रजाल में उलझे झुण्ड जुझारे,
न्याय-नीति के नेग चुकाते, हारजीत के हारे। १६

नैतिक सुदाचार सिन्धु से चाकर तारनहारे,
तारे धनद घूँस खौओं ने, अनदेवा न उबारे। १७
लीडर-पटवारी वीरों में, पुलिस मैन फुंकारे,
धनदा धमकी से धींगों ने, बिगड़े ढंग सुधारे। १८
राय बहादुरादि शब्दों पै, रगड़े नाम निखारे,
नामानन्दी गर्व गगन में चमके पुच्छलतारे। १९
हाय, विदेशी हथकण्डों ने, धार कृपाण दुधारे,
भारत-रक्षक व्यापारी के रीते उदर निदारे। २०
हा, हा जिन दरिद्र गोरों ने देश-विदेश मझारे,
बन बैठे सम्राट हिन्द के, वे बढ़िया बनजारे। २१
गोरी गरिमा ने गौरव के उलटे अक्ष उघारे,
नङ्गों पर नौकरशाही ने, लाद दिये कर भारे। २२
शासन-शैली ने दुभाँति के, भाव शुभाशुभ धारे,
ज्योति-भरी कज्जल अँखियों में, फोड़े दृग कजरारे। २३
महाराज नव्वाब नकीले, सेठ रईस तुँदारे,
पूज-पूज गोरी प्रभुता को निरखे नीति-नबारे। २४
खोल-खोल मेशीनगनों के, ज्वालाजनक मुहारे,
ओडायर, डायर के हूले हेकड़ भट हुंकारे। २५
जलियाँवाला में जनता पै पटके उग्र अँगारे,
आग बुझाने को शोणित के, चलने लगे पनारे। २६
अत्याचार तिलक ने देखे उचित मन्त्र उच्चारे,
हिंसाहीन सदय गाँधी ने, शूर सहिष्णु उभारे। २७
साधु असहयोगी दुष्टों ने समझे व्याल विसारे,
पकड़े ठूँस दिये जेलों में, मेरे परम दुलारे। २८
धन्य लार्ड रीडिंग धर्म की ध्रुवता धार पधारे,
गोरों के गुलाम अपनाये, देशभक्त फटकारे। २९
शंकर हैं मुझ मा के जाये, ललना लाल दुखारे,
करदे दीनानाथ सबों को, सौंप स्वराज्य सुखारे। ३०

वसन्त-विकास

छवि ऋतुराज की रे,
अपनी ओर निहार, निहारो।

घटती हैं घड़ियाँ रजनी की बढ़ता है दिन-मान,
सकुचेगी इस भाँति अविद्या विकसेगा गुरु-ज्ञान।
कर पतझाड़ चढ़ी पेड़ों पै हरियाली भरपूर,
यों अवनति को उन्नति द्वारा अब तो करदो दूर।
छदन, बेल, वृक्षों पर छाये रहे अपर्ण करील,
मन्द सुअवसर पाले तो भी, बने न वैभवशील।
उलहे गुल्म-लता, तरु सारे अंकुर कोमलकाय,
जैसे न्याय-परायण नृप की प्रजा बढ़े सुख पाय।
हार हरे कर दिये वसन्ती सरसों ने सब खेत,
मानो सुमति मिली सम्पति से धर्म-सुकर्म समेत।
मधुर रसीले फल देने को बौरे सघन रसाल,
जैसे सकल सुलक्षण धारें होनहार कुल-पाल।
बिगड़े फुलबुन्दे कदम्ब के कलियानी कचनार,
बन बैठे धनहीन धनी यों निर्धन कमलाधार।
धौरे सुमन सुगन्धित धारें सदल सेवती-सेव,
मानो शुद्ध सुयश दरसानें हिलमिल देवी-देव।
गेंदा खिले कुसुम कमरिया पाटल-पुष्प अनूप,
किंवा सहित समाज विराजे बुध-मंत्री, गुरु-भूप।
फूल रहे सर में रस बाँटें उपकारी अरविन्द,
दान पाय गुण-गण गाते हैं, याचक-वृन्द-मिलिन्द।
फूले मसि-मिश्रित अरुणारे किंशुक सौरभहीन,
विचरें यथा असाधु रँगीले ज्ञानशून्य तन पीन।

अरुण फूल फूले सेमर के प्रकट कोश गम्भीर,
क्या लोहित मणि की कुलियों में माँग रहे मधु वीर।
बढ़-बढ़ गए सत्यानाशी के विकसे कण्टक धार,
किंवा विशद वेष कटुभाषी वञ्चक करें विहार।
सुमन, मंजरी बरसाते हैं, वन, बीहड़, आराम,
क्या शर मार-मार रसिकों से अटक रहा है काम।
पुष्प-पराग सुगन्ध उड़ाता शीतल, मन्द समीर,
यों सब को सुख पहुँचाता है, धर्मधुरन्धर धीर।
कोकिल कूँजें, मधुकर गूँजें, बोलें विविध विहंग,
क्या मिल रहे साम-गायन से मुरली, वेणु, मृदंग।
त्याग विरोध मिले समता से सरदी और निदाघ,
वैर विसार तपोवन में ज्यों साथ रहैं मृग-बाघ।
रसिक शत्रु वासन्ती विधि का करते हैं अपमान,
ज्यों रस-भाव-भरी कविता को सुनते नहीं अजान।
भर देता है भारत-भर में मधु आनन्द-उमङ्ग,
भंग पिला कर शंकर का भी करडाला व्रत-भंग।

सूर्य-ग्रहण पर अन्योक्ति

रे रजनीश, निरंकुश तूने दिननायक का ग्रास किया,
नेक न धूप रही धरणी पै घोर तिमिर ने वास किया।
जिसको पाय चमकता था तू अधम, उसी को रोक रहा,
धिक, पापिष्ठ कृतघ्न कलंकी तेज त्याग तम पास किया।
मन्द हुआ सुन्दर मुख तेरा छिटकी छवि तारा-गण की,
अपने आप जाति में अपना क्यों इतना उपहास किया।
जुगुनू जाग उठे जंगल में दिये नगर में जलवाये,
मूँद महा महिमा महान की अणु का तुच्छ विकास किया।

मंगल मान निशाचर सारे चरते और विचरते हैं,
दिन को रूप दिया रजनी का देव-समाज उदास किया।
उष्ण प्रभा बिन वन-पुष्पों से सार सुगन्ध न कढ़ते हैं,
रोक चाल नैसर्गिक विधि की, दिव्य हवन का ह्रास किया।
चकित चकोर चाह के चेरे चिनगी चुगते फिरते हैं,
मुख, पग, पंख, जलाने वाला ज्वलित चन्द्रिकाभास किया।
श्वान, शृगाल, उलूक पुकारे सकुचे कंज, कुमोद खिले,
जोड़-तोड़ चकई-चकवों के, खण्डित प्रेम-विलास किया।
दिन में चुगने वाली चिड़ियाँ हा, अब कहीं न उड़ती हैं,
सब के उद्यम हरने वाला सिद्ध तामसिक त्रास किया।
नाम सुधाकर है पर तेरी लघुता विष बरसाती है
विरहानल को भड़काने का अति निन्दित अभ्यास किया।
बढ़-बढ़ कर पूरा होता है घटता-घटता छिपता है,
यों उन्नति, अवनति के द्वारा पक्ष-भेद प्रति मास किया।
तेरी आड़ हटाकर निकली कोर प्रचण्ड प्रभाकर की,
फिर दिन का दिन हो जावेगा, हट, क्यों वृथा प्रयास किया।
दिव्य उजाला देकर तुझ को परसों फिर चमकावेगा,
कह दे कब सविता स्वामी ने श्रीहत अपना दास किया।
शंकर के मस्तक पर तेरा अविचल वास बताते हैं,
पौराणिक पुरुषों ने इस पर सदा अटल विश्वास किया।

पितर-पचीसी

१

उपजावे, धारे, संहारे करे एक जो तीनों काम,
उस जगदम्बा की सेवा में सब से पहले करो प्रणाम।
सीस नवाओ सुर-सन्तों को गुरु लोगों के पूजो पाय,
पौराणिक पितरों की आल्हा, आओ, गाओ ढोल बजाय।

२

यारो, इन कड़कों में छेड़ो झूठ-सत्य की मीठी मार,
आपस में रण-रोप चलाओ कोरी बातों की तलवार।
हाँ, हठधारी मतवालों के वाद-विवाद भिड़ें भय खोय,
किसका पक्ष पीठ दिखलावे, देखें जीत कौन की होय।

३

भादों में पिछली चौदस को आया मनभाया त्यौहार,
उमगे धर्मवीर व्रतधारी, सब के उर आनन्द अपार।
बन्धन बाँधे भुजदण्डों में दे-दे कर विप्रों को दान,
भक्तिशील भावुक भक्तों ने पूजे श्री अनन्त भगवान।

४

दिन बीता देवाराधन में, रात बिताई हरि-गुण गाय,
उठ प्रभात पूरनमासी को, करी अष्टिका वन में जाय।
आया क्वार पक्ष पितरों का जिसका ठीक महालय नाम,
होने लगी मरों की पूजा, जीता जीतों ने सुर-धाम।

५

चन्दन, धूप, दीप, कुशपुञ्जे, यव, तिल, तण्डुल, निर्मल तोय,
इनसे पूजन करं प्रतापी, प्यारी स्वधा स्वधा धुनि होय।
आवाहन तरपण के पीछे कर परिवेषण पिण्ड-प्रदान,
पितरों के प्रतनिधि विप्रों को देने लगे भोज यजमान।

६

साधु विवेकी विद्वानों का किया सज्जनों ने सत्कार,
कर्महीन कोरे लण्ठों को माल खिलाने लगे गमार।
छोड़ी छाँट खरे-खोटों की एक ही भाव बिके सब धान,
सच है कौन कहाय कुचाली करे कुदेवों का अपमान।

७

पूड़ी, गरमागरम, कचौड़ी, मेवा, बाटी, मठरी, ठौर,
लड्डू, पेड़े, सोहनहलुआ, बूँदी, बरफी, खुरचन और—
पेठा-पाक, जलेबी, खुरमा, खाजा, खजला, मोहनभोग,
गुपचुप, गूँझे, घेबर, गट्टे, भूदेवों के भोजन योग।

८

छाक, ढारमा, डौठी, मट्ठे, सेब, सँबोसे, पूप, सुहार,
पापड़, दाल-मोठ, मिरचोनी, शाक, मुरब्बे, लौंज, अचार।
चटनी, कचरी, सोंठ, पकौड़ी, दही, रायता, रबड़ी, खीर,
परसें व्यञ्जन भाँति-भाँति के मीठा ठंडा निर्मल नीर।

९

पो-पी भंग महीसुर सारे छकें छकाछक भोजन पाय,
बिरले सूखे सीधे माँगें छुआछूत की छाप लगाय।
वायु-वेप घर-घर धरणी पे विचरें पितरों के समुदाय,
तृप्त करें अवनीसुर सबको यों मनमाने माल उड़ाय।

१०

भूखे-प्यासे भिखमंगों को, भोजन-पान मिले सब ठौर,
काढ़े ग्रास गऊ माता के, कूकुर-कौर और कागौर।
जो कुल-दीपक जाय गया में, देकर पिण्ड करें जल-दान,
उनके पितर महा सुख भोगें, कर फलगू का पानी पान।

११

जूठे दोने पत्तल चाटें, नाचें, नरक-निवासी नीच,
दाता उनके मन्द मुखों में नीर निचोड़ें धोती फींच।
सब नर-नारि नाक-नरकों से अपने-अपने कुल में आय,
करें बड़ाई वंशधरों की, आदर पाय अघाय-अघाय।

१२

भारत में इस भाँति मचादी चारों ओर धर्म की धूम,
करनी देख दानवीरों की सकुचे एक सगाज़ी सूम।
चूस लिये चिन्ता-चण्डी ने मन में हुआ महा सन्ताप,
देश-दशा पर कोप-कहानी कहने लगे आप ही आप।

१३

ये भोले भाई करते हैं नाहक निरे निकम्मे काम,
माल खिलाते हैं सण्डों को ले-लेकर मुरदों के नाम।
कभी नहीं कुछ खा-पी सकता, जीव रहे जो बिला वजूद,
तो भी ये नादान कमाई मुफ्त लुटाते हैं बेसूद।

१४

भूले वैदिक धर्म-कर्म को छोड़ सुपन्थ हुए गुमराह,
हिन्दू कहते हैं अपने को अपने आप वाहजी वाह!
अपनी-अपनी सब गाते हैं, गाल बजाय बेतुकी तान,
सुनकर हँसते हैं, रोते हैं, होकर होशमन्द हैरान।

१५

छूटें पापों के फन्दे से तो इन सब का होय सुधार,
क्या यह काम ग़ैर मुमकिन है, नही वलेकिन है दुशवार।
झगड़ा-टंटा साफ करेंगे, छुआछूत से पिंड छुड़ाय,
बेबुनियाद कनागत की हाँ, कल ही देंगे धूल उड़ाय।

१६

दुनिया के मतवालों में से किसी-किसी कट्टर को छोड़,
कोई कहीं नहीं निकलेगा दामनगीर हमारा जोड़।
तत्व जानते हैं दुनिया का हम से भला भिड़ेगा कौन,
तर्क हमारे तीखे सुन कर हो जायेंगे मोधू मौन।

१७

दिल की दहशत नहीं छुड़ाते जो श्रीस्वामीजी मरहूम,
तो हम हरगिज काट न सकते फ़ीले मज़ाहिब की ख़ुरतूम।
हम सब सामाजिक रखते हैं वेद मुक़द्दस पर ईमान,
पोल पुराणों की खोलेंगे क्या इञ्जील और कुरआन।

१८

खण्डन की तलवार चलेगी पोप करेंगे हाहाकार,
ऐसी डींग मार पलका पै पौढ़े वैदिक धर्माधार।
सपने की दुनिया में पहुँचे, धीर, वीर, ज्ञानी गम्भीर,
अंग-अंग व्याकुल पितरों का जाता देखा कुण्ड अधीर।

१९

थोड़ी देर खड़े उस दल को देखा किए महोदय मौन,
फिर कर जोड़ नमस्ते करके पूछा—आप लोग हैं कौन ?
वीर वंश-भूषण की वाणी सुन कर सब ने किया विलाप,
कह कर बार-बार बड़भागी, बोले बाबूजी के बाप।

२०

वैदिक लाल निहारो अपने पौराणिक पितरों की ओर,
रौंद रहा है हम दीनों को हाय, तुम्हारा कुमत कठोर।
सुनते ही घुन्नाकर दौड़े, फड़का हण्टर-धारी हाथ,
पास जाय पहचान पिता को बोले भक्ति-भाव के साथ।

२१

क्यों रोते हैं आप और ये लोग उड़ाते हैं क्यों खाक,
क्यों फिरते हैं बदहवास, क्यों लाग़िर हैं सब के तन पाक।
कहा पिता ने जब से तुम ने खोली पोप-जाल की पोल,
तब से हम सब डोल रहे हैं भूखे-प्यासे डामाडोल।

२२

कहा समाजी ने यों, जिसको जाने था मैं महज़ फ़िज़ूल,
आज पिताजी उस मसले में निकली स्वामीजी की भूल।
कल ही से दिल खोल करूंगा सब की ख़ातिर-ख़िदमत खूब,
जो पितरों को पिण्ड न देगा उस को मानूँगा मायूब।

२३

बिगड़े सामाजिक लोगों पै उपजी घृणा लगाये दोष,
सुनकर कुल-सपूत की बातें आया पितरों को सन्तोष।
तड़का होते ही वनिता ने वैदिक वल्लभ दिए जगाय,
उठते ही पिय ने सपने पै मारी धार कलंक लगाय।

२४

ठौर-ठौर रजनी की गाथा गाते डोले कर उपहास,
भूखे-प्यासे मार भगाए दिया न उन मुरदों को ग्रास।
भारत की उन्नति करने को उपजा गौरवशील समाज,
वैदिक वीरों से डरता है हार मान कर कलियुगराज।

२५

घास-माँस के खौआ जूझें आपस में भी वैर बढ़ाय,
स्वामीजी ने ये बड़भागी भले सुधारे वेद पढ़ाय।
आओ, हिल-मिल हिन्दू भाई पूजो इन सब के पद-कञ्ज,
न्योता दो उस शंकर को भी जिस का ग्राम हरदुआगंज।

काल का वार्षिक विलास

१

सविता के सब ओर मही माता चकराती है,
घूम-घूम दिन, रात, महीना, वर्ष बनाती है,
कल्प लों अन्त न आता है।
हा, इस अस्थिर काल-चक्र में जीवन जाता है।

२

छोड़ छदन प्राचीन, नये दल वृक्षों ने धारे,
देख विनाश, विकाश, रूप, रूपक न्यारे-न्यारे,
दुरंगी चैत दिखाता है,
हा, इस अस्थिर काल-चक्र में जीवन जाता है।

३

सूख गये सब खेत सुखादी सारी हरियाली,
गहरी तीत निचोड़ मेदिनी रूखी कर डाली,
धूल वैशाख उड़ाता है,
हा, इस अस्थिर काल-चक्र में जीवन जाता है।

४

झील, सरोवर फूँक, पजारे नदियों के सोते,
व्याकुल फिरें कुरंग प्राण मृगतृष्णा पै खोते,
जलों को जेठ जलाता है,
हा, इस अस्थिर काल-चक्र में जीवन जाता है।

५

दामिनि को दमकाय दहाड़े धाराधर धाये,
मारुत ने झकझोर झुकाये झूमे झर लाये,
लगी आषाढ़ बुझाता है,
हा, इस अस्थिर काल-चक्र में जीवन जाता है।

६

गुल्म, लता, तरु-पुञ्ज अनूठे दृश्य दिखाते हैं,
बरसे मेह विहंग विलासी मंगल गाते हैं,
झुलाता श्रावण भाता है,
हा, इस अस्थिर काल-चक्र में जीवन जाता है।

७

उपजे जन्तु अनेक झिलारे झील, नदी, नाले,
भेद मिटा दिन-रात एक-से दोनों कर डाले,
मघा भादों बरसाता है,
हा, इस अस्थिर काल-चक्र में जीवन जाता है।

८

फूल गये सर काँस बुढ़ापा पावस पै छाया,
खिलने लगी कपास शीत का शत्रु हाथ आया,
कृषी को क्वार पकाता है,
हा, इस अस्थिर काल-चक्र में जीवन जाता है।

९

शुद्ध हुए जलवायु खुला आकाश खिले तारे,
बोये विविध अनाज उगे अंकुर प्यारे-प्यारे,
दिवाली कातिक लाता है,
हा, इस अस्थिर काल-चक्र में जीवन जाता है।

अरण्यरोदन

अभागे जीते हैं, पुरुष बड़भागी मर गये,
भरे भी रीते हैं, घर-नगर सूने कर गये।
प्रतिष्ठा खोने को, पतित कुल हा जीवन धरे,
हमारे रोने को, सुन कर कृपा शंकर करे।

कुचालों ने मारे, मनुज मतवाले कर दिये,
कुपन्थों में सारे, बिकट कटुभाषी भर दिये।
हठीले होने को, हठ न अगुओं की मति हरे,
हमारे रोने को, सुन कर कृपा शंकर करे।

दुराचारी दंडी, जटिल जड़ मुंडे मुनि घने,
प्रमादी पाखंडी, अबुध-गण गुंडे गुरु बने।
अविद्या ढोने को, विषय-रस का रेवड़ चरे,
हमारे रोने को, सुन कर कृपा शंकर करे।

विरोधी राजा के, छल कर प्रजा का धन हरें,
घिनोने पापों से, वधिक नर-घाती कब डरें।
मलों के धोने को, सुकृत-घन पुण्योदक धरे,
हमारे रोने को, सुन कर कृपा शंकर करे।

क्षुधा हत्यारी ने, उरग-इव नारी-नर डसे,
मसोसे मारी ने, चटपट बिचारे चल बसे।
सदा के सोने को, अब न दुखियों का दल मरे,
हमारे रोने को, सुन कर कृपा शंकर करे।

बनी को रो बैठे, बिगड़ सुख के साधन गये,
सुधी श्री खो बैठे, धन बिन भिखारी बन गये।
न काँटे बोने को, कुमति कुटिलों में भ्रम भरे,
हमारे रोने को, सुन कर कृपा शंकर करे।

बलिदान-गान

शंकर के प्यारे उठो, उन्नति का प्रण ठान,
लो स्वराज्य-स्वातन्त्र्य को, दो जीवन-बलिदान ।

१

देशभक्त वीरो, मरने से नेक नहीं डरना होगा,
प्राणों का बलिदान देश की वेदी पर करना होगा।
लोकमान्य गुरु गाँधीजी का प्रेम-मन्त्र पढ़ना होगा,
साथ सत्यधारी अगुओं के अब आगे बढ़ना होगा।
नौकरशाही के कुचक्र से जोड़-तोड़ कढ़ना होगा,
लाँघ नीचता को उन्नति की चोटी पर चढ़ना होगा।
अत्याचार अगाध सिन्धु को गर्त मान तरना होगा,
प्राणों का बलिदान देश की वेदी पर करना होगा।

२

सिंहो, सत्यामृत-प्रवाह में गोल बाँध बहना होगा,
पोल खोल खोटे कुराज्य की दुश्शासन कहना होगा।
पशुबल ठेलेगा जेलों में वर्षों तक रहना होगा,
मार खाय निर्दय दुष्टों की घोर कष्ट सहना होगा।
जाति जीवनाधार रक्त से कर्म-कुण्ड भरना होगा,
प्राणों का बलिदान देश की वेदी पर करना होगा।

३

समता की प्यारी पद्धति पै निर्विराम चलना होगा,
शुद्ध भावना की विभूति को अंगों पर मलना होगा।
ध्रुवता के आतंक-ताप से धातु-तुल्य गलना होगा,
सुदृढ़ सचाई के साँचे में निर्मल हो ढलना होगा।
इष्टदेव स्वातन्त्र्य ध्येय का धन्य ध्यान धरना होगा,
प्राणों का बलिदान देश की वेदी पर करना होगा।

४

कुटिला कूटनीति के आगे हेकड़ हो अड़ना होगा,
होकर हिंसाहीन न्याय के पीछे चल पड़ना होगा।
अधम आततायी हत्यारे असुरों से लड़ना होगा,
ले सुकर्म-कोड़ा कुचाल के कूल्हू पै जड़ना होगा।
शंकर यों 'भारत-माता' का ह्रास-त्रास हरना होगा,
प्राणों का बलिदान देश की वेदी पर करना होगा।

हाय मिस्टर गोखले !

शङ्कर-सत्ता में टिका, लोक प्रपञ्च-प्रकाश,
सारे वस्तु-विकास में, विचरे विश्व-विनाश।

छोड़ भारत को सिधारे हाय मिस्टर गोखले,
चल बसे प्यारे हमारे हाय मिस्टर गोखले।

आप तो आनन्दघन से मुक्त होकर जा मिले,
हम यहाँ रोते बिसारे हाय मिस्टर गोखले।

बन्ध से तन त्याग छूटे पर हमारे ध्यान से,
अन्त तक होगे न न्यारे हाय मिस्टर गोखले।

क्या चिकित्सा कर किसी ने अंक उलटे आयु के,
रो गये गदहा विचारे हाय मिस्टर गोखले।

नाश का नाटक दिखाया आप अभिनेता बने,
अन्त के परदे उघारे हाय मिस्टर गोखले।

चूड़ियाँ फोड़ीं विनय की, काट करुणा की लटें,
नीति के नूपुर उतारे हाय मिस्टर गोखले।

जन्म-जगती पै दया के पुष्प बरसाते रहे,
आज बरसाये अँगारे हाय मिस्टर गोखले।

नीति-विद्या के भवन का दिव्य दीप बुझा दिया,
क्या किया विधि के दुलारे हाय मिस्टर गोखले ।
नाम यश जीते रहेंगे कल्पलों इस लोक में,
ले गये गुण सङ्ग सारे हाय मिस्टर गोखले ।
लोक-प्रिय संकल्प सारे जो न दृढ़ता से डिगे,
वे कहाँ जाकर प्रचारे हाय मिस्टर गोखले ।
सिद्ध रानाडे सदय ने साथ लेकर आपको,
क्या कुयोगी सुर सुधारे हाय मिस्टर गोखले ।
देश-भक्ति न भूलते थे सुख प्रजा का इष्ट था,
देश-हित पै प्राण वारे हाय मिस्टर गोखले ।
धन बटोरा और भेजा बन्धु-बँधुओं के लिये,
उपनिवेशों में पधारे हाय मिस्टर गोखले ।
लोक-लीडर मानते हैं दान देकर मान का,
गुरुजनों के प्राण प्यारे हाय मिस्टर गोखले ।
सर्व-सद्गुण-शीलता से विश्व-विश्रुत हो गये,
खोल पटुता के पिटारे हाय मिस्टर गोखले ।
शुद्ध ज्ञानागार जिसमें भाव प्रतिभा के भरे,
झोल-झंझट के मंझारे हाय मिस्टर गोखले ।
टिप्पनी-टीका-तिलक से सूत्र समझे न्याय के,
ज्ञान के गुटके विचारे हाय मिस्टर गोखले ।
पद्य पढ़ साहित्य सीखे साध स्वर संगीत के,
मन्द मद के मान मारे हाय मिस्टर गोखले ।
दक्षिणी पगड़ी दुपट्टा धार कर पोशाक पै,
सभ्य बनते थे छरारे हाय मिस्टर गोखले ।
ज्यौतिषी गणितज्ञ पूरे गिन लिए आकाश के,
वेध से रवि-चन्द्र-तारे हाय मिस्टर गोखले ।
बोलियाँ अपनी-विरानी बोलते-सुनते रहे,
लेख लिखते थे करारे हाय मिस्टर गोखले ।

काटते थे जो कपट का कूटपन वे आपके,
तर्क थे पट्टस दुधारे हाय मिस्टर गोखले।
भूल के मत-भेद सारे मोह के मल से सने,
बोध-वारिधि में पखारे हाय मिस्टर गोखले।
फूट के फल-फूल फूँके काट दी जड़ वैर की,
प्रेम के पल्लव पसारे हाय मिस्टर गोखले।
धर्म-धन की की कमाई साथ निर्धनता रही,
वृन्द विघ्नों के बिदारे हाय मिस्टर गोखले।
देश को विज्ञान-बल के दृश्य दिखलाते रहे,
खेल अब सारे बिचारे हाय मिस्टर गोखले।
राज-पुरुषों से कहेगा कौन भारत की व्यथा,
मिटगये सारे सहारे हाय मिस्टर गोखले।
जन्म रोरो कर बिताना मात्र जिनका काम है,
वे नहीं हँसते निहारे हाय मिस्टर गोखले।
पार करना चाहते थे दुःख-सागर से जिन्हें,
वे अभागे क्यों न तारे, हाय मिस्टर गोखले।
भाग्य से परतत्रता के भाड़ में जो भुन रहे,
वे न संकट से उबारे हाय मिस्टर गोखले।
शोक-सूचक तार दौड़े विश्व पै बिजली गिरी,
वेदना ने उर बिदारे हाय मिस्टर गोखले।
जैन, ईसाई, मुसलमाँ, बौद्ध, वैदिक, पारसी,
अन्य सब रोरो पुकारे हाय मिस्टर गोखले।
डूबते हैं बस वियोगी उस व्यथा के सिन्धु में,
दूर हैं जिसके किनारे हाय मिस्टर गोखले।
देश के सेवक बनाये जो सभासद साहसी,
वे हुए बलहीन हारे हाय मिस्टर गोखले।

साथ अरथी के सहस्त्रों नागरिक रोते चले,
धर चिता में हा, पजारे हाय मिस्टर गोखले।
होगया नर-मेघ पूरा, राख शङ्कर की रही,
फूल गङ्गा पर बगारे हाय मिस्टर गोखले।

दोहा

मास फाल्गुन पञ्चमी, शुक्ल पक्ष भृगु वार,
सवद्भू-ऋषि-अङ्क-भू, निधन-काल निर्धार।

हमारा हास

१

प्रभु शङ्कर, मोह-शोक-हारी, यम, रुद्र, त्रिशूल शक्तिधारी।
टुक देख, दयालु, न्यायकारी, गत-गौरव दुर्दशा हमारी।
जिस को सब देश जानते थे, अपना सिरमौर मानते थे।
जिस ने जग जीत मान पाया, अगुआ नव खण्ड का कहाया।

२

पहला युग पुण्य-कर्म का था, सुविचार प्रचार धर्म का था।
जिस के यश की प्रतीक पाई, हरिचन्द नरेश की सचाई।
उपजा युग दूसरा प्रतापी, प्रकटे व्रतशील और पापी।
जिस की सुप्रसिद्ध रीति जानी, समझी रघुनाथ की कहानी।

३

कर द्वापर कृष्ण को बड़ाई, रच भेद भिड़ा गया लड़ाई।
अपना बल आप ही घटाया, छल का फल सर्वनाश पाया।
जब से कलि-काल कोप आया, तब से भरपूर पाप छाया।
कुल-कण्टक प्राण ले रहे हैं, ठग दारुण दुःख दे रहे हैं।

४

मुनिराज मिलें न सिद्ध-योगी, अवनीश रहे न राज-भोगी।
सब उद्यम खोगये हमारे, शुभ साधन सोगये हमारे।
सुविचार, विवेक, धर्मनिष्ठा, प्रण-पालन प्रेम की प्रतिष्ठा।
बल, वित्त, सुधार, सत्य-सत्ता, सब को विष दे मरी महत्ता।

५

तज वैदिक धर्म धीरता को, भटकें भट विश्ववीरता को।
निधि निर्मल न्याय की न भावे, सुविधा न सुधार की सुहावे।
अनमोल असंख्य ग्रन्थ खोये, बन भायिक वेद भी बिगोये।
इतिहास मिलें नहीं पुराने, अनुकूल नवीन तंत्र माने।

६

व्रतशील सुबोध हैं न शर्म्मा, रण रोप लड़ें न वीर वर्म्मा।
धन-राशि न गुप्त गाढ़ते हैं, गुरु-भाव न दास काढ़ते हैं।
निगमागम छान-बीन छोड़े, उपदेश बना दिये गपोड़े।
अब जो विधि जाति में भरी है, उस की जड़ श्री बिरादरी है।

७

भ्रम-भेद-भरी पवित्रता है, छल से भरपूर मित्रता है।
मन-गेह घने घमण्ड का है, डर केवल राज-दण्ड का है।
मत-भेद पसार फूट फैली, बिन मेल रही न एक शैली।
सुख-भोग भगाय रोग जागे, पकड़े अघ-ओघ ने अभागे।

८

उपदेशक लोग लूटते हैं, कटु भाषण-बाण छूटते हैं।
हित-साधन हा न सूझते हैं, जड़ जाल पसार जूझते हैं।
कच लम्पट पेट के पुजारी, विषयी बन बाल ब्रह्मचारी।
मुख से सब 'सोहमस्मि' बोलें, तन धार अनेक ब्रह्म डोलें।

९

वह योग-समाधि सिद्धि-धारी, वह जीवन-वेद रोगहारी।
समझें जिन के न अङ्ग पूरे, अब साधु गदारि हैं अधूरे।
विचरें बन ज्योतिषी भरारे, चमकें भ्रम-जाल-जन्य तारे।
उतरे ग्रह-वेध की नली में, अटके अब जन्म-कुण्डली में।

१०

कविराज समाज में न बोलें, धनहीन सुधी उदास डोलें।
गुण-ग्राहक कल्पवृक्ष सूखे, भटकें भट, शिल्पकार भूखे।
समझे तन-भार भूषणों को, दमके दमकाय दूषणों को।
कविता रस-भाव तोल त्यागे, हलकाय कहीं न और आगे।

११

बिरले ध्रुव धर्म धारते हैं, शुभ कर्म नहीं बिसारते हैं।
तरसें वह वीर रोटियों को, चिथड़े न मिलें लँगोटियों को।
बलहीन अबोध बाल-बच्चे, करतूत विचार के न सच्चे।
डरपोक सुधार क्या करेंगे, लघु जीवन भोगते मरेंगे।

१२

बल व्याकरणीय वाद को है, फिर न्याय नृसिंह-नाद को है।
अभिमान-मढ़ी उपाधि पाई, अब शेष रही न पण्डिताई।
बुध शिक्षक दो प्रकार के हैं, अवतार परोपकार के हैं।
उपहार करे प्रदान शिक्षा, बस, वेतन और धर्म-भिक्षा।

१३

समझे, पढ़ अंक, बीज, रेखा, फल भिन्न सिलेट से न देखा।
क्षितिगोल, खगोल, जानते हैं, पर शब्द-प्रमाण मानते हैं।
बहु ग्रन्थ रटे न पाठ छोड़े, गटके गुरु-ज्ञान के गपोड़े।
अधबैस उमंग में गमाई, पर उत्तम नौकरी न पाई।

१४

ठमके सब ठौर राज-भाषा, थिरके न थकी समाज-भाषा।
लिपि वंकिम बेल-सी खरी है, पर पोच प्रशस्त नागरी है।
लिपि लाल-प्रिया महाजनी है, जिस की दर देश में घनी है।
प्रिय पाठक, वर्ण दो बनालो, पढ़ चून, चुना, चुनी, चना लो।

१५

ग्रह, योग दबोच डाँटते हैं, जड़ तीरथ मुक्ति बाँटते हैं।
बलि, पिण्ड न भूत-प्रेत छोड़ें, सुर सार सुभक्ति का निचोड़ें।
अति उन्नत राजकर्मचारी, जिनके कर बाग है हमारी।
भरपूर पगार पा रहे हैं, फिर भी कुछ घूँस खा रहे हैं।

१६

धमकें धरमार के धड़ाके, अभियोग लड़ा रहे लड़ाके।
यदि वेतस न्याय का न देगा, किसको फिर कौन जीत लेगा।
मृदु नोटिस काम दे रहे हैं, कटु सम्पुट दाम दे रहे हैं।
ठगियापन से न छूटते हैं, पर-द्रव्य लबार लूटते हैं।

१७

विधवा रुचि शोक रो रही हैं, कुलटा कुल-कानि खो रही हैं।
कर कौतुक गर्भ धारती हैं, जन बालक हाय, मारती हैं।
पशु पोच गले कटा रहे हैं, खल गोकुल को घटा रहे हैं।
दधि, माखन, दूध, घी विसारे, व्रज-राज कहाँ गये हमारे।

१८

जल का कर, बीज, ब्याज पोता, भुगताय सकें न भूमि-जोता।
खलियान अनेक डालते हैं, पर, केवल पेट पालते हैं।
सब देश कबाड़ दे रहे हैं, धन और अनाज ले रहे हैं।
क्षति का लिखते न लोग लेखा, परखे बिन क्या करें परेखा।

१९

धरणीश, धनी, समृद्धि-शाली, अलमस्त पड़े समस्त ठाली।
जड़ जंगम-जीव नाम के हैं, विषयी न विशेष काम के हैं।
कुल-कंटक दास काम के हैं, नर कायर वीर वाम के हैं।
जब जम्बुकयूथ से डरेंगे, तब सिंह कहाय क्या करेंगे।

२०

धरणी, धन, धाम दे चुके हैं, भरपूर दरिद्र ले चुके हैं।
कब मंगल से मिलाप होगा, जब दूर प्रमाद-पाप होगा।
भर-पेट कड़ा कुसीद खाना, परतंत्र-समूह को सताना।
इसको कुल-धर्म जानते हैं, यश-उन्नति का बखानते हैं।

२१

सुनलो, भय त्याग भीरु लोगो, सुख-भोग सदा समोद भोगो।
पकड़ो विधि माल-मस्त ऐसी, किसकी अनरीति, रीति कैसी।
चढ़ प्लेग पिशाच ने पछाड़े, घर दुष्ट दुकाल ने उजाड़े।
पुर-पत्तन देख-देख रीते, मरने पर हैं प्रसन्न जीते।

२२

सब का अब सर्वमेध होगा, विधि का न कभी निषेध होगा।
बिगड़े न बनी बनी सराहैं, परतन्त्र, स्वतन्त्रता न चाहैं।
लघु, लोलुप, लालची बड़े हैं, सब दुर्गति-गाढ़ में पड़े हैं।
विधि, क्या अब और भी गिरेंगे, अथवा दिन वे गये फिरेंगे।

२३

कुछ लोग भला विचारते हैं, जुड़ जाति-सभा सुधारते हैं।
अकड़ें कर गर्म-नर्म बातें, गरजें गण मार-मार लातें।
अनुभूत अनेक भाव जाने, कविता मिस बुद्धि ने बखाने।
यदि सिद्ध सरस्वती रहेगी, तब तो कुछ और भी कहेगी।

महादेव को न भूलो

महादेव को भूलजाना नहीं, किसी और से लौ लगाना नहीं।
बनो ब्रह्मचारी पढ़ो वेद को, द्विजाभास कोरे कहाना नहीं।
करो प्यार पूरा सदाचार पै, दुराचार से जी जलाना नहीं।
निरालस्य विद्या बढ़ाते रहो, अविद्या-नटी को नचाना नहीं।
रहो खोलते पोल पाखण्ड की, खलों को प्रतिष्ठा बढ़ाना नहीं।
बड़ाई करो ज्ञान-विज्ञान की, महा मोह की मार खाना नहीं।
अहिंसा न छोड़ो दया दान दो, किसी जीव को भी सताना नहीं।
सुना के रसीली कथा जाल की, मरो मण्डली को रिझाना नहीं।
विना याचना और की वस्तु को, ठगी से न लेना चुराना नहीं।
छूआछूत से जाति के मेल को, घृणा के गढ़े में गिराना नहीं।
न छूना छड़ी देश-विद्रोह की, प्रजा की प्रशंसा घटाना नहीं।
महाशोक-सन्ताप के सिन्धु में, गिरा नारियों को डुबाना नहीं।
चलाना सदुद्योग से जीविका, दिखा लोभ-लीला कमाना नहीं।
न चूको मिलो शंकरानन्द से, निरे तर्क के गीत गाना नहीं।

कजली-कलाप

बोलो-बोलो कैसे होगा,
ऐसी भूलों का सुधार ।

शुद्ध सच्चिदानन्द एक है, शंकर सकलाधार,
निर्गुण, निराकार, स्वामी को कहैं सगुण, साकार । १

मतवालों ने मानलिया है, जो सबका करतार,
वेर-फूट बोगये उसी के दूत, पूत, अवतार । २

बिरले विज्ञानी करते हैं, वैदिक धर्म-प्रचार,
भूल भरें भोलों के कुल में, बहुधा लंठ-लबार । ३

ठीक ठिकाना बतलाने के बन-बन ठेकेदार,
ठगिया औरों को ठगते हैं, जटिल गपोड़े मार । ४

कल्पित स्रष्टा के सूचक हैं, समझे असदुद्‌गार,
योंहीं अपने आप हुआ है, यह समस्त संसार । ५

भिन्न-भिन्न विश्वास हमारे, भिन्न-भिन्न व्यवहार,
भेद भिन्नता के अपनाये, भिन्न चलन-आचार । ६

सिद्धों के आगम-कानन को काटें कुमत-कुठार,
समझें सद्‌ग्रन्थों को जड़-धी जड़ता के अनुसार । ७

विद्या के मन्दिर हैं जिन के गुणधर ज्ञानागार,
होड़ लगाते हैं उन से भी, गौरवहीन गमार । ८

विज्ञ ब्रह्मचारी करते हैं, अभिनव आविष्कार,
सुबुध बने बन्दों के बच्चे, उन की-सी धज धार । ९

फैली फूट लड़ें आपस में वैर-विरोध पसार,
कहिये, ये फुट्टैल करेंगे कब किस का उद्धार । १०

करडाला आलस्य-योग ने हलचल का संहार,
कर्महीन बन्धन से छूटे, ब्रह्म बने सविकार । ११

पति पूजे श्रीपति को, पत्नी पूजे मियाँ-मदार,
दो मत जुड़े एक जोड़ी में ठनी रहे तकरार। १२
भिक्षुक, भूखों पै पड़ती है, निठुर दैव की मार,
हा, न अनाथों को अपनाते करुणा कर दातार। १३
अपने ऊत कपूतों पै भी करें कृपा कर प्यार,
औरों के व्रतशील सुतों को समझें भूतल-भार। १४
देशी शिल्पकार दुख भोगें बैठ रहे मन मार,
देखो दस्तकार परदेशी सुख से करें विहार। १५
उन्नतिशील विदेशी ऊलें कर उद्यम व्यापार,
हम ठाली रोते हैं उन की ओर निहार-निहार। १६
रहे कूपमण्डूक न देखा, विशद विश्व-विस्तार,
हाय, हमारी रोकटोक पै पड़ी न अबलों छार। १७
रँग-रँग सम्पति की सेना पहुँची सागर पार,
रीता हुआ हाय, भारत का अब अक्षय भण्डार। १८
जिन के गुरु ज्ञानी जीते थे प्रभुता पाय अपार,
उन को अपने आपे पै भी नहीं रहा अधिकार। १९
सिंह-नाम-धारी वीरों ने फेंक दिये हथियार,
उगलें राग बजें तम्बूरे, तबले, वेणु, सितार। २०
शर्मा, वर्मा, गुप्त उपजते अब दासत्व विसार,
तो फिर ऊँचे क्यों न चढ़ेंगे, लोलुप, लंठ-लबार। २१
वीर-धर्म की टेक टिकाई, गलमुच्छे फटकार,
औसर आते ही बन बैठे, केहरि कायर—स्यार। २२
देखें चित्र, चरित्र बड़ों के, पढ़ें पुकार-पुकार,
तो भी हा न दुर्दशा अपनी निरखें आँख उघार। २३
अधम, आततायी, पाखण्डी, ब्जबक, ज्वारी, जार,
गौरव, दान, मान पाते हैं, साधु-वेष बटमार। २४
विधि-वल्लभ का वाणी मे भी करें न शठ सत्कार,
नीचों में मिलते, उस ऊँचे पौरुष पर धिक्कार। २५

कामी कौल कुकर्म पसारें, खोल प्रमाद-पिटार,
खोटे रहे खसोट सभ्यता—दुलहिन का शृंगार। २६
आठ वर्ष की गौरि कुमारी, वरे अजान कुमार,
बाल-विवाह गिराता है यों, घेर-घेर घरबार। २७
डोकर छैला बने छोकड़ी, वरनी के भरतार,
छी छी छी! बुढ़वा मंगल को तजें न ऊत-उतार। २८
दारा-गण के गीत निचोड़ें वनितापन का सार,
धन्य अविद्या-दुलही तेरा देख लिया दरबार। २९
हाय, बच्चियों पै रखते हैं, विधवापन का भार,
धर्म-शत्रु हेकड़ पञ्चों के, हटें न नीच विचार। ३०
त्याग प्रमाण प्रेम से पूजें, हठ के पैर पखार,
दुष्ट-दुराचारी करते हैं, अनुचित अत्याचार। ३१
धर्म-कर्म का ढोल बजाना, करने से इनकार,
क्या वे बकवादी उतरेंगे, भव-सागर से पार। ३२
मदिरा, ताड़ी, भंग, कसूमा रंग निचोड़, निथार,
पीते वीर, न कण्टक जानें, मादक व्रत की सार। ३३
झुलसे चाँडू-बाज, गँजेड़ी, मदकी, चरसी चार,
झाड़-झाड़ चूँसें चिलमों को, अंग पजार-पजार। ३४
हुल्लड़, हुरदंगों की मारी, लाज लुकी हियहार,
कौन कहे गोरी रसियों की महिमा अपरम्पार। ३५
देखो भाव घटे गोरस का बढ़ें न घृत के बार,
फिर भी गौओं पर खौओं की चलती है तलवार। ३६
लाखों पत्तन, ग्राम उजाड़े, घटे घने परिवार,
काल कराल महामारी का, हा, न हुआ प्रतिकार। ३७
फ़िल्टर वाटर से भी चोखी, सुरसरिता की धार,
गोड़ें उसे गोल गटरों के नरक-नदी के यार। ३८

जिस की कविता के भावों पै रीझे रसिक उदार,
टालें उस को वाह-वाह के दे-दे कर उपहार। ३९
अब तो आशा के कमलों पै, बरसे बैर-तुषार,
गाने के मिस रो न अभागे, शंकर धीरज धार। ४०

राम-विलाप

१

आह दई गति कैसी भई निशि आधी गई हनुमान न आयो,
खात रह्यो फल-फूल कहूं सुधि भूल गयो कपि मूरि न लायो।
जान परै अनुमान सों आज विरंचि ने बन्धु को संग छुड़ायो,
शंकर कष्ट न नष्ट भयो बिधि ने दुख-भाजन मोहि बनायो।

२

आदि में औध वियोग भयो बन योग दियो सुख-भोग नसायो,
शोक भयो परलोक गयो पितु सीय को लंकपती हर लायो।
आज महा रण रङ्क मैं घायल अंग उछंग में बन्धु दिखायो,
शंकर कष्ट न नष्ट भयो बिधि ने दुख-भाजन मोहि बनायो।

३

देवन के महिदेवन को सुख मेट अदेवन द्वन्द्व मचायो,
सीय वियोग टरो न मरो दशकण्ठ न राज विभीषण पायो।
भू खलहीन करो कस तात बिसार चले तुम शोक बढ़ायो,
आगे चलो सुरलोक को तात मैं रावण मार के पाछें ते आयो।

४

जानक मोहि अनाथ हरो दुख ज्यों शिशु कष्ट हरैं पितु-मैया,
हाय सुखेन लगावहु पार बुड़ावो न शोक-समुद्र में नैया।
शंकर वेग सहाय करो अब कोउ न राम को धीर धरैया,
रोवत हों अवलोकि तुम्हें दृग खोल के काहे न बोलत भैया।

५

व्याकुल शंकर बन्धु बिलोक सशोक भये रघुवंश-दिवाकर,
आय सुखेन बिचार कियो अस लावहु बेगि सजीवन की जर।
सो सुन दौरि गयो हनुमान धरो ढिंग लाय समूरि धराधर,
धन्य गदारि लगाय सो एकहि बार कियो जिन बार बराबर।

६

काम त्रिफलादि के प्रयोग से चलेगा नहीं,
और किसी भाँति का न क्वाथ पिया जायेगा।
सूचिकाभरण से—न पारद से होगा भला,
चीर-फाड़ लेपों का न नाम लिया जायेगा।
राम, ठीक मानो यदि भाई को बचाना है तो,
चेतना सुधारक स्वरस दिया जायगा।
भेजो हनुमान जल्द जीवन-जड़ी को लावें,
अन्यथा लखन का अवश्य जिया जायेगा।

दिवाली नहीं दिवाला है !

दिया जलाकर देख
दिवाली नहीं दिवाला है।

हुआ दिवस का अन्त अस्त आदित्य उजाला है,
असित अमा की रात मन्द आभा उडु-माला है।
चन्द्रमंडल भी काला है—

घोर तिमिर ने घेर रतौंधा रंग जमाया है,
अन्ध अकड़ में तेजहीन अन्धेर समाया है।
न अगुआ आँखों वाला है—

उड़ते फिरें उलूक उजाड़ गीदड़ रोते हैं,
बिचरें वंचक, चोर पड़े घरवाले सोते हैं।
न किस का टूटा ताला है—

उमग मोहिनी शक्ति सुरों को सुधा पिलाती है,
असुरों को विष-रूप रसीले खेल खिलाती है।
झुका अँखियों का झाला है—

सुन शतरंजी शाह बिसात लुटी क्या छोड़ा है,
रहे न फ़ील, वज़ीर न प्यादे बचे न घोड़ा है।
न जंगी ऊँट जुँगाला है—

सज्जन, सभ्य, सुजान, दरिद्र न पूजे जाते हैं,
हा, मदमत्त अजान, प्रतिष्ठा-पदवी पाते हैं।
सबल रानी का साला है—

गर्मी से अकुलाय महा ज्ञानी गरमाते हैं,
सर्दी से सकुचाय नहीं नेता नरमाते हैं।
घरेलू भेद उबाला है—

मतवाले मत-पन्थ मनाने वाले लड़ते हैं,
बैर-विरोध बढ़ाय गर्व-गड्ढे में पड़ते हैं।
अविद्या ने घर घाला है—

जिन के अर्थ अनेक खरे-खोटे हो सकते हैं,
क्या वे जटिल कुतंत्र पराविद्या बो सकते हैं।
कुमति-लूता का जाला है—

सबल बड़ों के बूट बड़ाई कहाँ न पाते हैं,
वैदिक दर्प दबोच वेदियों पै चढ़ जाते हैं।
डुबा धी नाम उछाला है—

गुरुकुलियों को दान अकिञ्चन भी दे आते हैं,
पर कंगाल-कुमार न विद्या पढ़ने पाते हैं।
धनी लड़कों की शाला है—

जननी, पितु की पुत्र न पूरी पूजा करता है,
अपने ही रस-रंग-भरे भोगों पै मरता है।
सुमित्रा वनिता बाला है—

ललना ज्ञान विहीन अविद्या से दुख पाती हैं,
हा-हा नरक समान घरों में जन्म बिताती हैं।
महा माया विकराला है—

बाधक बाल-विवाह कुमारों का बल खोता है,
अमर कुलों में हाय वंशघाती विष बोता है।
बुरा काकोदर पाला है—

अक्षतयोनि अनेक बालिका विधवा होती हैं,
पामर पण्डित पंच, पिशाचों को सब रोती हैं।
न गौना हुआ न चाला है—

विधवा मदन-विलास नकीलों को दिखलाती हैं,
करती हैं व्यभिचार अधूरे गर्भ गिराती हैं।
अछूता धर्म छिनाला है—

केशकल्प कर वृद्ध, बालिका कन्या वरते हैं,
कर मनमाने पाप न अत्याचारी डरते हैं।
जरा जारत्व निकाला है—

राजा, धनिक, उदार, मस्त जीने पै मरते हैं,
गोरे गुरु अपनाय, प्रशंसा, पूजा करते हैं।
यही तो मान-मसाला है—

ठोस ठसक के ठाठ ठिकानों पै यों लगते हैं,
उन को खेल खिलाय, पढ़े पाखण्डी ठगते हैं।
बड़ाई जिन की खाला है—

आमिष, चरबी आदि घने नारी-नर खाते हैं,
पशु-पक्षी दिन-रात कटाकट काटे जाते हैं।
बहा शोणित का नाला है—

गाँजा-चरस चढ़ाय जले जड़ झाँडू से सारे,
पियें मदकची भंग अफ़ीमी पीनक ने मारे।
चढ़ी सर्वोपरि हाला है—

गणिका, भडुआ, भाँड़, भटेले मौज उड़ाते हैं,
अबढरदानी सेठ, द्रव्य से पिण्ड छुड़ाते हैं।
चढ़ी लालों पर ला-ला है—

सेठ सदुद्यमशील पड़े माला सटकाते हैं,
अनघ दुअन्नी तीन सैंकड़ा व्याज उडाते हैं।
कहो क्या कष्ट-कसाला है—

बैरिस्टर, मुखतार, वकीलों का धन बन्दा है,
नैतिक तर्क-विलास न निर्धनता का फन्दा है।
कमाऊ ऊगला या "ल।" है—

थाना-पति कुलवीर, न दाता से भी डरते हैं,
धन, जीवन की खैर हमारी रक्षा करते हैं।
प्रतापी रौब बिठाला है—

पटवारी प्रण-रोप किसानों का जी भरते हैं,
मासिक से अतिरिक्त रसीला चारा चरते हैं।
हरा प्रत्येक निवाला है—

ठग विज्ञापन बाँट ठगी का रंग जमाते हैं,
अनुचित सौदा बेच, बेच कल्दार कमाते हैं।
कपट साँचे में ढाला है—

उन्नति के अवतार, मिलों का मान बढ़ाते हैं,
चरबी चुपड़ें चक्र-चक्र पै चाम चढ़ाते हैं।
अहिंसा का प्रण पाला है—

रहते थे अविकार अजी जो सुख से जीते थे,
दधि, माखन, घी, खाय, प्रतापी गोरस पीते थे।
उन्हें हा, छाछ रसाला है—

सम्पति रही न पास, दरिद्रासुर ने घेरे हैं,
बन्धन के सब ओर, पड़े फन्दे बहुतेरे हैं।
लगा बर्छी पर भाला है—

विचरें मूढ़ विरक्त अविद्या को अपनाते हैं,
ब्रह्म बने लघु लोग कुयोगी पाप कमाते हैं।
वृथा माला, मृगछाला है—

सुर तेतीस करोड़, मिले पर तो भी थोड़े हैं,
पुजते जड़-चैतन्य, मरों के पिण्ड न छोड़े हैं।
पुजापा कहाँ न डाला है—

घेर-घेर पुर-ग्राम घने घर सूने कर डाले,
करते मंत्र-प्रयोग न तो भी मृत्युंजय वाले।
किसी ने प्लेग न टाला है—

त्राण अनेक अनाथ, गाड-नन्दन से पाते हैं,
कितने ही कुलवीर, रसूलिल्लाह मनाते हैं।
हमारा ह्रास निराला है—

दयानन्द मुनिराज मिले थे शंकर के प्यारे,
वे भी कर उपदेश हो गये भारत से न्यारे।
जलाता रजनी ज्वाला है—

अन्धेरखाता

इस अन्धेर में रे,
अन्धी चालाकी चमका लो।

भानु, चन्द्रमा, तारागण से गुणियों को धमका लो,
गरजो रे बकवादी मेघो, छल-कौंधा दमका लो।
मोह-अभ्र से ज्ञान-सूर्य का प्रातिभ दृश्य दुरा लो,
विद्या-ज्योति विहीन जड़ों का सुख-सर्वस्व चुरा लो।
झूँठा सब संसार बता दो सत्य नाम अपना लो,
मायावाद सिद्ध करने को रज्जु, सर्प, सपना लो।
सोहमस्मि से वेद-विरोधी मायिक मंत्र सिखा लो,
परमतत्व भूले जीवों को ब्रह्म-स्वरूप दिखा लो।

क्रूर कल्पना के प्रवाह में वाद-विवाद बहा लो,
कर्महीन केवल बातों से जीवनमुक्त कहा लो।
निर्विकार, अद्वैत, एक में द्वैत विकार मिला लो,
मायामय मिथ्या प्रपञ्च के सब को खेल खिला लो।
भूत, भूतनी, प्रेत, मसानी मियाँ-मदार मना लो,
ठीक ठिकानों पै ठगई के जाल, वितान तना लो।
जन्मकुण्डली काढ़ जाल की दिव्य आग दहका लो,
खेट खरे, खोटे बतला के धनियों को बहका लो।
साधु कहालो भण्डभीड़ में सण्ड-समूह मटा लो,
रोट खाय पाखण्ड-फ़ण्ड के लण्ठो, लहर पटा लो।
मुँज-मेखला बाँध गले में कठकण्ठे लटका लो,
मादकता की साधकता में योग-ध्यान अटका लो।
अपने अन्यायी जीवन की धुँधली ज्योति जगा लो,
निन्दा करो महापुरुषों की ठगलो और ठगा लो।
भारत की भावी उन्नति का प्रण से पान चबा लो,
चन्दा ले कर धर्म-कोष को सब के दाम दबा लो।
हाँ, उपदेशामृत पीने को श्रोता वदन उबा लो,
शुद्ध सत्य-सागर में सारे भ्रम—सन्देह डुबा लो।
गरमी, नरमी की माया को डौल बिगाड़ डुला लो,
कूद-फाँद जातीय सभा का उन्नत काल बुला लो।
पाय चाकरी धर्म कमालो खाकर घूँस पचा लो,
मौज उड़ालो मासिक से भी तिगुना वित्त बचा लो।
देशी उद्यम की उन्नति का गहरा रंग रँगा लो,
अन्न विदेशों को भिजवा दो काठ-कबाड़ मँगा लो।
मूल-व्याज की मारधाड़ से ऋणियों को पटका लो,
ध्यान धरो पौढ़े ठाकुर का कर माला सटका लो।

लड़की लड़कों के ब्याहों में धन की धूलि उड़ा लो,
नाक न कटने दो निन्दा से कुल का पिण्ड छुड़ा लो।
बच्ची, बच्चो, मिल मण्डप में बैठो, मन बहला लो,
गौरि, गिरीश, रोहिणी, चन्दा, कन्या, वर कहला लो।
पीले हाथ करो दुहिता के दस तोड़े गिनवा लो,
वरनी के बाबा-से वर पे नाक चने बिनवा लो।
विद्याहीन अंगना-गण के उन्नत अंग नवा लो,
पिसवालो, खाना पकवालो, गन्दे गीत गवा लो।
विधवा-दल के दुष्कर्मों से घर का मान घटा लो,
हत्यारे बन कर पंचों में कुल की नाक कटा लो।
खेलो जुआ हार धन, दारा मार कुयश की खा लो,
नल की पदवी से भी आगे धर्मपुत्र-पद पा लो।
मदिरा, ताड़ी, भंग कसूमा पीलो अमल खिला लो,
चूँसो धुआँ चरस गाँजे में चाँडू मदक मिला लो।
सोंध सड़े गुड़ में तम्बाकू घान घने कुटवा लो,
आदर, मान बड़े हुक्के का भारत को लुटवा लो।
होली के हुल्लड़ में रसिको, रस के साज सजा लो,
हिन्दूपन के सभ्य भाव का ढिल्लड़ ढोल बजा लो।
वैदिक वीरो, अन्ध-यूथ में तुम भी टाँग अड़ा लो,
बाँट बड़ाई का बढ़िया से बढ़िया और बड़ा लो।
माँगो गुरुकुल के मेलों में मंगल-कोष बढ़ा लो,
भिक्षा को उलटी लटका दो शुल्कद शिष्य पढ़ा लो।
धीरो, ब्याह करो विधवा का धर्म-सुधा बरसा लो,
फिर दे दण्ड धींग पँचों को पाप-दृश्य दरसा लो।
युक्तिवाद से छद्मवाद की खाल खींच कढ़वा लो,
पै संगीत और कविता पे धर्म-दोष मढ़वा लो।
ढोल, चिकारे की मिल्लत में करतालें खड़का लो,
राग, रागनी, ताल, स्वरों को तोड़ो, तन फड़का लो।

वेदों की वेदी पर चढ़ लो ऊल-ऊल कर गा लो,
कोरी कर-ताली पिटवा लो धोरी धिक-धिक धा लो।
तुक्कड़ लोगो, तुकबन्दी पै हित का हाथ फिरा लो,
सिर कविता देवी के सिर से मान-किरीट गिरा लो।
हाय अजानों के दंगल में झूँठी ठसक ठसा लो,
सिद्ध प्रतापी कविराजों पै हँस लो और हँसा लो।
वक्ताजी शुभ कर्म-कथा पै बस हामी भरवा लो,
पर देखें सब श्रोताओं से पंचाङ्ग करवा लो।
शंकरजी पहले पापों का पलटा आप चुका लो,
औरों से क्यों अटक रहे हो अपनी ओर झुका लो।

विधवा-विलाप

सारी सहैं शोक-सन्ताप व्याकुल बिधबा करैं बिलाप
एक ठौर मिल बैठीं पाँच उर में बार बिरह की आँच
बोली एक गह्यो किन हाथ भामर परीं कौन के साथ
कैसे ब्याह भयो सुधि नाहिं बसे बासना-सी मन माहिं
औरन सों सुन जानी हाय पिय कों गयी सीतला खाय
वे चल बसे अयानी छोड़ आयो जोबन माँगे जोड़
कोप काम को सह्यो न जाय चित चंचल पै रह्यो न जाय
कितहूँ खोज लेहुँ सुख-साज जो पै पड़े लाज पै गाज
बोली राँड दूसरी रोय यों मनमानी कैसे होय
जोकर कोप सतावे तोहि सो जड़ मार मरोरै मोहि
गोनो भयँ भये दिन चार गये अमरपुर प्राणाधार
जरो सुहाग पिया के संग तरसत रहे अछूते अंग
तब ही तें अबलों बेचैन मैं दुख भोगत हूँ दिन-रैन
जेठ और देवर की जोय जागं सुख-सेजन पै सोय

में उनके रति-चिन्ह बिहार   रोवत रहूं मसोसा मार
कबहूं यों समझावे सास   कर जप-दान, धर्म-उपवास
सुन-सुन वा बुढ़िया के बोल   मन में कहूं न छाती छोल
जब कबहूँ मन भरे उड़ान   रोके लोक-लाज कुल-कान
बोली तरुण तीसरी तीय   राम रँडापो जारे जीय
थोड़ो-सो सुख भोग-सुगाय   पीतम रण में जूझे जाय
जीवत माँहि नरक में डार   आप गये सुरलोक सिधार
पल में हाय गयो मिट मोद   कोख न फूली, भरी न गोद
पय बिन पीन पयोधर मोर   चूँसै कौन कंचुकी छोर
शोक बढ़ावे सूनी सेज   रे खल काल, मौत को भेज
चौथी बिधवा उठी पुकार   जीवन भार बिना भरतार
पीहर काल; मौत ससुरार   संकट-सागर-सौ संसार
पल-पल बाढ़े पूरी पीर   को बिन कंथ बंधावे धीर
सब अनखाय कहें कुलबोर   फटे न हा हिय कुलिश कठोर
हम कुलबोर किधों वे राँड़   जिनकी भई किरकिरी खाँड
बने अछूती छुपी छिनार   गर्भ गिरावें बारंबार
बूढ़े देख न पावें देह   करें धींग-धग्गड़ सों नेह
जाति, कुजाति, मेल-अनमेल   सबको तंकर खेलें खेल
भौजी को देवर पै प्यार   सारी जीजा की सरदार
बेबस लोक-लाज को छेक   रंडा-रंडी भई अनेक
कोई भगतिन कातिक न्हाय   पौ फाटें मन्दिर में जाय
पूजें ताहि पुजारी लोग   बाल भोग दें बाला भोग
श्री गुरुदेव पुरोहित संत   पंडित माया रचे अनंत
बेटी कहें करें उपदेश   निरखें कटि, कुच आनन केश
छल कर छाप लगावे कोइ   तन कौ कहूँ समरपण होइ
कोई हरि की लगन लगाय   तारक तीरथ पै ले जाय
जन्म-जन्म के पातक टार   ठोकर मार करे उद्धार
बैठ धर्म-टाटी की ओट   यों मतवारे मारें चोट
बिटिया, बूआ, बहन बनाय   मिलें पड़ोसी प्रेम जनाय
धर्मशील भाई बा हाय   जब-तब दुख टारें उर लाय

देवर जेठ ससुर जेठौत जा बिधवा की माँगें मौत
पर जब गहें धर्म की राह चारों करें चौगुनी चाह
बेद बाद में बसे लबेद सब जाने पर खुले न भेद
यों सबके दुख टारे जायँ कच्चे बच्चे मारे जायँ
बिधवा कहै पाँचवी रोय चुप-चुप लाज न अपनी खोय
बीबी वृथा करे क्यों रोष इनको नाहिं नेकहू दोष
ऐसी कौन नवेली बाम रज राखे पर जीते काम
बैरी बुरो रड़ापो रोग याकी ओषधि एक नियोग
ताबिन बिधवन को सुख नाहिं दारुण दुख भोगें जग माहिं
धर्म नाम धारी अंधेर घर-घर मारे हे हर, हेर
पूरे पापो कहें पुकार दिन काटो सुख भोग बिसार
इन अन्यायिन कौ अन्याय अब तौ सह्यो न देखो जाय
अपने करें अनेक बिबाह हमरे लिये एक ही नाह
माने या अनीति को नोति देखौ इनकी औंधी रीति
ये सब लोग पाप के दास करि हैं घोर नरक में बास
बिधवा दुखियन की सुन टेर कर दुख दूर दई दिन फेर
कबलों हाय रहें धर मौन तो बिन हितू हमारो कौन
भयो कठोर अरे करतार हमको मार कि संकट टार

[सन् १८८०

संवत् १९५३-५४

अब कौ सम्बत ऐसो आयो भारत में दारुण दुख छायो
गली-गली में भूखे डोलें व्याकुल भारत वाणी बोलें
तन में केवल रही लँगोटी मिले न हाय पेट-भर रोटी
बीन-बीन कर दाने कच्चे चाबत फिरें विचारे बच्चे
तन भूखी युवतिन के रूखे पटके पेट पयोधर सूखे
संकट सहें नारि-नर सारे दूध न पावत बालक बारे

एक राख मुख में कुच मसके एक अचेत गोद में सिसके
तड़पे एक-एक उर फारे एक न बोलें एक पुकारे
देख दशा तिनकी पितु-माता कहैं करे किन प्रलय विधाता
सोये सुदिन बुरे दिन जागे हरे न शोक मोद सुख भागे
पापी प्राण सहें दुख भारी हाय मरी कित मौत हमारी
कठिन कलेश कथा को बाँचें चारों ओर अमंगल नाचें
या दारुण दुकाल की जाया चढ़ी महामारी रच माया
ताने घर-घर धींग पछाड़े सुन्दर नगर अनेक उजाड़े
कर उपचार चिकित्सक हारे सोच करें सम्राट विचारे
चली न काहू की चतुराई अगणित प्रजा प्लेग ने खाई
सबने हाय पुकार मचाई तब कछु दया दैव को आई
ज्यों-त्यों मारी मार भगाई टरौ न पर दुकाल दुखदाई
बिकें डेढ़ पंसेरी गेंहूँ जिनमें कढ़ें तीन पा सेहूँ
और अनाज पीस कर देखो सबके लिये एक ही लेखो
इन्द्र देव ने ऐसी ठानी बरसे धूरि न बरसे पानी
चढ़ चारो दिश गरमी चेती जल बिन सूख गई सब खेती
पावक वाण अंक भू भागा वेद तत्व सम्वत सर लागा
याने और दियो दुख दूनो दुखिया देश भयो सुख-सूनो
दीन अकिंचन भूखन मारे भूप धनी व्याकुल कर डारे
सबने जुरमिल जोरे चन्दे लिये बचाय नाज के बन्दे
प्रबल प्रबन्ध भयौ या ढब कौ पर हा संकट कटौ न सबकौ
माँगत मौत अनेक अभागे बहुतन तड़प-तड़प तन त्यागे
मरे अनाथ जहाँ जो पाये सो सब श्वान-शृगालन खाये
छाती फार मेदिनी डोली आँख तीसरी हरने खोली
अबनी में अगणित मनु आये घर-परिवार समेत समाये
हाहाकार भयो भारत में घुमड़ीं धौरारत सारत में
जुबिली भई महारानी की लाई भेट घटा पानी की
बारि बगार बलाहक गाजे दुख दुरभिक्ष भयाकुल भाजे
गयी अमंगल की मिट माया धन्य महारानी की दाया

[सन् १८६४

श्रीगणेश-वन्दना

[महाकवि शंकर ने 'गणेश-वन्दना', 'इन्द्र-द्वादशी', 'सुखकारी शिक्षा', 'राम-लीला', 'कृष्ण-कीर्तन', 'कलयुग-राज', 'राम-रूपैया', 'कंजूस रोगी', 'रेलवे सेर्वा', 'अफीमी की आफत', 'खिलाड़ी खटमल', 'अनोखे उल्लू' और 'खचेरू-लाल' शीर्षक निम्नलिखित कविताएं १८८० ई०में, बालकों के लिये लिखीं थीं। सम्पादक]

जय गणराज अमंगलहारी मंगल-मूरति मंगलकारी
मुण्ड विशाल सुण्ड सटकारी भाल त्रिपुण्ड कलाधर-धारी
बिथुरे केश लवंग लता-से चौड़े श्रवण तमाल पता-से
भृकुटी कुटिल दृगञ्चल कारे लघु लोचन चञ्चल चख तारे
कल्लु कपोल मनोहर दोऊ चिबुक बिहीन अधर वर सोऊ
एक दशन ग्रीवा अति छोटी पिण्डी परम सोहनी मोटी
चार बाहु कर बिघन बिदारें वेद, फूल, फल, अंकुश धारें
पीठ सपाट छबीली छाती उदर बिलोक सूँड़ सकुचाती
ओंड़ी नाभि नितम्ब नगाड़े टाँगन उर कदलिन के फाड़े
बैठे अचल पालथी मारें अंग भुजंग-जनेऊ डारें
कोमल चरन कमल अरुनारे पूजत दनुज, मनुज, सुर सारे
गुन-सागर नागर बुध नीके प्यारे शंकर पारबती के
हे प्रभु चूहे पै चढ़ि आओ दरसन देहु मोहि अपनाओ
मेंट समूल मोहमय माया विमल विवेक देउ कर दाया
फूलें-फलें सदा सुख पावें सो, जो गुन गनेश के गावें

इन्द्र-द्वादशी

देखो पावस की प्रभुताई चारों दिसि हरियाली छाई
छबि छाये गिरि-बन मन भाए बोलत बिबिध बिहंग सुहाए
गरजत मेघ बीजुरी चमके, बिमल बारि बरसे थम-थम के
कबहूँ तिमिर तोप भर लागे भानु-प्रकाश भूमि तजि भागे
नेक न भेद रहे निशि-दिन में नीर समाय न ताल-नदिन में
पै जब लगें पवन के झोंके उड़ें बलाहक रुकें न रोके
काल प्रताप कर्म के प्रेरे जीव-जन्तु जन्मे बहुतेरे
फूल-फली खेती खेतन में देख-देख उपजे सुख मन में
मंगलप्रद आषाढ़ सिधारौ बीतो सुख दै श्रावण सारौ
ढार पियूष परम सुखदाई भाग्यो चाहत भादों भाई
आज द्वादशी है व्रत कीजे देवराज को आदर दीजे
सुखदा दया लोक में जाकी पूजा करिये तो मघवा की
अध्यापक शिष्यों को लावें घर-घर मंगल-गान करावें
सोसुन मात-पिता कुल-गोती प्रिय लालन पै वारो मोती
मोदक-दान देहु सबही को सादर पूजो पण्डितजी को
भेंट यथोचित आगे धर के टीको करो बड़ाई करके
पुनि प्रसन्न कर बिप्र कबिनको न्यौछावर बाँटो नेगिन को
कर सनेह सब के मन भरिये दे प्रसाद मुख मीठे करिये
जीवन-जन्म सफल जिय जानो या दिन को मंगलमय मानो

सुखकारी शिक्षा

साँची बात सुनो सब भाई जो तुम चाहो मान-बड़ाई
तो औरों को बुरा न कहना सीखो सब से मिल कर रहना
करिये मात-पिता की पूजा याते उत्तम धर्म न दूजा
गुरु लोगन की सेवा कीजे तिन को उपदेशामृत पीजे
हितवादिन सों नेह बढ़ाओ खल, पापिन के पास न जाओ
पारिजात पौरुष को मानो कामधेनु करनी को जानो

आलस, बैर, घमण्ड बिसारो छोड़ अनीति, नीति उर धारो
कर्म करो शुभ साहस राखो ठाली मन-मोदक मत चाखो
जागो भोर शौच कर न्हाओ कर भोजन पढ़ने को जाओ
ऐसे श्रम सों विद्या सीखो सब साथिन में आगे दीखो
जब पूरी विद्या हो जावे उद्यम करना जो मन भावे
फिर बिधिवत बिबाह कर लेना प्यारी बनिता को सुख देना
सुख में बीत जाय तरुणाई जब जानो अब देह बुढ़ाई
तब सुत को प्रतिनिधि कर अपना सब तज नाम राम का जपना
कर सत्संग तीसरेपन में बाम सहित बसिये कानन में
जो पै जीवित नारि रहेना तो संन्यास धर्म गह लेना
पूरण योग अखण्डित करना ब्रह्म रन्ध्र खंडित कर मरना
है यह राह मुक्ति मन्दिरकी मानो सीख सुधी शंकर को

राम-लीला

श्री रघुबीर हमारे प्यारे भूतल-भार उतारन हारे
मनुज-रूप सब के मन भाये कौशलेश के तनय कहाये
सानुज कौशिक संग सिधारे मख रखाय रजनीचर मारे
तारी मुनि गौतम की नारी बरी तोर धनु जनक-कुमारी
सीता को कौशलपुर लाये प्रभु युवराज होन नहिं पाये
भेजे मात-पिता ने वन को गये साथ ले सीय-लखन को
सोवत पुरवासी बिसराये रथ चढ़ शृंगबेरपुर आये
निशि निषाद्य के तीर बिताई स्यन्दन त्याग चले रघुराई
सचिव सुमन्त बिदा करि दीनो आये देव-नदी तट तानो
केवट ने प्रभु पाय पखारे सादर गंगा-पार उतारे
जाय प्रयाग अन्हाय सिधाये चित्रकूट पर तृण-गृह छाये
जनक, मात, नागर, गुरु, भ्राता आये मिलन मिले जनत्राता
सुनि पितु-मरण महा दुख माना ठीक न जाना घर को जाना
कर उपदेश सकल समझाये दे पादुका भरत लौटाये

पुनि कछु दिन बिलास करि नाना चले जयन्ता को कर काना
बध बिराध निज धाम पठायो मिल मुनि कुम्भज सों सुख पायो
आगे पंचवटी मन भाई सीय समेत रहे दोऊ भाई
देख कुलच्छण सूर्पनखा के नाक-कान काटे कुटिला के
ता नकटी के रच्छक सारे खर, दूषण, त्रिशिरा संहारे
दूर जाय माया-मृग मारो 'लखन-लखन' मारीच पुकारो
सुन सिय ने सौमित्रि पठाये देख तिन्हें कछु राम रिसाये
बीच पाय दशकंठ अभागा छल कर सीता को ले भागा
काटे पँख जटायु गिरायो नीच मीच लै घर को आयो
सानुज राम कुटी पर आये बिन बिदेह-तनया अकुलाये
खोजत चले शोक उर छायो घायल गीध गैल में पायो
ताहि-तारि बिरही पतनी के प्रिय पाहुने भए शबरी के
आगे चले तज्यो बन सोऊ ऋष्यमूक ढिंग पहुंचे दोऊ
पवन-पुत्र सन प्रीति बढ़ाई मिल सुकण्ठ सों करी मिताई
बालि मारि अंगद अपनायो सुग्रीवहिं कपिराज बनायो
कपि-नायक के दूत बुलाये सीता की सुधि लेन पठाये
ले मुदरी मारुत-सुत बंका लाँघ्यो सिन्धु पजारी लँका
सो फिर लौटि राम पै आयो सीता की चूड़ा-मणि लायो
प्यारी की सुधि प्रभु ने पाई जोरि भालु-कपि करी चढ़ाई
आरत शरण विभीषण आयो ताहि राखि लंकेश बनायो
सुन्दर पुल बँधाय सागर को उतरे पार ध्यान धरि हरि को
चारों ओर राखि दल सारा गिरि सुबेल पै डेरा डारो
पठयो दूत बालि को जायो ताने रिपु रावण समझायो
अभिमानी ने एक न मानी तब रण-पैज राम ने ठानी
भालु कीश करि कोप बढ़ाए लंका के रजनीचर, धाये
जूझन लगे महाभट सारे 'जयरावण' 'जयराम' पुकारे
मेघनाद की बरछी लागी चेतनता लछमन की भागी
जब हनुमान महौषधि लाए तब सुखेन ने प्राण बचाए
रिपु-सुत रामानुज ने मारो प्रभु ने कुम्भकर्ण संहारो
पुनि रिस रोपि राम ने भारी मारो रावण असुर सुरारी

बची न बैरी को कटकाई प्रभु ने जय समेत सिय पाई
या बिधि चौदह वर्ष बिताए पुष्पक पे चढ़ि घर को आये
गुरु द्विज मात प्रजा पुरवासी प्रिय भ्राता सब सेवक दासी
मिले यथाविधि भए सुखारे सब के बिरह-जनित दुख टारे
राज कियो कल कीरति बाढ़ी प्यारी सीता बन को काढ़ी
ता दुखिया ने दो सुत जाये बाल्मीकि ने पाल पढ़ाये
मख हयमेध राम ने कीना चारों ओर निमंत्रण दीना
मुनि, महिदेव, महीपति प्यारे आए अपर निमंत्रित सारे
सीता आईं बिना बुलाईं आदर भयो न भूमि समाईं
काल पुरुष सों मिले खरारी द्वारे रहे लखन रखवारी
आए एक महा मुनि ज्ञानी भीतर पहुँचे रोक न मानी
तिनसों करि मिलाप रघुराई बोले लछमन सों सुन भाई
आयुस लाँघे को फल पाओ घर बिहाय कितहू कढ़ि जाओ
सुन सौमित्रि गये तन त्यागा अवधपुरी का गौरव भागा
संग लिए पुरबासी सारे श्रीरघुवर बैकुण्ठ सिधारे
शंकर बोले सुनो भवानी है इतनी बस राम-कहानी
जो जन जाहि निरन्तर गावे सो समोद चारो फल पावे

कृष्ण-कीर्तन

कृष्ण देवकीजी ने जाये लै बसुदेव नन्द-घर आये
पालन लगी जसोदा मैया धरौ लड़ेतो नाम कन्हैया
पलना में धर दाबी दारी चूचा चूँस पूतना मारी
एक दिना दो पेड़ उखारे आगे असुर अनेक पछारे
लूट-लूट दधि-माखन खायो लौकिक लीलामृत बरसायो
रास कियो गोपिन सँग नाचे सब के बने प्राण प्रिय साँचे
ब्रज बूड़त गोबरधन धारो मथुरा जाय कंस धर मारो
सतभामा रुक्मिणी बिबाही राधा धरी करी चित चाही

जरासंघ ने मार भगाए ता दिन ते रणछोड़ कहाए
ब्रज बिसार द्वारिका बसाई भए ठीक ठाकुर यदुराई
कुन्ती के बेटा मन भाए तिनके हित कौरव समझाए
दुर्योधन ने एक न मानी तब दल जोरि लड़ाई ठानी
जूझ मरे नामी भट सारे जीते पण्डा कौरव हारे
फिर घर आय द्वारका बारे यादव मतबारे करि मारे
बधिक बाण पग माँहि समायो निज प्रभुत्व बैकुण्ठ पठायो
जाय मरे हिम-गिरि पै पण्डा बचे न वीर रहीं कुल-रण्डा
जा हत्याने हर बिसराये ताने सकल शूर घर खाये
करके सर्वनाश सब ही को जन्म भयो कलिकाल बली को
तबते भारत भयो भिखारी अब लौं भोगि रह्यो दुख भारी

कलियुग-राज

श्रीयुत कलियुग-राज हमारे पाविन के कुल पालन हारे
भरतखण्ड में आय बिराजे बाजे सर्वनाश के बाजे
पूरण पाप प्रताप बढ़ायो परमालस्य अमित यश छायो
सोहति संग अविद्या रानी चूमति चरण अनीति सयानी
झूठ अधर्म पुत्र दो प्यारे जिन मिल सत्य धर्म धर मारे
मन्त्री चतुर कपट-छल दोऊ जिनको भेद न पावत कोऊ
काम-क्रोध मद-मोह मिलापी दम्भ भूत सेवक दुख पापी
जैसे सुभट कुकर्म घनेरे तैसे और बीर बहुतेरे
सेना जोर-बटोर बढ़ाई मार-मार कर करी चढ़ाई
भागे भूसुर डरके मारे थर-थर काँपें वेद बिसारे
राज छोड़ क्षत्रिन मुख फेरे भए बिदेशिन के सब चेरे
तज व्यापार बणिक हियहारे ज्यों-त्यों पालत पेट बिचारे
सेवा करे न पादज कोई वर्ण-व्यवस्था की बिधि खोई
डाह-फूटने बैर बढ़ायो चारों दिसि दरिद्र-दुख छायो

मादकता ने पाय पसारे लाखन कर डारे मतवारे
तज कुल-कानि अनेक अनारी सीखे जूआ, चोरी, जारी
घर-घर बाल-बिबाह बसाए साहस, बल, विज्ञान नसाए
चाहक चाह करें बनिता की बात न पूछें मात-पिता को
सबने तजी सनेह-सगाई स्वारथ की रहि गई मिताई
बंचक बने बिरक्त त्रिदण्डी पण्डित बन बैठे पाखण्डी
कल्पित ज्ञान-ग्रन्थ गढ़ डारे मनमाने मत-पन्थ पसारे
कटुबादी बंचक अभिमानी लम्पट-लठ कहावत ज्ञानी
जिनके तन पवित्र मन मैले तिनके परिमल-से यश फैले
पंडित रंक न आदर पावें धनी-धींग बस चतुर कहावें
मान घटो बोलिन की मा को आदर दूर भयो कविता को
देवनागरी मार भगायी टर्र-भरी भाषा मन भाई
बन-बन गाड-खुदा के प्यारे भये विरोधी हितू हमारे
बाजौ डमरू डाकटरी कौ ढोल फटौ धनवंतरजी कौ
शिल्पकला रहि गयी अधूड़ी ज्योतिष कुंडलिका में बूड़ी
चख मकार पंचक ने फोड़े हाथ-पाय सोहम् ने तोड़े
जय अनीशबादिन की जागी बेद ब्रह्म की चरचा भागी
जोड़-तोड़ बातें जा—ता की होड़ करें आशय—दाता की
करें प्रसिद्ध प्रसंग अधूरे सो समझें हम लेखक पूरे
मार बड़ाई पामरपन की लोभी लूट करें परधन की
घर में घोर करकसा घरनी करनी करें अमंगल करनी
सुन्दर बालक बिरले दीखें कुटिल कुरूप कुलक्षण सीखें
घेर रह्यो कलिकाल बिसासी भाग बचें कित भारतबासी
पै सुकर्म साथी हैं जिनके छूट जायँगे बंधन तिनके
यह मत मान साहसी जागो आलस और अविद्या त्यागो

राम-रुपैया

जग में सबसे बड़ौ रुपैया जानो याहि राम कौ भैया
प्यारो रूप राम को कारो याको रूप करे उजियारो
बिरले भक्त राम-रस चाखें याहि सदा उरमें सब राखें
भूखे मरें राम के प्यारे याके प्रिय भोगें सुख सारे
रामहिं चाहत मुनि व्रतधारी याके चाहक सब नर-नारी
राम देह त्यागे पर तारे यह जीवत ही संकट टारे
रमे रामजी दण्डक बन में रुपया रास करे लंदन में
निशिचर नीच रामने मारे याने जीत लिये खल सारे
होय राम रिसने गति खोटी यह रूँठे तो मिले न रोटी
काटे पाप राम की सेवा याकी सेवा सब सुखदेवा
समता करे राम रुपया की ऐसी घोर मंद मति काकी
रामहि जब-तब सीस नवाओ केवल रुपया के गुन गाओ
यह चोखी चाँदी को जायो चिलक चन्द्रमा-सौ बनि आयौ
याहि पाय दुख सहै न कोई बिन याके सुख लहै न कोई
धर्म, दान, तीरथ, व्रत, पूजा या बिन कौन करावे दूजा
या बिन जोरू मारे जूते कहे न लायो नाज निपूते
घर में भूखे बालक रोवें बाहर-बाहर के पत खोवें
लाज विचारे को जब आवे तब सब तज बिदेश को धावे
दुखिया घरनी को फटकारो करे अनेक उपाय बिचारो
रुपया संकट पाय कमावे पूरी पूंजी लै घर आवे
करे बड़ाई कुनबा सारो जाने घरबारी घरबारो
मेल करें अरि, मित्र, उदासी होंहिं सनेही नगर-निवासी
रुपया नाहिं दई की माया जाने दुख-दल मार भगाया
साँचो बात सुनो शंकर की राखे टेक रुपैया नर की

कंजूस रोगी

लाला एक भये बीमार गोबत गये बैद के द्वार
चरण बन्दि बोले कर जोर हे प्रभु, दूर करो दुख मोर
यों कर बिनय-बड़ाई भूरि पाई रोग-हारिणी मूरि
दिन-दिन होन लगो आराम गयो न घर से एक छदाम
एक दिन एक सनीचरदास आये लालाजी के पास
राम-राम कर बोले रोय कहौ कौन की औखद होय
सुन के शंकरजी को नाम बोले कहाँ ठगाये दाम
जाने नाहिं एक हू आँक मरो न उनकी औखद फाँक
सो सुन लाला भये उदास गयौ बैदजी कौ विश्वास
गहि गोबर गणेश की सीख यों कहि तजी बैद की भीख
महाराज सुन लीजै आज जो पै मेरो करो इलाज
तो अब बढ़िया औखद देउ अपनी एक बदन बद लेउ
बोले बैद मान के साँच देउ दवा को रुपया पाँच
अच्छा जी, कहि बातें मार घर को उठगये पल्ले झार
छोड़ी जग-जीवन की आस फेर न गये बैद के पास
बीते दिवस महा दुख पाय मरे न कौड़ी खरची हाय

रेलवे देवी

जय देवी सबकी सुख दाता जय बाहन-कुलकी गुरुमाता
को तनधारी तोहि न जाने को जन तेरो जस न बखाने
भूतल पै अनेक मग तेरे ठौर-ठौर शुभ सदन घनेरे
छीलत जात लोह की छाती सो गति भूपर सही न जाती
पल-पल की करतूति बिभूती सूचित करे दामिनी दूती
सुन तेरी कठोर किलकारी दौड़ें पंड्या, दास, पुजारी
दिन में स्वागत-सूचक झंडो रजनी में प्रकाश की हंडी
ताहि निहार मंद गति आवे मंदिर में थिरता कछु पावे

चढ़ें चढ़ाय चढ़ावा जाती ले-ले कर प्रसाद की पाती
उतरें पुण्य-क्षीण बहुतेरे काढ़ें तिनको तेरे चेरे
रुंड बिसार मुंड मुख फारे सुंड गजानन की जल डारे
सीस मिले धड़ सों पी पानी छाँड़े स्वास शेष की नानी
जब जय-सूचक घंटा बाजे काली किल-किलाय कर गाजे
धूमावती धमारो खोले फक्क फक्काफक फक-फक बोले
चेत कपाली ज्वाला जागे कर कछु मंद गमन धर भागे
यों घर-घर पै टिक-टिक धावे थके न पूरी थिरता पावे
तू कर कृपा जाहि अपनावे तजे न ताहि कुबेर बनावे
जो मग माहिं चरन गहि पावे ताहि तुरत बैकुंठ पठावे
भारत के लदुआ व्यापारी तेरे भक्तन के बेगारी
तेरे भक्त, पुजारी सेवी पूजें तोहि रेलवे देवी

अफ़ीमी की आफ़त

एक अफीमी की घरबारी बोली देखि रात अँधियारी
मैं पर पैयाँ लेहुँ बलैयाँ चेतो चौपड़ खेलो सैयाँ
सुन मोधू ने पीनक छोड़ी कहा न आवति नींद निगोड़ी
घोर कसूमा छान पिलाओ प्यारी पीछे खेल खिलाओ
तिय ने ताहि छकाई गोली फिर बाजी बद चौपड़ खोली
पाँसे डार चलाई चोटें पट-पट पिटीं पटापट गोटें
दाव अफीमी को जब आयो दीपक बढ़ो अँधेरो छायो
कैसे बरे तेल बिन दीया दिन में दाउ लीजियो पीया
सो सुन त्योरी-भौंह चढ़ा के बोले मोधूजी झुँझला के
जो न हमारो दाउ चुकावे सो पञ्चन में नाक कटावे
बोली नारि न यों इतराओ जाओ तेल मोल लै आओ
लै गिलास बौरे की नाईं मोधू चले तेल के ताईं
जाय तेल बनियाँ से लीया उसने वह बासन भर दीया
मोधू बोला रूँक न दीनी तैं मेरी पाई ठग लीनी

बनियाँ बोला लेगा किस में औंधाकर माँगा, ला इस में
अपने को शाबासी देकर चले रूँक पैंदी में लेकर
जब घर के अधबर में आए लड़के-बारे खेलत पाए
सब ने कहा न आगे जाओ मोधू नाना खेलो आओ
चील-झपट्टा खेल मचायो मोधू कानो काग बनायो
पड़-पड़ पड़ीं चाँद पै धौलें बोला मारो हौलें-हौलें
या जिस में दुख जाय न झेलो ऐसो खेल दूसरो खेलो
मोधूजी के जी की जानी सबने आँखमिचौनी ठानी
चोर मिहीचन के अनुरागी दबके मोधू पीनक लागी
पुल में बैठ जमायो आसन दाबे रहे तेल को बासन
खेल-खाल वे बालक सारे अपने-अपने घरन सिधारे
बीती आधी निसि अँधियारी घर में बाट निहारै नारी
तारौ मार चौक में आई खोज कंथ की थाँग लगाई
प्राणनाथ पुलिया में पाए दौड़ दुहत्तड़ मार जगाए
बोले—तैंने नहीं छिया मैं किस साले ने बता दिया मैं
जब जोरू ने जूती मारी तब टेसू ने आँख उघारी
देखी अपनी सगी लुगैया बोले अब मत मारे मैया
सो घर को घसीट ले आई तब मोधू ने हा-हा खाई
बोली नारि दई के मारे तेल कहाँ डारो हत्यारे
सो सुनि सुधि गिलासकी आई तेल-भरी पैंदी दिखलाई
बोली मार गाल में गुच्चा क्या इतना ही लाया लुच्चा
चौंके क्या मैं सिड़ी बनाया यह तो माँग रूँक में लाया
पूँछा और कहाँ रखदीना झट सीधा गिलास कर दीना
गिरा तेल पैंदी का सारा देख बहू ने मूसल मारा
ऐसी चोट पीठ में लागी सारी ऐंठ नशा की भागी
रोता घर से बाहर भागा हल्ला हुआ मुहल्ला जागा
पास-पड़ोसी सब जुरि आये ज्यों-त्यों मोधूजी समझाए
बड़ी देर लौं दुखड़ा रोये जाय भिसौरा में फिर सोये
या कन-कन में नींद न आई फेर न मारे आय लुगाई
रोवत रहे भोर लौं जागे उठ फिर पाय प्रिया के लागे

बीबी बोली निकल निपूते क्या अब और खायगा जूते
बस मेरे आगे से टरजा चाहे जित काला मुँह करजा
सो सुन स्वामी ने कर जोरे अब अपराध क्षमा कर मोरे
भामिनि भूल भई सो भोगी आगे ऐसी चूक न होगी
लोग-हँसाई में क्या लेगी कल का दावबोल कब देगी
सुन पति की मृदुता मुसकाई बीती बात याद फिर आई
और बढ़ी रिस भई न थोड़ी बेलन मार खोपड़ी फोड़ी
चोटें सहीं ख़ोपड़ी फूटी इतने पिटे अफ़ीम न छूटी

खिलाड़ी खटमल

रक्तबीज ने जो तन धारे सो जगदम्बा ने संहारे
कटकट कीट योनि में आये पै निज कारण माँहि समाये
सब ही ने निरस्थि तन पाये शोणित बुन्दाकार सुहाये
बड़े लाल-से लाल रँगीले छोटे चुन्नी-से चमकीले
करें किलोल बिसार उदासी खाट-खटोलन के सुखवासी
ठौर-ठौर पुर-नगर बसाये मनभाये पाये गढ़ पाये
चूरन की दरजें चौबारे बारग-बँगला सोखे सारे
बैठक बनी बान की लड़ियाँ सड़कें पाटिन की चोपड़ियाँ
या विधि जोर असँख्य समाजें खटमल वीर निशंक बिराजें
जब खटिया पै होय बिछाई तब जाने शिकार घर आई
मनखत मान उनींदौ सोवे सोवे नाहिं नींद को खोवे
ज्योंहीं आँख सेज पर झपके धीरन की धारा को लपकै
नींद सुवैया को तज भाजे खुर-खुर सी-सी की गति बाजे
धर-धर मारे मोटे-मोटे मल-मल मसले छोटे-छोटे
लाखन प्राण समर में छोड़ें पर भागें न बली मुख मोड़ें
ज्यों-ज्यों शत्रु करे मड़भत्ता त्यों-त्यों तन में पड़ें चकत्ता
बैरी एक झुँड को दोंचै चढ़ दूजौ दल कूल्हू नोंचे
ठौर-ठौर हर बार खुजावै फैली चुर कैसे कल पावे

तो अपनी विद्या के बल से बातें करो हंस के दल से
सिद्ध होय किसका मत खण्डित जाना जाय कौन है पंडित
सुन बोले उल्लू के जाये आप सभा जोरें हम आये
यों निशंक शठ उद्यत पाये तब मैंने मराल बुलवाये
घुग्घुन दिन हंसन निशि त्यागी संध्या दोउन को प्रिय लागी
राजहंस तब आय बिराजे उल्लू बैठ सामने गाजे
पक्षी दोउन के मतवारे शोभित भये सभा में सारे
मैं बोला सब को सुख दीजे सत्य-धर्म की चरचा कीजे
बोल उठे उल्लू के बच्चे सब झूँठे हम दोनों सच्चे
सुन समोद इनके अनुगामी बोले धन्य धुरन्धर स्वामी
उठी समरथन करन पतोरी कौन करै अब कें-कें कोरी
ये उलूक उपदेशक जैसे देखे-सुने न जग में ऐसे
दक्ष दिवाचर दल की दूती बोली रोष रोक तब तूती
धन्य आपने जो गुरु माने सो प्रगल्भ पंडित पहचाने
ऐसे मंत्र मनोहर बाँचे जिन में सब झूँठे ये साँचे
कहैं कहा अब हंस बिचारे तुम सारे जीते हम हारे।
सुन मेरे उलूक मतवारे फटफटाय कर पंख पुकारे
जीत लियौ हंसन को मेला अब चल चैन करौ सब चेला
आयुस पाय देख अँधियारी चहुँ दिशि धाये खग तम-चारी
सदल हंस निज गेह सिधाये मेरे घर उल्लू उड़ि आये
बैठ अटा पर बोले दोऊ हम-सो पण्डित और न कोऊ
बार-बार पूछें सब ही ते आज कहो हम कैसे जीते
निरे निरक्षर दोनों भाई बने विशारद लाज न आई
भैया, सुनो पींजड़े वालो तुम भी ऐसे उल्लू पालो

खचेरूलाल

नाम खचेरूलाल हमारो चट्टन में बर चट्ट करारो
हमतौ सबते घनो पढ़े हैं बात-बात में चढ़े-बढ़े हैं
ओलम और पहाड़े सारे बाकी, जोड़, गुणा पढ़ डारे
गिन-गिन फैज़ाअट फैलाई पढ़े ब्याज काँटे की धाई
चिट्ठी लिखनी सीखे ऐसी टोडरमल की ऐसी-तैसी
ताको रीति-भाँति सुन लीजे ता पीछें स्याबासी दीजे
सिरीरामजी सदाँ सहाई सिद्धस्सिरी पत्तरी भाई
सकल उपम्मा बिराजमाना बसे अजुध्या पुरी सुथाना
पालागें पहुँचे रघुबर कूँ राम-राम सारे घर-भर कूँ
आगे दिन पत घरी-घरी के परमानन्द होयँगे नीके
भाँ तो खेम-कुसल है भाई भाँ सुख राखे गंगा माई
और कछू अपरंच रंचना समाचार अब एक बंचना
आगे सुनो कथा भाईजी चिट्ठी तुमरी नहीं आईजी
सोई हमको फिकर बड़ी है का कछु इतकूँ नजर कड़ी है
भाँके समाचार पढ़ लेना चिट्ठी देखत चिट्ठी देना
अब मतलब की सुनो हमारी है दुकान में टोटो भारी
हुंडी नाहिं सिकारे कोई या ढब उतर जायगी लोई
कौड़ी रहै न रोकड़ बाकी रक़में देनी हैं जा-ता की
सबते 'कल-कल' का है बादा थोड़ा लिखा समझना जादा
जो न देउगे आप सहारो लौट जायगो टाट हमारो
भादों सुदी लिखी चौदस कूँ या सम्मत में धूर न भसकूँ
ऐसी चिट्ठी हम सीखे हैं मनमौजो मुनीम तीखे हैं
ज्यों रुजनामे खाते लेखे त्यों सब ढंग बहिन के देखे
सारे बेद बाद के सारे बेढब अच्छर मिलें हमारे
ढाँचो देखौ-भूली को-सौ एक बात में मतलब सौ-सौ
दो लल्ला लिख बाँचो लाला लूली, लाली, लूलू, लाला
चुन्नी चून चना चिन चैना दानी दान दीन दिन दैना
याही ढब को-सौ सब लेखो पन्ना-पन्ना में पढ़ देखो
बिधि के अंक सरापी कक्के जिनको पढ़ें कागदी पक्के
बने मुनीम अविद्या टरकी 'बम्-बम्' बोलो जै शंकर की

प्रशस्त पंचक

पुरुषोत्तम परशुराम

चूका कहीं न हाथ गले काटता रहा,
पैना कुठार रक्त—बसा चाटता रहा ।
भागे भगोड़-भीरु भिड़ा धीर न कोई,
मारे महीप-वृन्द बचा वीर न कोई ।
सुप्रसिद्ध राम-जामदग्न्य का कु-दान है,
महिमा अखण्ड ब्रह्मचर्य की महान है।

महावीर हनुमान

सुग्रीव का सुमित्र बड़े काम का रहा,
प्यारा अनन्य भक्त सदा राम का रहा ।
लङ्का जलाय काल खलों को सुझा दिया,
मारे प्रचण्ड दुष्ट दिया भी बुझा दिया ।
हनुमान बली वीर-वरों में प्रधान है,
महिमा अखण्ड ब्रह्मचर्य की महान है ।

राजर्षि भीष्मपितामह

भूला न किसी भाँति कड़ी टेक टिकाना,
माना मनोज का न कहीं ठीक ठिकाना ।
जीते असंख्य शत्रु रहा दर्प दिखाता,
शय्या शरों की पाय मरा धर्म सिखाता ।
अब एक भी न भीष्म बली-सा सुजान है,
महिमा अखण्ड ब्रह्मचर्य की महान है ।

महात्मा शंकराचार्य

संसार सारहीन सड़ा-सा उड़ा दिया,
अल्पज्ञ जीव मन्द दशा से छुड़ा दिया।
अद्वैत एक ब्रह्म सबों को बता दिया,
कैवल्य-रूप सिद्धि-सुधा का पता दिया।
भ्रम-भेद-भरा शंकरेश का न ज्ञान है,
महिमा अखंड ब्रह्मचर्य की महान है।

महर्षि दयानन्द

विज्ञान-पाठ वेद पढ़ों को पढ़ा गया,
विद्या-विलास विज्ञ-वरों का बढ़ा गया।
सारे असार पन्थ-मतों को हिला गया,
आनन्द सुधा-सार दया का पिला गया।
अब कौन दयानन्द यती के समान है,
महिमा अखंड ब्रह्मचर्य की महान है।

'समस्या-पूर्तियाँ'

आदि—

'समस्या-पूर्तियाँ'

'निशाकर निहारे लगी'

सास ने बुलाईं घर-बाहर की आईं सो,
लुगाइन की भीर मेरो घूँघट उघारे लगी।
एक तिन में की तृण तोरि-तोरि डारे लगी,
दूसरी सराई राई-नोन की उतारे लगी।
शंकर जिठानी बार-बार कछु बारे लगी,
मोद-मढ़ी ननदी अटोक टोना टारे लगी।
आली! पर, साँपिन-सी सौति फुसकारे लगी,
हेरि मुख 'हा' कर निशाकर निहारे लगी।

'बाँकुरे बिहारी पै'

१

चली चरचा चित चोरी की, चढ़ेगी रंगत होरी की।
इतै लाड़ली तिहारी पै, उतै बाँकुरे बिहारी पै।

२

मोर बैठो मन लिखे बेलमा बचन कढ़ी,
ताने री, त्रिभंगी तन नवनि हमारी पै।
कूबरी ने कूबर की लटक लखाय ऐंठ,
अपनी लपेटी छैल छल-बल-धारी पै।
फैली निबुराई की नवेली अलबेली बेलि,
पालौ पड़ौ शंकर फबीली फुलबारी पै।
सूधै न मिलेगी बीर बाही कुटिला की भाँति,
बाँकी बन-बन चलौ बाँकुरे बिहारी पै।

'बसन्त ऋतु आई है'

बीजुरी-सी व्यापक नवीन तरु-पातन में,
सेमर, पलासन में आग-सी लगाई है।
शंकर परस विष वारुणी बसाये फूल,
फुंकरत ब्यालसौ समीर दुखदाई है।
रोवत मिलिन्द-वृन्द कोकिल कराहत हैं,
कैसी केलि-कुंजन में व्याधि-सी समाई है।
पापी प्राणघाती पंचबाण की पठाई हाय,
प्यारे बिन बैरिन बसन्त ऋतु आई है।

'छोड़-छोड़ बस-बस के'

कन्दुक-से गोल-गोल नील कंचुकी में कसे,
कलश समान-भरे काम-केलि रस के।
होत पारिजात फल भोगिन के हाथन में,
वज्र-से वियोगिनि के गातन में कसके।
शंकर निशंक परियंक पर लंक अंक,
दाब के मयंकमुखी जाके कुच मसके।
चोली बन्द टूटे, स्वेद छूटे, पै न बोली भोली,
'सी'कर सिवाय 'छोड़-छोड़' बस-बस के।

'मेरे अड़ जायँगे'

ताकत ही तेज न रहेगो तेजधारिन में,
मंगल मयंक मन्द पीले पड़ जायँगे।
मीन बिनमारे मर जायँगे तड़ागन में,
डूब-डूब शंकर सरोज सड़ जायँगे।
खायगो कराल काल केहरी कुरंगन को,
सारे खंजरीटन के पंख झड़ जायँगे।
तेरी अँखियान ते लड़ेंगे अब और कौन,
केवल अड़ीले दृग मेरे अड़ जायँगे।

'हाँसी-सी करति जात'

मंगल करनहारे कोमल चरन चारु,
मंगल-से मान मही-गोद में धरत जात।
पंकज की पाँखुरी-से आँगुरी अँगूठन की,
जाया पंचबाणजी की भँवरी भरत जात।
शंकर निरख नख नग से नखत नभ,
मण्डल सों छूट-छूट पायन परत जात।
चाँदनी में चाँदनी के फूलन की चाँदनी पै,
हौले-हौले हंसन की हाँसी-सी करत जात।

'होजरा के जाये तेरी चेरी बन जाऊँगी'

देख, सदा यों न पजरूँगी बिरहानल में,
प्यारे सों मिलाप कर जीवन बिताऊँगी।
छोड़ूंगी न छूटे सुख-भोगन की लालसा को,
बैरी काल-ब्याल के न मुख में समाऊँगी।
बींधे मत अंग अबला के तीखे तीरन सों,
हा, न इन फूलन पै फूल बरसाऊँगी।
शंकर के आगे जो अनङ्ग हू बनो रह्यो तो,
हीजरा के जाये तेरी चेरी बन जाऊँगी।

'मन मोर तोर चेरो है'

चाँदनी में चाँदनी के फूलन की चाँदनी पै,
बैठी देख रूप को उजारो टुक हेरो है।
एक बेर देख सरमाई कुछ देर फेर,
आनन दुरायो क्यों चुरायो चित मेरो है।
घूँघट न मारो बेग टारो अँधियारो देख,
मन्द भये तारे मानो चन्द्र राहु घेरो है।
दूर कर सारी अँधियारी मुख-चन्द्र खोल,
शंकर चकोर मन मोर तोर चेरो है।

'मन की खटक गई'

लम्बे-लम्बे झोटन सों झूलति ही सौतिनकी,
बिरबा की डारिन में पटली अटक गई।
लागत ही झटका उखड़ गयो आसन पै,
ताड़िका-सी डोरिन को पकड़े लटक गई।
शंकर छिनार पट्ट पाथर पै टूट पड़ी,
फूटो सिर, फाटी नर, पिलही पटक गई।
छूट गई नारी, सोरी परि गई सारी आज,
मरि गई दारी मेरे मन की खटक गई।

'बीजुरी के मान मारे हैं'

तेरे मुख-चन्द पै कलाधर ते दूनी कला,
पाई सुन सारे उपमान हिय हारे हैं।
कुन्द की कलीन में लगाई बेकली ने आग,
बेदर ने दाड़िम के दाने चूँस डारे हैं।
हार भई हीरन के हारन की आब गई,
मोतिन की मालन के मन्द भये तारे हैं।
शंकर बतीसी दीख-दीख दुर-दुर जात,
बिहँसि-बिहँसि बीजुरी के मान मारे हैं।

'चटाक चित्त चोरि के कपाट पट्ट दै गई'

उठी उमङ्ग अङ्ग में रँगी अनङ्ग-रङ्ग में,
सनेह की तरङ्ग में तरी निमग्न है गई।
बिसार काम-काज को लुकाय लोक-लाज को,
सखीन के समाज को चुकाय द्वार पै गई।
रह्योन धीर बाल को लगाय लाग जाल को,
फँसाय नन्दलाल को हँसाय सङ्ग लै गई।
थकी सुधा निचोरि के बहोरि भ्रू मरोरि कै,
चटाक चित्त चोरि के कपाट पट्ट दै गई।

'बीजुरी न मारे बज्रमारे बदरान को'

साज के सिंगार काम-केलि को नवेली नारि,
आरती को थार ले तयार भई जाने को।
कारी अँधियारी बरसत बहु बारी नारी,
पकरे किबारी ठारी सोचत बिथान को।
मावस की रात कारी पावस की घात भारी,
नावस की बात हारी कैसे मिलूँ कान्ह को।
बोली बदरान सों बुझै न बीजुरी की आग,
बीजुरी न मारे बजमारे बदरान को।

'चाँदनी पै चन्द्र चूर-चूर कर डारो है'

लाई वृषभानु की दुलारी उत गोपिन को,
शङ्कर खिलाड़ी इत नन्द को दुलारो है।
रंगन सों गौरिन के गात गुलेनार भये,
श्याम हरियालो भयो कौन कहै कारो है।
लाल ने अबीर औ गुलाल लै रँगीली रँगी,
लाड़िली की चादर पै चौगुनो बगारो है।
मींड़कर मंगल समंगल दिखाय मानो,
चाँदनी पै चन्द्र चूर-चूर कर डारो है।

'मेरे मन भाये हैं'

जीत शिशुता को ऊँचे उर अवनीतल पै,
जोबन महीपति ने मन्दिर बनाये हैं।
कैधों जग-मोहन को मोह की थली पै रति—
नायक ने कंचन के कलश धराये हैं।
शङ्कर-से कामद फबीले फल चीकने धों,
सुन्दर शरीर सुर-तरु के सुहाये हैं।
सम्पुट सरोज के-से तेरे कुच पीन प्यारी,
गोल-गोल कन्दुक-से मेरे मन भाये हैं।

'घायल करत हैं'

तोर डारे गुच्छक निचोर डारे निम्बू और,
फोर डारे नारिकेल कन्दुक डरत हैं।
ताय डारे कंचन के कलश बिगार डारे,
चक्रवाक धर मोर पायँन परत हैं।
कानन को मूँद मुनि मौन दुरे कानन में,
शंकर धराये धीर धीर न धरत हैं।
छैलन की छातिन को छोल-छोल गोरी तेरे,
उरज अमोल गोल घायल करत हैं।

'गोलमाल है'

सौतिन के सारे सुख भोगन की झाकसी कि,
लालन की लगन-लता को आलबाल है।
उदर-मुकुर पै चिबुक-प्रतिबिम्ब है कि,
तन-बन बीच मीन केतन को ताल है।
शंकर ये रोम-राजि व्यालन की बाँबी है कि,
रूप-रतनाकर में भँवर विशाल है।
तेरी नाभि-कूप में गिरेंगे उपमान सारे,
कौन कहे वारता यहाँ की गोलमाल है।

'तीन तिल कारे हैं'

बिधि ने ललाट में असीम सुख-भोग लिख,
लेखनी के नीके तापहारी कन झारे हैं।
चितवत में धौं मुख-चन्द पै चिपक रहे,
चाहक चकोरन की आँखन के तारे हैं।
कैधों महा शोभा की थली पै रति-नायक ने,
शंकर ये बीज रसराज के बगारे हैं।
भाग-भरे भाल पर गोरे गोरे-गाल पर,
चिबुक बिशाल पर तीन तिल कारे हैं।

'अनेक अटकत हैं'

आनन की ओर चले आवत चकोर-मोर,
दौर-दौर बार-बार बेनी झटकत हैं।
बैठ-बैठ शंकर उरोजन पै राजहंस,
हीरन के हार तोर-तोर पटकत हैं।
झूम-झूम चखन को चूम-चूम चंचरीक,
लटकी लटन पै लिपट लटकत हैं।
आज इन बैरिन सों बन में बचावे कौन,
अबला अकेली मैं अनेक अटकत हैं।

'बार-बार बाँधे बार-बार कस-कस कर'

स्वच्छ स्वेत सारी साज सुन्दर समोद जल,
केलि करें शंकर सरोवर में धसकर।
संग अन्य अंगना अनंग अंगना-सी आप,
अंग न उघारत बरुण गेह बस कर।
छूट-छूट छाये कच आनन छपाकर पै,
पीवत पियूष मानो पन्नग परस कर।
बारि-बीच बैठी बाल काढ़ कर बारिज-सों,
बार-बार बाँधे बार-बार कस-कस-कर।

'उपमा न पाई है'

आपस में अँखियाँ लरैं न कहूँ याही डर,
मेंड़ मरियाद की बिरंचि ने लगाई है।
कैधों नीकी नाक-सी निवासथली पाय कर,
छबि ने छपाकर पै मोदमढ़ी छाई है।
तो तन निहार हारि जाय दुरे हारन में,
तोतन नें तो तन पै नाक-सी कटाई है।
शंकर नकीले कवि खोज-खोज हारे पर,
एरी तेरी नासिका की उपमा न पाई है।

'मन में बसी रहे'

आनन निशेश केश कारे अरुणारे होट,
भृकुटी कुटिल लगी चखन मसी रहे।
कम्बु कल कण्ठ मटकारे प्यारे कंज कर,
कंचन कलश कुच कंचुकी कसी रहे।
छीण कर शंकर चिबुक प्रतिबिम्ब नाभि,
जाँघ-कदली से पग जावक लसी रहे।
गोर गात सारी जातरूप रँग धारी,
मुसकात प्राण प्यारी मेरे मन में बसी रहे।

'आरे भृकुटीन के चलाये हैं'

मोहिनी मनोहर पै मोह की पताका है कि,
मारण के मन्त्र मृग-मद सों लिखाए हैं।
काल की कटारी है कि प्यारे मुखचन्द पर,
काली लट नागिनि के छौना बढ़ि आए हैं।
शंकर पै काम ने कृपाण कोप काढ़े हैं कि,
रोष-भरे रूप ने शरासन चढ़ाये हैं।
घूरत ही घायल भए री तेरे जोबन ने,
लाखन पै आरे भृकुटीन के चलाए हैं।

'पेट फार दीजिए'

माखन को माँड़ पिण्ड पान सों बनाय कर,
पाटल-प्रसून को सुरंग ढार दीजिए।
आड़ी-आड़ी खींचिए तरंगिनी-सी तीन धार,
बीच में भँवर की फबन डार दीजिए।
ऊपर कों एक सीधी शंकर लकीर काढ़,
पंकज को तापर पराग झार दीजिए।
ऐसे बर बानक बने की उपमा को याके
उदर के आगे डार पेट फार दीजिए।

'बिरहीन को कराल काल'

सुन्दर शृंगार अवतंस सारे हार भार,
अंग हथियार हाव-भाव चण्ड चाल-ढाल।
शंकर निशंक निठुराई रिस राखे उर,
वीर-वर बाँको तेरो जोबन बिशाल बाल।
याने बैनी म्यान सों निकास मन मेरो काट,
पटिया फरी पै धरी माँग करबाल लाल।
योगिन को बैरी भलो चाहत है भोगिन को,
काम को सँगाती बिरहीन को कराल काल।

'मज्जन करत हैं'

सीस पग तीर नीर गोरता तरंग तुण्ड,
त्रिबली, चिबुक, नाभि भँवर परत हैं।
खाड़ी भुज पाद मध्य मेरु कुज शृंग हिम,
कंचुकी की ओट ठोक दीख न परत हैं।
केश काल कच्छप कपोल श्रुति सीप जोंक,
भृकुटी कुटिल झष लोचन चरत हैं।
शंकर रसिक सुख-भोगी बड़भागी लोग,
ऐसे रूप-सागर में मज्जन करत हैं।

'बिम्ब अरुणारे ये'

घूँघट उघर गयो शंकर के आगे आज,
आरसी-से उज्ज्वल अचानक निहारे ये।
फूले-फूले कोमल गुलाब जैसे फूलरहे,
गोरे-गोरे गोल-गोल गाल गुदकारे ये।
चाह कर चुम्बन की चरचा चलावत हीं,
रोष भरि आयो भये भभक अँगारे ये।
मानो रवि-मण्डल समायो शशि-मण्डल में,
दीखत हैं उनके दो बिम्ब अरुणारे ये।

'सुरंगी कुच प्यारी दो'

पीरी भई दाड़िम के फूल की-सी पाँखुरी,
लुहारी भई कदली के सम्पुट-सी धारीदो।
नीली भई बैंगन की फाँक-सी फबीली भई,
पाटल कमल की कली-सी धौरी धारी दो।
देख भई शंकर कँदूरी हू ते दूनी लाल,
भोर के दिनेश की-सी कोर अरुणारी दो।
चोली पै कुचन रंग और ही जमायो,
पचरंग किये चोली ने सुरंगी कुच प्यारी दो।

'समर से'

शंकर सुगन्धिबारे सारे सटकारे-कारे,
प्यारे मृगमद-से भुजंग-से—भ्रमर-से।
छूट-छूट छिटके छबानलों छबीले छोर,
चमकें चिकुर चारु चीकने चमर-से।
बालछड़ केशर सिवार से बँधाये कौन,
मकरी के तार हू ते पतरी कमर-से।
ऐसे या सुकेशी के सुकेश तेरे केशन की,
होड़ छोड़ मोड़ मुख जायँगे समर से।

'प्यारी 'सी' करत जात सीकर परत जात'

शंकर सुगन्ध मन्द शीतल समीर बहै,
तड़क-तड़क ता पै तोयद तरत जात।
चन्द चापि चारो दिसि चपला चपल चाल,
चमक-चमक चकफेरी-सी भरत जात।
झंझा झकझोरन सों अम्बर उड़ाय देत,
झरना झरत तन तपत हरत जात।
पौढ़ी परियंक पर पी कर धरत जात,
प्यारी 'सी' करत जात सीकर परत जात

'बियोगिन को चन्द होत'

यामिनि में शंकर छपाकर की छूटी छटा,
रजनी निरखि उर मत्त निधि नन्द होत।
जैसो-जैसो पावत मिलाय काल ताही चाल,
घट-बढ़ पूरो मिले छूटे दिन मन्द होत।
दम्पति से लगन लगाय नित केलि करे,
रज सिस प्रतिमास तीन तिथि बन्द होत।
भोगिन को देखि अलिराशि में प्रवेश करे,
फारे मन बाधक बियोगिन को चन्द होत।

'टेर-टेर तरसत हैं'

पावस में शंकर चमक चपला की घन,
सघन गगन घेर-घेर दरसत हैं।
धौरे-धौरे धूमरे धुमारे कारे-कारे,
गरजत दईमारे बेर-बेर बरसत हैं।
कूकें सुन घोर मोर अम्बर की ओर,
'पी-पी' बोलत पपीहा हेर-हेर हरसत हैं।
छाये घनश्याम, नहीं आये घनश्याम,
ब्रज बाम 'श्याम-श्याम' टेर-टेर तरसत हैं।

'चोली फट जावेगी'

शंकर सों पूछ के जो बसन सुरंग आज,
साजत हो शोभा सबही के मन भावेगी।
नाभि के निकट नीबी घूरत में लोगन को,
घेरदार घाँघरी घुमेर में घुमावेगी।
कामदार धानी कुरती की छबि छीन चित,
ओढ़नी के नीचे चोटी लटक दिखावेगी।
मानिए मँगावो और. ओछी है उतारो याहि,
खेंच के न बाँधो बन्द चोली फट जावेगी।

'मन में बसी रहे'

सोहति सुरंग सारी सोहनी किनारीदार,
 उन्नत उरोजन पे कंचुकी कसी रहे।
बीजुरी-से भूषण बिराजें अङ्ग-अङ्गन में,
 पायन महावर की लालिमा लसी रहे।
आँखन में लाज बसे वाणी में बसीकरन,
 धींगरा धनी की धज ध्यान में धसी रहे।
शंकर को छोड़ छवि नायिका नवेली तेरी,
 कामी कविराजन के मन में बसी रहे।

'माँजनों फड़ाऊँगी'

अपना प्यारे पुत्र-सा, देख पड़ोसिन लाल,
अलबेली बाला लड़ो उफना कोप कराल।
पूत जनो मेरे भरतार की-सी सूरत को,
 यों न लाल लोहे की अँगूठी में जड़ाऊँगी।
दायर करूंगी दावा जज्ज की अदालत में,
 दाम दे वकील को मुक़द्दमा लड़ाऊँगी।
जीतूँगी तो दारी, न फलेगी यारी शङ्कर की,
 हारी तो अपील हाईकोट में अड़ाऊँगी।
छोड़ूँगी न पिण्ड छोना छीनूँगो छिनार तेरो,
 रोंदूँगी विलायत लों माँजनों फड़ाऊँगी।

'बीते जात'

धाय-धाय धूमरे-धुमारे कारे धाराधर,
 बरसें न शोणित बियोगिनि को पीते जात।
मेरे अङ्ग-अङ्ग में मिलाप की उमङ्ग उठे,
 ढङ्ग अब शङ्कर अनङ्ग के न जीते जात।
आली तड़िता की भाँति तड़प-तड़प रहूँ,
 हाय, ऐसे औसर बिलास-रस रीते जात।
आप घर आवे न, बिदेश में बुलावे मोहि,
 प्यारे बिन सारे दिन पावस के बीते जात।

'झर में झुलावेगो'

रूठ रह्यो रसिया रिसाय ऋतु पावस में,
बाँसुरी बजाय बीर अब न बुलावेगो।
बैरी बन शङ्कर सतावेगो बियोग बाको,
बाबरी बनाय बन-बन में डुलावेगो।
गरज के रोयबो सिखावे घनश्याम हमें,
सौति की न सुधि घनश्याम को भुलावेगो।
आली मिल गाओ गए कातिक के गीत कान्ह,
कूबरी को सावन के झर में झुलावेगो।

'दृग फेरि-फेरि'

आवत है जात है अनेक बार याही मग,
ठाड़े हू रहत है ठगे-से बड़ी देरि-देरि।
बालम के बाहर गए पै चितचोर नित,
फेंकत है फूल हँसि मेरो मुख हेरि-हेरि।
बोलि-बोलि शङ्कर परौसिन की बाखर में,
संग रस-रङ्ग बरसावति है बेरि-बेरि।
आज बिन बात ही सनेह सब सूख गयो,
रूपक रुखाई को दिखायो दृग फेरि-फेरि।

'चुराये कहाँ जात हो'

देखत की भोरी मन श्याम तन गोरी,
गारी देत कोरी-कोरी गोरी नेक न सँकात हो
मेरी गेंद चोरी तापे ऐसी सीनाजोरी,
रिस थोरी करो शङ्कर किशोरी क्यों रिसात हो
खोल के गहावो नहीं चोली दिखरावो,
जो न होय घर जाओ, आवो काहे सतरात हो
सारी सरकावो अँचरा में न दुरावो,
लावो कंचुकी में कन्दुक चुराये कहाँ जात हो

'आह कढ़ जायगी'

शंकर नदी-नद नदीसन के नीरन की,
भाप बन अम्बर ते ऊँची चढ़ जायगी ।
दोनों ध्रुव छोरनलों पल में पिघल कर,
घूम-घूम धरनी धुरी-सी बढ़ जायगी ।
झारेंगे अँगारे ये तरनि-तारे तारापति,
जारेंगे खमण्डल में आग मढ़ जायगी ।
काहू विधि विधि की बनावट बचेगी नाहिं,
जो पै वा वियोगिनि की आह कढ़ जायगी ।

'कमर की अकथ कहानी है'

पास के गये पै एक बूँद हू न हाथ लगै,
दूरसों दिखात मृगतृष्णिका मे पानी है ।
शंकर प्रमाण-सिद्ध रंग को न संग पर,
जान पड़े अम्बर में नीलिमा समानी है ।
भाव में अभाव है अभाव में त्यों भाव भर्यो,
कौन कहे ठीक बात काहू ने न जानी है ।
जैसे इन दोउन में दुविधा न दूर होत,
तैसे तेरो कमर की अकथ कहानी है ।

'सुर-पादप से फल हैं'

उन्नति के मूल ऊँचे उर अवनीतल पै,
मन्दिर मनोहर मनोज के यमल हैं ।
मेल के मनोरथ मथेंगे प्रेम-सागर को,
साधन उतुंग युग मन्दर अचल हैं ।
उद्धत उमंग-भरे यौवन खिलाड़ी कै ये,
शंकर से गोल कड़े कन्दुक युगल हैं ।
तीनों मत रूखे रसहीन हैं उरोज पीन,
सुन्दर शरीर सुरपादप के फल हैं ।

'ईश ने हमारी ठकुरानी ठीक तू करी'

भें-भें करती हैं भेड़ें भोंड़े मुख लार बहे,
चाट-चाट चोंड़े को कलोल करें कूकरी।
लोमड़ी खिलावें खेल बानरी बिलोकती हैं,
गावें गुण गोदड़ी सराहती हैं, शूकरी।
भूतनी पलोटें पाँय चाकरी चुड़ैल करें,
डामाडोल डोलें डरें डाइन डरूकरी।
शंकर के सारे गण पूजत पुकारत हैं,
ईश ने हमारी ठकुरानो ठीक तू करी।

'मार को मारो बटोही मरो है'

देखा पन्थी तरुण का शव रसाल के पास,
कारण जाना अन्त का हाय, बसन्त-विकास।
तीर लगो न गढ़ी बरछी उर घाइल घातक ने न करो है,
एकहु ठौर चुटैल नहीं, नहिं गाज परी न कहूँ पजरो है।
व्याधि न बूझिय रे कछु शंकर तो फिर क्यों बिन प्राण परो है,
बौरे रसाल बतावत हैं बस, मार को मारो बटोही मरो है।

'पीरी फटी पर पीउ न आयो'

लाली ललानि दिवाकर की गिरि अस्त को शंकर चन्द सिधायो,
फूले सरोज तड़ागन में अलिवृन्द विलोक महा सुख पायो।
आन मिले निशि के बिछुड़े चकई-चक यामिनि शोक बिहायो,
मोहि को रोवत राति कटी अब पीरी फटी पर पीउ न आयो।

'पावक-पुञ्ज में पङ्कज फूल्यौ'

१

झूमति आयी नवेली भटू जनु जोबन-हाथी अनंग ने हूल्यौ,
ठाड़ी भई मनभावन के ढिंग शंकर नेह उमंग सों ऊल्यौ।
लाल दुकूल के घूँघट में धन कौ मुख देख धनी सुधि भूल्यौ,
बौरे की भाँति पुकार उठ्यो अरे, पावक-पुञ्ज में पङ्कज फूल्यौ।

२

जो कर प्यार मनोमुखता पर मत्त भयो कुल-पद्धति भूल्यौ,
भेद-भरी अनरीति गही झुकि झंझट झाँखर झाड़ में भूल्यो।
शंकर मानव-मण्डल सों उठि उन्नति के उर पै चढ़ि ऊल्यौ,
बैठ्यो बिगाड़ के बीच सुधार कि पावक-पुञ्ज में पङ्कज फूल्यौ।

'बनाय गयो घनश्याम बिहारी'

शंकर ये बिथुरी लट हैं कि भई सजनी-रजनी अँधियारी,
माल मनोहर मोतिन की उरभी उर पै कि बही सरिता री।
दो फल हैं कि दुकूलन पै चकई-चक भोग रहे दुख भारी,
स्वेद चुचात कि पावस तोहि बनाय गयो घनश्याम बिहारी।

'मुख मोरे लगी तृण तोरे लगी'

तज मान मिली धन प्रीतम सों पुनि प्रेम-पियूष निचोरे लगी,
रति के रँग माँहि उमंग-भरे मन-भावन को मन बोरे लगी।
परिरम्भन चुम्बन के रस में बिपरीत रसायन घोरे लगी,
कवि शंकर सो छबि देख सखी मुख मोरे लगी तृण तोरे लगी।

'चन्द फँस्यो जनु फन्द फनी के'

केलि करे रस-रंग-भरी परियङ्क परी धन संग धनी के,
दे झटका-पटकी लटकी लट छूट के बन्धन बैनी बनी के।
आनन पै बिथुरे कच कुंचित मेचक चारु सुगन्ध घनी के,
शंकर सो छबि देख कहैं कवि चन्द फँस्यो जनु फन्द फनी के।

'घनो दुख पाय परी है'

शंकर आज परोसिन सों हँस-बोल कहा अनरीति करी है,
जो सुधि पावत ही घरनी उपताप-भरी जिय जार जरी है।
फेंक दिए पट-भूषण भोग-विलास तजे मुदिता बिसरी है,
जाय मनावहु बेग चलो कर कोप घनो दुख पाय परी है।

'केहि कारण कूप में डोलत पानी'

मो हिय में प्रतिबिम्ब गए गढ़ तोर उरोजन के ठकुरानी,
शंकर सो घट बोरत ही झट काढ़ लिए पर पीर न जानी।
श्रीहत हों उन श्री फल दो बिन सुन्दरता उर माँहि समानी,
जानत हो फिर पूँछत हो केहि कारण कूप में डोलत पानी।

'सावन झूल रही हैं'

आज अनेक नवीन बधू जुर खेलत हैं दुख भूल रही है,
लाज-भरी सबकी अँखियाँ बरछी-सी चहूँ दिशि हूल रही है।
सारी करें रस की बतियाँ छतियाँ अँगियान में फूल रही है,
शंकर दामिनि-सी दमकें मिलि कामिनि सावन झूल रही हैं।

'ह्वैकर पाहुनि-सी इत प्यारी'

जापर प्रेम पसारत है मन मत्त भयो कुल-कानि बिसारी,
छूट गए घर-बाहर के सब शंकर रूठि गई घरबारी।
सो धन मोहि महा दुख दे जबतें अपनी प्यौसार सिधारी,
आवत है कबहूँ-कबहूँ अब ह्वैकर पाहुनि-सी इत प्यारी।

'बात बनाबो लला'

१

कज्जल-रेख कपोलन पै अरु जावक भाल छिपाबो लला,
नैन कसूमल रंग रहे बिथुरी अलकें अलसाबो लला।
रात जहाँ रस-भोग-विलास छके उनके घर जाबो लला,
जान परे दिन अन्तर के सो वृथा जनि बात बनाबो लला।

२

बेंदी ललाट लसे कजरान कपोलन को दरसाबो लला,
नींद-भरी अँखियाँ झपकें न जम्हाय यहाँ अलसाबो लला।
जा घर रात निशंक रहे अबहू उत ही उठ जाबो लला,
हार गईं तुमते हम हाय, वृथा जनि बात बनाबो लला।

'पीरी फटी पर पीउ न आयो'

लाली ललानी दिवाकर की गिरि अस्त को शंकर चन्द सिधायो,
फूले सरोज तड़ागन में अलिवृन्द बिलोक महा सुख पायो।
आय मिले निशि के बिछुरे चकई-चक यामिन शोक बिहायो,
मोहि को रोवत रात कटी अब पीरी फटी पर पीउ न आयो।

'बाल मराल के जाये'

यौवन-मानसरोवर में जुग हंस मनोहर खेलन आये,
मोतिन के गल हार निहार अहार-बिहार मिले मनभाये।
कंचुकी कंज पतान की ओट दुरे लट नागिन के उर पाये,
देख छिपे, छिपके पकड़े धर शंकर बाल मराल के जाये।

'किधौं है ऋतुनायक'

शंकर संग अनंग उमंग-भरे रस-रंग महा सुखदायक,
कुंजत कोकिल गुंजत भृंग निकुंज लता तरु पुंज सहायक।
आज अली इन चारन में कहि कौन विशेष विनोद विधायक,
नायक है, रतिनायक है, रसनायक है, किधौं है ऋतुनायक।

'दाँतन काटी पड़ी हैं'

वारिज-सी मुख में दशनावलि कुन्द कुलीन की बाढ़ खड़ी हैं,
विद्रुम याम के नीचे तले अथवा गज-मोतिन की दुलड़ी हैं।
लाल महीज में हीरक चन्द को चीर कनी कर कैधौं जड़ी हैं,
शंकर आगे बतीसी के ये उपमा सब दाँतन काटी पड़ी हैं।

'बैठ हुतासन आहुति डारे'

पीतम की बिरहागिन हा दिनरात बियोगिनि को उर जारे,
रोवत-रोवत सूज गए चख खोलति ना पलकें जल ढारे।
दुःख दशा अवलोक दयाकर यों कवि शंकर क्यों न पुकारे,
मोम के मन्दिर माखन कौ मुनि बैठ हुतासन आहुति डारे।

'करेंगे बड़ाई कहा कवि तेरी'

ऐसी न देखी सुनी कबहू हम जैसी कि आज लखी छबि तेरी,
शंकर सर्द भयो मुख पेखि शशी दुति देख जरे रवि तेरी।
आँखिन सों बिजुरी-सी गिरे मुसकान प्रहार करे पवि तेरी,
कैसे चितेरे बनावेंगे चित्र करेंगे बड़ाई कहा कवि तेरी।

'कोउ लाख चबाउ करो तो करो'

यार सों आँख लगी न छुटै अब लाज पै गाज परो तो परो,
माय के सासु को गेह बड़ो विष खाय कुटुम्ब मरो तो मरो।
आप ने काम सों काम हमें कुल के कुल नाम धरो तो धरो,
शंकर प्यारे सों नेह बढ़े कोउ लाख चबाउ करो तो करो।

'आवे न आप पठावे न पाती'

शंकर-शत्रु वियोगिनि के उर में शर मारत जारत छाती,
मार की मार सों मारी फिरें बिरहीन के पाछे परो तन-घाती।
पापी अनंग ने अंग दह्यो बचि है जो बचावहि श्याम सँगाती,
हाय दई, गति कैसी भई ब्रज आवे न आप पठावे न पाती।

'पठवो पतियाँ'

तुम सौतिन संग रहो-बिहरो हमसे न करो रस की बतियाँ,
लग जाय न आग उरोजन में परियंक चढ़ो न छुओ छतियाँ।
कित भूल रहे फिर जाहु वहीं जिनके हिय लाग कटी रतियाँ,
कवि शंकर आप न जाउ उन्हें घर आवन को पठवो पतियाँ।

'स्वेत बलाहक'

नाहिं मिले वह स्वाँति-सुधा नित जाहि चहे चित चातक चाहक,
शंकर सो गति मो मन की जनु बोहित वारिधि मे बिन बाहक।
हाय, वियोगज तापन पै अक तोपति दामिनि दर्प बिदाहक,
लाय लगाय गयो घनश्याम न ताहि बुझावत स्वेत बलाहक।

'जनु मज्जन करत मयंक मानसर में'

अवलोक अटा पर आनन भामिनि को,
समझो प्रिय शंकर मण्डल दामिनि को।
फिर या ढब देख्यो लै दर्पण कर में,
जनु मज्जन करत मयंक मानसर में।

'प्राण प्रिया बिन'

काकोदर, कोदण्ड, कंज, कुज, कीर, कलाधर,
कम्बु, कल्पतरु शाख, कलश, केहरि, कुंजरवर।
शंकर ये उपमान गहें जिसके गुण अनुदिन,
हाय हमारे प्राण चले उस प्राणप्रिया बिन।

'अंग सँवारे'

यौवन-पादप के उपलक्षण पुष्प शरासन शायक धारे,
वीर बसन्त बली रसनायक संग उमंग-भरे भट भारे।
घेर लिए नर-नारि शुभाशुभ योग, वियोग, प्रयोग पसारे,
देख अनंग पराजित ने फिर शंकर सैनिक अंग सँवारे।

'बसो उरधाम सदैव हमारे'

शंकर आ अगुआ बनजा पिछुआ बन वित्त वृथा न गमारे,
बाँध बड़प्पन की गठरी करतूति पसार न कीर्ति कमारे।
घेर घनी जनता इस भाँति पुकार-पुकार प्रभाव जमारे,
उन्नति के बकबाद-विलास बसो उरधाम सदैव हमारे।

'भारत के सम भारत है'

पहले मृगराज समान रहा अब गीदड़ की धज धारत है,
बन पण्डित उन्नति के शिर से मतिमन्द गिरा हिय हारत है।
जिनको कर कोप डरावत हो उनके डर से झक मारत है,
बन वीर स्वतन्त्र हुआ बँधुआ बस भारत के सम भारत है।

'साँप खिलावनो है'

बल शंकर को शिर भूषण हा कर कोप न ताहि हिलावनो है,
बन हार न हेकड़ घोंट गला मन मार कुमेल मिलावनो है।
फटकारन की फुसकारन सों डरके कर दूध पिलावनो है,
रुचि रोक भयाकुल भारत को यह शासन-साँप खिलावनो है।

'काँच के लालच लाल गमावे'

छवि राजति सुन्दरता तन पै तप योग विहीन विभूति रमावे,
रस-मोद-विलास-भरे मनके बस भोगन में पग पाप कमावे।
नित गावत भूतन के जस पै भव तारक शंकर में न समावे,
सुन तो सम सो जग वंचक जो जड़ काँच के लालच लाल गमावे।

'जाति-पाँति तोड़क-मण्डल'

भारत में समभाव भरेगा घिन से मुख-मोड़क मण्डल,
भोजन सबके साथ करेगा छुआछूत छोड़क मण्डल।
विधवा-दल के दु:ख हरेगा विधवा गण जोड़क मण्डल,
शंकर साधन से सुधरेगा जाति-पाँति तोड़क मण्डल।

'भूमि-सुता जिनकी बनिता वह राम महीपति कैसे कहाये'

शंकर नैतिक भाव यथोचित भूल-भरे मन में न समाये,
पाय पिता-पद पुत्र बने नृप वे किसने जननीश जनाये।
त्याग प्रमाण-प्रसंग प्रथा यह प्रश्न अजान वृथा गढ़ लाये,
भूमि-सुता जिनकी वनिता वह राम महीपति कैसे कहाये।

'कु-भा शशि को रवि को निशि-नायक'

छादक छाद्य दुहून को योग जहाँ अधियाय रहे बिन सायक,
औसर पाय खमण्डल में वह बिम्ब बने ग्रह ग्रास विधायक।
शंकर खेचर तीन तहाँ विरचे अनुबन्ध अमंगल दायक,
या ढब ढाँपात है तम तोपि कु-भा शशि को रवि को निशि-नायक।

'वृषभानु लली को'

बाहर बाँध गये गिरिजापति कान्हहि देखन नन्द गली को,
डील फुलाय कुडौल भयो हम रोकि सके न बिजार बली को।
लाखन गाय रम्हाति रहीं खुलि खाय गयो सब न्यार खली को,
हा, अब चूँसि न जाय कहूँ यह शंकर को वृष भानु-लली को।

'भला कर भाई'

मूल मनोरथ पीड़ प्रयत्न पसार प्रबन्ध त्वचा चतुराई,
शाख सुधार पता प्रिय साधन कोंपल कर्म कली कुशलाई।
पुष्प प्रताप सुगंध समृद्धि पराग प्रथा फल श्री प्रभुताई,
स्वाद सदा सुख-भोग दयामृत सों नित सींच भला कर भाई।

'गुरु गौरि गणेश हैं'

जन्म दाता पिता माता, मुक्ति दाता महेश हैं,
ज्ञान धी धर्म के दाता, श्री गुरु गौरि गणेश हैं।
या कविता अवनी पर ग्राम गढ़ी गढ़ पिंगल के उपदेश हैं,
शब्द घने घर भाव प्रजाजन भूषण भोग धरें रस देश हैं।
शक्ति प्रबन्ध प्रथा भट भीर सुबोध विचार प्रधान बलेश हैं,
राज करें कविराज सहायक शंकर श्री गुरु गौरि गणेश हैं।

'जनु चन्द पै बीजुरी ताय रही'

सिय साथ चली पति देवर के थकि मारग में मुरझाय रही,
कवि शंकर भानु-प्रभा मुख पै श्रम-सूचक दृश्य दिखाय रही।
रच ग्रीषम स्वेदज बिन्दु घने मुकताहल-से बरसाय रही,
करि चाह सुधारस की हिम को जनु चन्द पै बीजुरी ताय रही।

'बार करो जिन बार बराबर'

बन्धन मुक्ति दुकूलन बीच त्रिधा दुख वारि भरो भवसागर,
संसृति चक्र तरंगन में परि तैरत बूड़त जीव चराचर।
धर्म सुबोहित साधन केवट संवित ज्ञान सहायक जापर,
शंकर साधु तरौ चढ़ि तापर बार करो जिन बार बराबर।

'ताकनि तेरी'

साथ बली रसराज महा भट पावस की छबि सेन घनेरी,
धार प्रसून शरासन शायक भीर युवा-युवतीन की घेरी।
फूँक रह्यो विधवा-दल को कुल की अनरीति ने आग बखेरी,
भूल गयो रतिनायक शंकर तीसरे चक्षु की ताकनि तेरी।

'किहि कारण हाथ मले मधु माँखी'

गढ़ते गणहीन गढ़न्त न जो नहिं गाल बजाय चढ़ावहिं साँखी,
कविता सरिता-रस के रसिया जिन तुक्कड़ता बदरो न उलाँखी।
परखें प्रिय भूषण पूषण-से पर दूषण पोट न दाबहिं काँखो,
यह शंकर वे न बताय सकें किहि कारण हाथ मले मधुमाँखी।

'बिन बारन माँग सँवारत आवे'

शंकर तेल मले रज को मृगनीर में न्हाय सुवेश बनावे,
भूषण धार खपुष्पन के सब ओर दिगम्बर देह दुरावे।
नाम असिद्ध असम्भव की धन देख अभौतिक रूप दिखावे,
पुत्र अभावहि गोद लिए बिन बारन माँग सँवारत आवे।

'जग में किस का किस से नाता'

१

तजिये समझो न सगे अपने अतिथी गुरु पूज्य पिता-माता,
मतिमन्द वृथा अपनाय रहे सुत, नारि, सुता, भगिनी, भ्राता।
कवि शंकर मुक्त सुना जिसको उस को पर-बन्धन क्यों भाता,
हम सत्य बखान रहे सुनलो जग में किस का किस से नाता।

२

यह ज्ञान महा सुख का दाता,
समझो अपने न पिता-माता।
गुरु का कुल शंकर यों गाता,
जगमें किसका किससे नाता।

'सार यहै उपकार तजै ना'

लोक हिताहित में चित दै हित साध कलंकित साज सजैना,
धर्म विचार सुकर्म करे नित शंकर नाम सकाम भजैना।
संचित केवल सत्य गहै जग में जड़ नीच कहाय लजैना,
सो जन जान जनावत जीवन सार यहै उपकार तजैना।

'वितान तनेंगे'

शीत महासुर को वृष पै चढ़ शंकर देव-दिनेश हनेंगे,
संसृति-सागर के परिशोधक मिश्रित आतप-बात बनेंगे।
कर्म-सुधारस में शुभ कारण पावस के फिर क्यों न सनेंगे,
भू-रर के जल ऊपर पाकर वारिद-रूप वितान तनेंगे।

[यह एक शीत पीड़ित की सूक्ति है। वृष-राशि पर चढ़ कर शंकर कल्याणकारी दिनेश-देव शीत-महासुर को मारेंगे। आतप और वायु मिलकर संसार-समुद्र के परिशोधक बनेंगे। फिर पावस के निमित्तोपादान कारण, कर्म-सुधारस में परिलिप्त क्यों न होंगे? भूगोल के जल भाप होकर आकाश में बादल-रूप वितान के समान तनेंगे अर्थात् फैल जायँगे। जब तक सूर्य वृष-राशि पर नहीं आता तब तक सार्वभौम शीत विनष्ट नहीं होता। ग्रीष्म के दिवाकर का प्रचण्ड तेज प्रभंजन को पावकमय बना देता है। वही लूएँ भौतिक दृश्यों में प्रविष्ट होकर उनको दुर्गन्धादि से रहित करती हैं। प्रखर प्रभा के प्रभाव से दूषित रसों का परिणामी होकर वर्षा के कारण का कर्म में परिणत होना है। जलाशयों के जल सूख-सूखकर बादल बनते हैं, वे वितान-से तन जाते हैं। 'शंकर']

'मनकी मन में'

अलमस्त फिरा तबलों जबलों उछला बल शैशव का तन में,
दिन काट दिये सब यौवन के मति मेल यथारुचि साधन में।
बनिता, दुहिता, सुत शोक सहे दुख भोग रहा पिछलेपन में,
प्रभु शंकर हाय न मुक्ति मिली यह माँग रही मनकी मन में।

'दिखावत आँखी'

बेग बढ़ौ रिस दामिनि को मन-मारुत की कुटिला गति नाँखी,
घोर घमण्ड-सरोरुह को रस चाट रही ममता-मधु-माँखी।
दाहक दर्प-दशानन के मुख चूमति है बल-बालि की काँखी,
यों ललकार 'सुजान' महाकवि शंकर तोहि दिखावत आँखी।

'झरना झलकें हैं'

प्यारी पिया के वियोग में रोवत आँखिन सों अँसुआ ढलकें हैं,
धीरज लाज के कोपर-से जनु प्रेम-सुधा भरि के छलकें हैं।
शंकर लोचन लाल न जान, अँगारे अरे, विरहानल के हैं,
लाग की आग बुझावन को दृग दोनों कैधों झरना झलकें हैं।

'चाँदनी सरद की'

१

देखिये इमारतें मजार दुनिया के सारे,
रोजे ने कहो वो शान किसकी न रद की।
हीरा, पुखराज, मोतियों की दर दूर कर,
शंकर के शैल की भी सूरत जरद की।
शौकत दिखादी यमुना के तीर शाहजहाँ,
आगरे ने आबरू इरम की गरद की।
धन्य मुमताज बेगमों की सरताज तेरे,
नूर की नुमायश है चाँदनी सरद की।

२

पीके दारू, भंग, संग चँडू के चरस चूँस,
त्याग दी तमीज़ हीज-औरत-मरद की।
भीगी खल शंकर सपोटली महेरी मान,
खाँड़-सी समझ फंकी मारली गरद की।
फेंक दिया पौंडे को फटेरा बतलाके दूर,
जानके सुपारी गाँठ चावली हरद की।
ऐसे नशेबाज़ के नशे की गरमी का दाह,
दूर किस भाँति करे चाँदनी सरद की।

'सारो जग जीत लियो हीजरा के जाये ने'

ऐसो सूरमान को सिरोमनि प्रतापी पुत्र,
पायो मन चञ्चल नपुंसक कहाये ने।
सेवा करते हैं, रसराज ऋतुराज दास,
ब्याही रति-रमणी छबीली छबि छाये ने।
जोड़े नर-नारियों के केलि-कामना से बाँध,
बोरे प्रेम-सिन्धु में मनोज नाम पाये ने।
शंकर के कोप ने अनंग करडारो तौऊ,
सारो जग जीतलियो हीजरा के जाये ने।

'सोता गज मच्छर के पैर की बिबाई में'

१

उन्नत हो विद्वत-कला से महाविद्यालय,
ज्वालापुर झूठ की न शीतल सचाई में।
तुक्कड़ों को गूलर के सुमन फरासफल,
बाँटे बन्ध्या-पुत्र के विवाह की बधाई में।
काढ़े तेल बालू से उखाड़े खरहा के सींग,
गुंजा माने गिरि को पहाड़ पावे राई में।
शंकर कवित्व के महत्व से कहे कि देख,
सोता गज मच्छर के पैर की बिबाई में।*

---

*"शेतेकरी मशकपाद विपादिकायाम्"—संस्कृत-समस्या।

२

आँखों का बिगाड़ा रोग अन्धा किया चाहता है,
घाटा घुसा जीवन-सुधार की कमाई में ।
हाय सुख शंकर न पाता एक पल को भी,
भासे दयाभाव न दरद दुखदाई में ।
गोलाकार कालिमा को श्वेतिमा दबोच बैठी,
धौरापन ढेले ने ढकेला अरुणाई में ।
तुच्छ काले तिल में महा तम समाया मानो,
सोता गज मच्छर के पैर की बिवाई में ।

'त्याग-तप का प्रचार हो'

भारत स्वतन्त्र हो पछाड़े परतन्त्रता को,
फूँक दे बिगाड़ को यथोचित सुधार हो ।
नीति का सँगाती न्यायकारी महाराज बने,
सारे जगतीतल पै पूरा अधिकार हो ।
एकता की उन्नति लगादे प्रजा-पालन में,
भागें वैर-फूट प्यारे प्रेम का प्रसार हो ।
भूतकाल का-सा अपनाले ज्ञान-गौरव को,
शंकर कृपालु त्याग-तप का प्रचार हो ।

'अत्ति के करैया पै बिपत्ति फाटि परि है'

बाँधो गयौ बलि हरिचन्द बिकौ नीच हाथ,
अन्य दानवीर ऐसी ध्रुवता न धरि है ।
मूढ़ महिषासुर दशानन को नाश भयो,
दुष्टता दुहून की-सी और कौन करि है ।
सारी मेदिनी को महाराज रह्यो भारत सो,
गौरव गमाय गिरो रोय-रोय मरि है ।
ऐसे ही प्रमाण पाय शंकर कहैं हैं लोग,
अत्ति के करैया पै बिपत्ति फाटि परि है।

'अटकत हैं'

नौकरों की शाही सभ्यता का गला काटती है,
गाँधी के सँगाती अँखियों में खटकत हैं।
भारत को लूट कूटनीति की उजाड़ रही,
न्याय के भिखारी ठौर-ठौर भटकत हैं।
जेलों में स्वदेश-भक्त हिंसाहीन सज्जनों को,
पेट-पाल पातकी पिशाच पटकत हैं।
कौन पै पुकारें अब शंकर बचाले हमें,
गोरे और गोरो के गुलाम अटकत हैं।

'ह्वै है मुख मेरो-सो कलम कहे कान में'

१

शंकर बिलोक लोक-बल्लभा सखीन संग,
केलि करे ललित लतान के बितान में।
फैली फुलबाई में फबन फल फूलन की,
फूली फिरे फूल-से झरत मुसकान में।
एक ही अनोखी अवनी पर न ऐसी और,
कैसे कहूँ आन अबलान के समान मैं
चाहत चितेरे कवि कूर लिखें चित्र छवि,
ह्वै है मुख मेरो-सो कलम कहे कान में।

२

न्याय- निधि पाय शील साहस बढ़ाय गुण,
ज्ञान गहि जाय सत्य साधक सभान में।
काल केलि में न टाल, दोष दम्भ देख-भाल,
धीर धार धर्मपाल ध्यान राख दान में।
मान तज मान-अपमान को समान मान,
जान शिवशंकर प्रधान अवसान में।
लेख लखि लाखन कलंक-मसि लागत ही,
ह्वै है मुख मेरो-सो कलम कहे कान में।

३

आयु असुरन की बढ़ावे अपनावे ऐसे,
औगुन अनेक भरे तेरे बरदान में।
जीवन घटावे गुणी लोक-हितकारिन को,
डूबौ अधिकार के अपार अभिमान में।
'कुन्दन सलाल' को वियोग लिखो भारत के,
भाल सिंह याही सों अवश्य अवसान में।
ऐरे अपकारी विधि. झूठ मत मान तेरो,
ह्वै है मुख मेरो-सो कलम कहे कान में।

'अवनीतल पै छायगो'

जाके सुखमूल सिद्ध शासन को शुद्ध भाव,
माता महारानी के सुयश में समायगो।
जाके न्याय-नीति को प्रचार पक्षपातहीन,
राजभक्ति-भूषिता प्रजा के मन भायगो,
शंकर पवित्र जाको जीवन प्रतापशील,
भावी भारतेश भावना को अपनायगो।
ताही एडवर्ड महाराज को मरण-शोक,
हाय, हाय, आज अवनीतल पै छायगो।

'ह्वैके द्विजराज काज करत कसाई को'

१

हाय, बालपन ही में आयुस पिता की पाय,
फेंक दियो धड़ ते उतार मुण्ड माई को।
शंकर की शक्ति ले दहाड़े रुद्र रोष धार,
लादो मार-धाड़ पै बिलास तरुणाई को।
नाशलीला यों ही रही बाढ़ पै तो एक दिन,
खोज मिटजायगो अवश्य ठकुराई को।
काट-काट भूपन को कट्टर परशुराम,
ह्वैके द्विजराज काज करत कसाई को।

२

शंकर के भाल पैं बसेरो पाय हाय तैंने,
सीख लियो बाधक बिधान रुद्रताई को।
चाहक चकोरन को चिनगी चुगावतु है,
कोसा सुने चक-चकईन की जुदाई को।
झूठो शीतकर विरहीन को पजार रह्यो,
छोड़ तन छलिया कलंक कुटिलाई को।
नाम को सुधाधर हलाहल बगारतु है,
ह्वै के द्विजराज काज करत कसाई को।

'रस की'

१

शोक महासागर में जीवन-जहाज आज,
भारत का डूबेगा रही न बात बस की।
धारती है भार तीस कोटि मन्दभागियों का,
मोदहीन मेदिनी तू नेक हू न धसकी।
टूटगया शंकर अखण्ड उपदेश-दण्ड,
दिव्य देश-भक्ति की पताका हाय खसकी।
तिलक-वियोग-विष बरस रहा है पर,
बरसी न बदली स्वराज्य सुधा-रस की।

२

नायिका के नायकों को सभ्यता सिखाया कर,
दिव्यता दिखाया कर अपने दरस की।
न्याय की तुला से कविता का तत्व तोला कर,
पक्ष से न खोला कर अँखियाँ तरस की।
शंकर न तुक्कड़ों को सिर पै चढ़ाया कर,
पदवी बढ़ाया कर सुकवि सरस की।
लाड़ले 'रसिक-मित्र' जीवन पवित्र तेरा,
समता करेगा करतार के बरस की।

['रसिक-मित्र' समस्या-पूर्तियों का प्रसिद्ध मासिक पत्र था; जो कानपुर से निकलता था। इसके सम्पादक थे पं० मनोहरलाल मिश्र।]

'कालिमा कलंक की लगाते हैं'

सागर, नदी-नद, तड़ाग झील-झावरों से,
भूमि सींचने को नीर माँग-माँग लाते हैं।
औरों का असीम उपकार करने पर भी,
धीरे-धीरे धाराधर श्यामता दिखाते हैं।
स्वारथी भिखारी ऐसे दृश्य देखते हैं तो भी,
दानियों के द्वारों पर माँगने को जाते हैं।
शंकर बिसार लाज भौंड़े मुख-मण्डलों पै,
मानहीन कालिमा कलंक की लगाते हैं।

'पुकार सुन लीजिए'

वेद-बल धारो भेद-कंस के पछाड़ने को,
छूत-पूतना का न विषैला पय पीजिये।
हिन्दू-मुसलिम-मेल—वैरी-जरासन्ध को भी,
भीम दर्प द्वारा बीच में से चीर दीजिए।
घेर रहा देश को कुशासन भुजंग-काली,
दूर इसे उन्नति तरनिजा से कीजिए।
कृष्ण, हमें मुक्त करो गोरे गूढ़ बन्धन से,
शंकर से दीनों की पुकार सुन लीजिए।

'बढ़ाती है'

एकता का स्वरस पिला के सातों जातियों को,
भिन्नता का भारी दोष माथे न मढ़ाती है।
भारत के सभ्य सदाचार को भुलाती हुई,
पाठ अंगरेजी अनाचार का पढ़ाती है।
नीचता की गाढ़ में ढकेल हिन्दी उच्चता को,
मिसरी को उन्नति के शैल पै चढ़ाती है।
शंकर की ठीक बात मान लो गरम चाय,
नींद को घटाती बवासीर को बढ़ाती है।

'वचन कहेंगे हम'

प्रेम से उपासना करेंगे एक शंकर की,
वेद के विरोधियों की गैल न गहेंगे हम।
सेवक बनेंगे ब्रह्मज्ञानी सत्यवादियों के,
मानी मूढ़-मण्डल में अब न रहेंगे हम।
सम्पदा मिलेगी तो करेंगे सुख-भोग सदा,
आपदा पड़ी तो शोक-संकट सहेंगे हम।
पापी पक्षपाती पञ्च पामरों के पास जाय,
कबहू न दीनता के वचन कहेंगे हम।

'राखी है'

भारत के भूषण प्रतापशील पूषण-से,
दूषण-विहीन वर वेदन की साखी है।
दिव्य गुण-मण्डित महानुभाव पण्डित हैं,
प्रभुता अखण्डित कहो न किन भाखी है।
देव अवनीके चारों वर्णो में नीके बने,
चाशनी सुयश की चखाई और चाखी है।
आओ दानवीरो, याहि कर में बँधावो देखो,
ब्रह्मकुल तेज की प्रताप-रूप राखी है।

'अविद्या चुक जायगी'

प्राणायाम आदि योग-साधनों की साधना से,
चंचलता चित्त की अवश्य रुक जायगी।
चित्त की अचंचलता ध्यान-धारणा के साथ,
सामाधिक संयम की ओर झुक जायगी।
संयम के द्वारा तत्वज्ञान की गवेषणा में,
लौकिक विभूतियों की लीला लुक जायगी।
शंकर विवेक-जन्य-ज्ञान से मिलेगी मुक्ति,
बन्धन विधायिका अविद्या चुक जायगी।

'एक दिन सब ही सुकवि बन जावेंगे'

ऊँची-ऊँची पदवी मिलेगी कवि-कोविदों को,
पूरक प्रवीन उपहार घने पावेंगे।
धींग धरणीश धनी धोंस की धमार गाय,
आशुकवि भारती के भूषण कहावेंगे।
शंकर सुजान अधिकारी न रहेंगे जब,
आदर को बोझ तब तुकिया उठावेंगे।
यों ही सदुदार कवि-मण्डल में मान पाय,
एक दिन सबही सुकवि बन जावेंगे।

'मानो देवनागरी को नाम ही मिटावेंगे'

ईश गिरिजा को छोड़ यीशु गिरजा में जाय,
शंकर स्वदेशी मेन मिस्टर कहावेंगे।
बूट, पतलून, कोट, कम्फ़ाटर, टोपी डाँट,
जाकट की पाकट में वाच लटकावेंगे।
घूमेंगे घमण्डी बने लेडी का पकड़ हाथ,
पीयेंगे बरांडी मीट होटल में खावेंगे।
फ़ारसी की छारसी उड़ाय अँगरेजी पढ़,
मानो देवनागरी को नाम ही मिटावेंगे।

'कष्ट भोगें उस जेल का'

वर्त्तमान काल में अखाड़ा कहा जाता है जो,
शंकर खिलाड़ी कर्म-योगियों के खेल का।
राजकर्मचारी कारखाना जिसे मानते हैं,
रूखी राजनीति-सिकता के न्याय-तेल का।
पातकी-प्रमादी पामरों का पक्षपात जहाँ,
मेल में मिलाता है मसाला अनमेल का।
जन्म हुआ जिसमें कृपालु कृष्ण आपका भी,
देशभक्त क्यों न कष्ट भोगें उस जेल का।

'कौशिक न देख सकता है हरिचन्द को'

कोरे कनफुक्का दुराचारी का कुचाली चेला,
चाहै न सुबोध सदाचारी सुखकन्द को।
पातकी-प्रमादी बकबादी कब जानता है,
शंकर-मिलाप के असीम सदानन्द को।
गन्दगी का ग्राही गुबरीला नहीं खोजता है,
फूले पुण्डरीक के पराग-मकरन्द को।
जीवन को घोर अन्धकार में बिताने वाला,
कौशिक न देख सकता है हरिचन्द को।

'छबि छाई ऋतुराज की'

१

तोरण पताकाधारी उन्नत वितान तने,
बगरी विचित्रता सजावट के साज की।
प्रेमी कविता के सभ्य सज्जन बिराज रहे,
उलही अनूठी आभा सुकवि-समाज की।
कोष मिला मोद का साहित्य सुरपादप से,
रंजना रिझावेगी किसे न कहो आज की।
शंकर युधिष्ठिर की राजधानी देहली में,
मानो मनमानी छबि छाई ऋतुराज की।

२

मान मनमाना मिलता है खल-मण्डल को,
कौन करता है सेवा सज्जन-समाज की।
होके मालामाल मूढ़ मिट्टू मौज मारते हैं,
लोहू चतुरों का चिन्ता चूँसती है नाज की।
गाजती है गन्दी तुकबन्दी कोरे तुक्कड़ों की,
गूँजती है कविता न कवि-कुल-ताज की।
मानो ढाक फूले हैं न शंकर रसाल बौरे,
भूतल पै छूंछी छबि छाई ऋतुराज की।

'आवे चाहे आवे ना'

शंकर गृहस्थ बच्ची-बच्चों को बताने वाली,
बोदरी बिरादरी में बेदरी कहावे ना।
बारी बरनी के बूढ़े बर को बिगोती नहीं,
विधवा-विवाह की अवज्ञा अपनावे ना।
बेच-बेच बेटियों को बित्त जो बटोरते हैं,
भद्दे बिकबाल उन बापों को बतावे ना।
देखो ऊँची अकड़ हमारी कैसी ऊलती है,
उन्नति को चोटी हाथ आवे चाहे आवे ना।

'गौरव के गिरि पै समोद चढ़ जायँगे'

शुद्ध कविता की रचना का रस पान कर,
गन्दी तुकबन्दी की बला से कढ़ जायँगे।
शंकर-से तुक्कड़ों को शक्तिहीन मान कर,
चालू कवि-मण्डल से आगे बढ़ जायँगे।
देव से घटा हुआ बिहारी को बखान कर,
सच्ची समालोचना का पाठ पढ़ जायँगे।
सूर-तुलसी की तुल्यता का प्रण ठान कर,
गौरव के गिरि पै समोद चढ़ जायँगे।

'मन की'

भद्राभास ढोंगने ढकेलू ढङ्ग ढाँपने को,
लादली है लीला लोक-लाड़ली लगन की।
अन्ध अगुआजी अन्धाधुन्धियों की आँधियों से,
धूलि न उड़ाओ पिछलगुओं के धन की।
भोलों को बिगाड़ के उजाड़ में घसीटते हो,
गैल न गहाते हो सुधार के सदन की।
शंकर न देखी करतूति कौड़ी-भर की भी,
बातें बकते हो वृथा लाख-लाख मन की।

'प्रेम के पुजारी हैं'

शंकर शिखण्डी वीरता की बातें मारते हैं,
कोरे बकवादी न किसी के हितकारी हैं।
देशी अन्न, तूल आदि ठेलते विलायतों को,
देखो नोट कागजी समेटा बड़े भारी हैं।
न्याय मनमाना मोल लाते हैं अदालतों से,
भक्त गोरे-गोरियों के काले नर-नारी हैं।
नौकरों की शाही मान दान दे उपाधियों को,
जी हुजूरबादी तेरे प्रेम के पुजारी हैं।

'हिन्दी नहीं जाने उसे हिन्दी नहीं जानिए'

शंकर प्रतापी महामण्डल की पूजा करो,
भेद वेदव्यास के पुराणों में बखानिए।
बोध के विधाता मतवालों को बताते रहो,
आपस में भूलकै भिड़न्त की न ठानिए।
जूरी जाति-पाँति की पटेल-बिल में न घुसे,
भिन्नता को एकता के साँचे में न सानिये।
हिन्दुओं के धर्म की है घोषणा घमण्ड-भरी,
हिन्दी नहीं जाने उसे हिन्दी नहीं जानिये।

'गरिमा गिराय के'

स्वामी जाहि मानत हे भूतल के भाग सारे,
पूजत हे थोक बाँध थामस थिराय के।
धाक धोंस धमकी सों काहू की जमीन जाये,
हार मान जो न हटो हिम्मत हिराय के।
विद्या, बल, वित्त, कला-कौशल बढ़ावत हो,
शंकर जो प्रभुता प्रताप की फिराय के।
लाद लघुता को पराधीन भयो भारत सो,
हाय दई गौरव की गरिमा गिराय के।

'धीर धर्म-वीर ने'

जीवित न छोड़ा गुरुदेव दयानन्दजी को,
गूढ़ दुष्टता के कालकूट . मिले चीर ने।
खाकर कटारी क्रूर कपटी नराधम की,
शोणित बहाया लेखराम के शरीर ने।
मृत्यु से मिलाया रुग्न सिंह श्रद्धानन्दजी को,
गीदड़ की गोलियों के बेधन गँभीर ने।
शंकर प्रहार-वज्रघात झेल कायरों के,
प्राण नहीं त्यागे किस धीर धर्म-वीर ने।

'सत्यामृत पीजिये'

जीवन को ढोंगियों के ढंग से बिताना नहीं,
मान-दान मिथ्या मत-पन्थों को न दीजिये।
आदर पै प्रेम के प्रसून बरसाते रहो,
मेल पै प्रहार वैर-वज्र का न कीजिये।
न्याय से सुनीति-सभ्यता के अधिकारी बनो,
भूल से भी नाम छूतछैया का न लीजिये।
एकता की आग में पजारो परतन्त्रता को,
शंकर स्वतन्त्र हो के सत्यामृत पीजिये।

'पतंग की'

एक चमकीली किन्तु कालिमा उगलती है,
दूसरी विभूति न विसारे किसी अंग की।
एक उग्र ताप से सनेह को सुखाती रहे,
दूसरी दिखाती फिरे उन्नति उमंग की।
फूँक देगी एक चकराती हुई दूसरी को,
शंकर कथा है मार-प्यार के प्रसंग की।
गोरी प्रभुता की शक्ति दीपक-शिखा है मानो,
साँवली प्रजा की भक्ति प्रीति है पतंग की।

'हिन्दी भाषी कब आयेंगे'

बार-बार खोजने पैं चाहे किसी कोष में भी,
  और निगमागम पुराणों में न पायेंगे।
तो भी हिन्दू शब्द के गुलाम डाकू चोर माने,
  गैरों को गयासुल लुगात में दिखायेंगे।
केशव को; तुलसी को; सूर को न सूझ पड़ा,
  धन्य बड़भागी भूषणादि को बतायेंगे।
शंकर-से तुक्कड़ों की बातों में कहो तो भला,
  हिन्दवासी हिन्दू हिन्दी भाषी कब आयेंगे।

'समर में'

देखो जाति-जीवन-जहाज चकराने लगा,
  मोह महासागर के मायिक भमर में,
पूंजी पिछलगुओं की अगुआ उड़ाने लगे,
  बाँधे महावीरता की बासनी कमर में।
जोड़ा चाहते हैं मेल अक्खड़-अनारियों से,
  द्वेष-दम्भ हाय घुस बैठे घर-घर में।
शंकर विभिन्नता का विष बरसाने वाले,
  क्रूर करतूति क्या दिखायेंगे समर में।

'देवनागरी'

बीत गई शंकर अविद्या की अँधेरी राति,
  भारत की भारती प्रकाश पाय जाग री।
लोक लाड़िली हो राज-भाषा के समान हम
  हिन्दुओं की हिन्दी को सुधारस में पाग री।
फ़ारसी की छार-सी उड़ादे फटकार दे कि,
  ऊले मत उरदू अँगार-भरी आगरी।
नागरीप्रचारिणी बनेगी तूही नागरी तो,
  कौन मन्दभागी न पढ़ेगा देवनागरी।

'सारे हैं'

जीत की जमाय जड़ गौरव-तड़ाग माँहि—
उपजो; सदुन्नति के अंकुर बगारे हैं।
शील के सलिल पर प्रेम के पसार पात,
संवित के शंकर प्रसून-पुंज धारे हैं।
कीरति की केसर सुगन्ध सुखमा की पाय,
मोद के मधुर मकरन्द कन झारे हैं।
फूलि-फूलि पुण्य को पराग बरसावें ऐसे,
जंगम सरोज के मिलिन्द कवि सारे हैं।

'वारिये'

भूलो मत भाई सर्व शक्तिमान शंकर को,
धर्म धार मिथ्या मत-पन्थों को विसारिये,
हारी हाय-हाय हा-हा खाती है विदेशियों की,
त्रासयुक्त ह्रास आर्यजाति का निहारिये।
खो चुका स्वतंत्रता पछाड़ा पराधीनता ने,
विद्या-बल-वित्त-हीन देश को सुधारिये।
सत्य के विधान द्वारा प्रेम का प्रचार करो,
प्यारे देश भारत पै जीवन को वारिये।

'होली है'

शंकर त्रिशूल रुद्र रोष का चलाती हुई,
चण्डी मार-काट करती न कहाँ डोली है।
पालती प्रजा को लाद-लाद कर भार भारी,
लोभी लीला लूट की तुलापै धर तोली है।
ठूँसी ठोस नीति भूखे शासन की तोंद-भरी,
पेट फाड़ न्याय-ढोल की न पोल खोली है।
गोरी सरकार काला भारत न भूले तुझे,
छोड़ दिये गाँधीजी हया की हद होली है।

'भारत-निवासी हैं'

गोरी कूटनीति ने पछाड़े घेर-घेर काले,
मानें नर-नारी मानो दास और दासी हैं।
ठौर-ठौर शंकर अनेक मृगतृष्णिका-सी,
बन्धन छुड़ाने वाली भावनाएँ भासी हैं।
लालसा का पेट भरते हैं मन-मोदकों से,
कोरे बकबादियों की बातों के विलासी हैं।
गाँधीजी दयालु दानी दीजिये स्वराज्य देखो,
दोंचे परतन्त्रता ने भारत-निवासी हैं।

'राखी बाँध लीजिये'

१

गीता पै तिलक महाराज का तिलक पढ़,
कर्मयोगियों की धारणा में ध्यान दीजिये।
गाँधीजी का जाति-हितकारी उपदेश मान,
वैर-विष को विसार प्रेमामृत पीजिये।
पूजती है जिनके कुशासन को कूटनीति,
हिंसाहीन उनसे असहयोग कीजिये।
शंकर स्वदेशी वीरो, त्याग दो विदेशी वस्तु,
श्रावणी स्वतन्त्रता की राखी बाँध लीजिये।

२

शंकर गुलामी न बिसारो शाही नौकरों की,
भूल से भी कामना स्वराज्य की न कीजिये।
मान बड़भागी मान गोरों का बढ़ाते रहो,
शोणित अभागे देश-वासियों का पीजिये।
चाँदी-सोना छोड़, नोट ले-लेकर क़ीमत में,
जीवन के साधन विदेशियों को दीजिये।
बाँट-बाँट भीख भोंगा भुक्खड़ भिखारियों को,
स्वारथ रखाने वाली राखी बाँध लीजिये।

'बलि जायेंगे'

शंकर के भक्त शूर साधक स्वतन्त्रता के,
अन्तलों न मार पराधीनता की खायेंगे।
नीचता पै गौरव के गिरि से गिरेंगे नहीं,
उन्नति के साथ शुद्ध जीवन बितायेंगे।
सभ्य सदाचारी धर्म-धारी परदेशियों को,
प्रेम से स्वदेशियों की भाँति अपनायेंगे।
डींग मारा दम्भियों की डाँट से डरेंगे नहीं,
विश्व-वल्लभों की बीरता पै बलि जायेंगे।

'मरदाने की'

१

भारत की चीनी में विलायती मिठास कहाँ,
चाशनी चखाती खाँड़ घर-घर दाने की।
घूँघट का ढोंग ढाँकता न गोरी लेडियों को,
लादता है गोरी बीबियों को परदाने की।
घास भर-पेट भी न पाते हैं तुरंग ताज़ी,
रेंक-रेंक टोकरी चबाते खर दाने की।
माने कोरे तुक्कड़ बड़ा न महाकवि को भी,
कायरों ने हेकड़ी हटा दी मरदाने की।

२

भक्त भगवान का भलाई को न भूलता है,
कामना कभी न करे सुकृत कमाने की।
पौरुष पसारे पूरे प्रेम से प्रतिज्ञा ठाने,
देश को सुधार का सुदर्शन कराने की।
कोसे कायरों को लादे वीरता बड़प्पन पै,
साहस को सौंपे शक्ति जाति को जगाने की।
धन्य शुद्ध जीवन के चारो फल देने वाली,
होती है मुराद पूरी ऐसे मरदाने की।

'बसन्त सरसायो है'

कूकें ऋचा कोयलें प्रमाण भृंग गूँजते हैं,
ब्रह्मज्ञान गायन पीयूष बरसायो है।
वैदिक विचार सदाचार पत्र-पुष्प-धारी,
धर्म-कर्म पादप-समूह दरसायो है।
जीवन-फलों से तृप्त होते हैं पवित्र प्रेमी,
शुद्धि ने न एक भी अशुद्ध तरसायो है।
धन्य ऋषिराज दयानन्द की दयालुताने,
शंकर सुधारक बसन्त सरसायो है।

'वीर बलिदान है'

शंकर सुबोध सत्यवादी यों पुकारते हैं,
विद्या बल वित्तदाता वैदिक विधान है।
अज्ञों को प्रमाद माया-जाल से छुड़ाने वाला,
मुक्ति का विधाता ज्ञान-गौरव का गान है।
शुद्धि पर प्राण तक देने को जो उद्यत हैं,
साधन उसी का 'श्रद्धानन्द' के समान है।
साहस सुधारक समाज की समुन्नति का,
धर्म-धारी धीर कर्मवीर बलिदान है।

'आग पानी में लगाते हैं'

भूतल पै शङ्कर-सा सुयश पसार देंगे,
भङ्ग की तरङ्ग में उमङ्ग को जगाते हैं।
आज कनरसिया विशाल कवि-मण्डलों से,
कोरे तुकड़ों की भद्दी भावना भगाते हैं।
हो चुकी समस्या पूरी चूमलो चरण चौथा,
तान आप अपनी बड़ाई की न गाते हैं।
एक मे पजारते हैं घोलते हैं दूसरे में,
रङ्ग इस भाँति आग पानी में लगाते हैं।

'गोरे गोल गालन गुलाल लाल मलिगो'

शोकमयी छटवीं मई की आधी रजनी को,
वैरी काल-व्याल विकराल चाल चलिगो।
एडवर्ड स्वामी के स्वरूप को निगलगयो,
शङ्कर अभागिनी प्रजा को हाय, छलिगो।
मङ्गल की माता मरे मङ्गल को रोय रही,
दृश्य धूमकेतु को अमङ्गल को फलिगो।
साँवरे कपोलन प कालिमा लपेट गयो,
गोरे गोल गालन गुलाल लाल मलिगो।

'निगाह में'

भारतीय भावों की लकीर का फ़क़ीर हूँ मैं,
भूल भटकाती नहीं और किसी राह में।
लूँगा गंजेदाद हिन्दी वालों के मशायरे में,
ज़िन्दगी गुज़ारने को शंकर की चाह में।
गो न शिवराज का-सा भूषण बनाहूँ तो भी,
पूरा मज़ा पारहा हूँ कोरी 'वाह-वाह" में।
हौसला न हासिल है मेरी शायरी का जिसे,
काँटा-सा खटकता हूँ उसकी निगाह में।

'भूलना न मेरे इन कौल-व्याल केशों को'

शंकर असंख्य महावीरों से बिहीन देव,
देखना न चाहते हो भारतादि देशों को।
अन्ध के कपूतों के सँगाती दुराचारी अन्ध,
मानेंगे न आपके अमोघ उपदेशों को।
लूटते—सताते हैं प्रजा को जो बिसार न्याय,
घेरता है नाश उन पातकी नरेशों को।
कृष्ण समझौता करने को वहाँ जाते हो तो,
भूलना न मेरे इन कौल-व्याल केशों को।

'भारत के भाल पै तिलक भी रहा नहीं'

बानिक बिगाड़ा पृथ्वीराज ने प्रभुत्व त्याग,
स्रोत फिर शंकर सुधार का बहा नहीं।
पापी जयचन्द की कुचाल का कुयोग पाय,
संकट सहे था, पर इतना सहा नहीं।
पूरे परतन्त्र को स्वराज्य-दान देगा कौन,
गोरों ने दया का अधिकारी भी कहा नहीं।
मुकुट बिहीन जिसे देखते हो हाय, उस—
भारत के भाल पै तिलक भी रहा नहीं।

'चुम्बक युगल बीच मानो लोह फँसिगो'

राजा तू सदेह सदा स्वर्ग में रहेगो ऐसो,
शंकर असीस जाके मुख ते निकसिगो।
ताही गाधि-नन्दन को योग-बल पाय उड़ो,
तीर-सो त्रिशंकु नभ-मण्डल में धँसिगो।
वासव ने मारो त्राहि-त्राहि सो पुकारो मिलो,
मुनि को सहारो अधबर ही में बसिगो।
आयो न मही पर न पायो लोक देवन को,
चुम्बक युगल बीच मानो लोह फँसिगो।

'कालिमा कलंक की लगाते हैं'

इन्दिरा के बाप दानवीर महासागर से,
भूमि सींचने को नीर माँग-माँग लाते हैं।
औरों का असीम उपकार करने पर भी,
धौरे घन याचना की श्यामता दिखाते हैं।
स्वारथी भिखारी ऐसे दृश्य देखते हैं तो भी,
दानियों के द्वारों पर माँगने को जाते हैं।
शंकर बिसार लाज भौंड़े मुख मण्डलों पै,
हाय, हाय, कालिमा कलंक की लगाते हैं।

'अलसाने-से'

सोने-से शरीर सब साहसी निशङ्क भूरि,
शंकर सुजान शारदा के सनमाने-से।
ठौर-ठौर साधक असीम सुख-भोगन के,
खोले कारखाने घने इन्दिरा के थाने-से।
आधी ते अधिक अवनी को अपनाय चुके,
शेष मही-खण्डन को मानें न बिराने-से।
ऐसी अति उन्नति प्रतापी परदेशिन की,
हेरत हैं हाय, हम लोग अलसाने-से।

'पुरुष मुकुन्द है प्रकृति प्यारी राधा है'

शंकर अखण्ड एक अक्षर की एकता ने,
स्वाभाविक साधन अनेकता का साधा है।
तारतम्यता के साथ विश्व की बनावट में,
पोल और ठोस का प्रयोग आधा-आधा है।
नाम रूप ज्ञान से क्रिया की कर्म कल्पना से,
नित्य निरुपाधि चिदानन्द में न बाधा है।
सामाधिक धारणा में ऐसा ध्रुव ध्यान है तो,
पुरुष मुकुन्द है प्रकृति प्यारी राधा है।

'गीता-ज्ञान कौन भरता'

पूतना को मार मामा कंस को न मारते तो,
नीचता से कौन आततायी दुष्ट डरता।
भीम द्वारा पापी जरासन्ध को न चीरते तो,
कौन सदाचारियों के संकट को हरता।
कण्ठ शिशुपाल जालिया का जो न काटते तो,
कौन राजवृन्द का सभापतित्व करता।
जन्म जो न होता न्याय-नीति-पूर्ण कृष्ण का तो,
जिष्णु-भीरुता में गीता-ज्ञान कौन भरता।

'मिस्टर कहाते हैं'

राजभाषा पढ़ कर बोहित पै चढ़ कर,
एशिया से कढ़ कर यूरुप को जाते हैं।
झंझटों को झेल कर साहस के खेल कर,
उन्नति से मेल कर, मंगल मनाते हैं।
लन्दन में बास कर साहिबी बिलास कर,
शंकर प्रबास कर पास कर आते हैं।
इण्डिया पै प्यार कर जीवन सुधार कर,
हिन्दू मौज मार कर मिस्टर कहाते हैं।

'उतारिये'

१

तैरते भुवनजा के प्रतिभा-सलिल पर,
ऐसा कवि मानस सरोवर निहारिये।
व्यास वाल्मीकि ने जनाये राम धर्मपुत्र,
क्रम-भंग दोष न प्रलाप का उघारिये।
प्यारी रसिकों की पद्यरचना रसीली पर,
चोखे चित्रकार का चितेरापन वारिये।
निन्दा सौंप शंकर को शूद्रता के पैरों तक,
भूसुरत्व भूधर की चोटी से उतारिये।

२

ताप तन फूँकै आह विश्व का विनाश करे,
यों ही गल्प-गायन की डुण्डी डींग मारिये।
लादती है वाद जो वियोगिनी वियोगियों पै,
ऐसी तुकबन्दी की बहादुरी बगारिये।
खोटी खड़ी बोली की साहित्य-हत्या-ऊसरी में,
सूखा रसाभास मृगनीर-सा निहारिये।
शंकर से तुक्कड़ी विनोद की बतक्कड़ी का,
बोझ न बुझक्कड़ों के सिर से उतारिये।

३

खोटी खड़ी बोली का न आदर बढ़ाना कहीं,
जानोमाल उरदू की उम्दगी पै वारिये।
कानों को न फोड़दे भड़ौए की पढ़न्त भद्दी,
वक्त नज्म नाजुक सुनाने में गुजारिये।
बोलिये न तुक्कड़ों के ताबेदार शंकर से,
शायरों के शाह अकबर को पुकारिये।
आप ही मिले हैं मुझे माहिर फसाहत के,
चाटूँ तलवों को जरा जूतियाँ उतारिये।

'रसिक-समाज के'

शुद्ध भाव सरसें, सुभाषित समीर बहै,
राग-रंग दरसैं साहित्य ऋतुराज के।
गद्य-पद्य, चम्पू वृक्ष फूलें मेधा मेदिनी पै,
गूँजें ग्रन्थ मधुप सनेही सुखसाज के।
आदर आकाश घेर गन्दी तुकबन्दी घटा,
वज्र न गिरावे कहीं बिजली की गाज के।
शङ्कर कादम्बरी की कूक माधुरी के द्वारा,
कानपुर होते रहैं रसिक-समाज के।

'तारों का प्रकाश मैं'

गीता के विधान द्वारा यादवेन्द्र केशव को,
रोकर पुकारती हूँ होकर हताश मैं।
हिंसावाद पावक प्रचण्ड को बुझाती हुई,
भूलूँगी न शुद्ध बुद्ध बोध का विनाश मैं।
बन्ध से छुड़ाती नहीं ब्रह्मशक्ति शंकर की,
जानती हूँ जीवन को मोह-माया-पाश मैं।
सत्य का सनेही दयानन्द-भानु अस्त हुआ,
देखती हूँ हाय तुच्छ तारों का प्रकाश मैं।

'सही जाति है'

१

धर्महीन कुटिल कुशासन की माया माँहि,
सज्जन-समाज की न सम्पति समाति है।
लूट-लूट बानिक बिगाड़ति है कूटनीति,
शंकर सुधार की न सूरति दिखाति है।
नोच-नोच खाय-खाय सामरी प्रजा को माँस,
गोरी गरबीली अनरीति इतराति है।
देश-भक्त भारत भिखारी कर डारो हाय,
ऐसी घोर नीचता न मो पै सही जाति है।

२

शंकर स्वराज्य मिले भारत-निवासिन को,
ऐसी बुरी बात कहो कौन को सुहाति है।
दौंच-दौंच देशभक्त ठूँस दिये जेलन में,
पापी पशु-बल की प्रचण्डता रिसाति है।
धर्मवीर सिक्खन को क्रूरता कुचल रही,
देख-देख सभ्यता बिचारी बिलखाति है।
नेकहू रह्यो न न्याय वर्त्तमान शासन में,
उग्रता अनीति की न मोपै सही जाति है।

'झुक जात हैं'

जात न कमल भ्रमरन के बुलावन को,
पेड़न पै आप ही पखेरू मँडरात हैं।
पाती चन्द्रमा की न चकोरन के पास गई,
खोजी स्वाति बूँदन के चातक दिखात हैं।
मानसरवर को मराल कब छोड़ते हैं,
मोतिन सों लगन लगाय उमगात हैं।
शंकर विचारो लोक-सिद्ध इन बातन को,
आदर की ओर सब यों ही झुक जात हैं।

'मनकी'

१

काम किसी चोखी करतूति से चलाना नहीं,
घोषणा घुमाते रहो केवल कथन की ।
खद्दर न धारो आप औरों को सुनाते रहो,
छूना नहीं चीर भी विलायती बसन की ।
शंकर सुकर्म त्यागी थोथे जाति-मण्डल में,
भावना भरो न भगवान के भजन की ।
हिन्दुओं का ह्रास-हीरा छीलना जो इष्ट है तो,
ठूँसो शक्ति साहस में सिरस-सुमन की ।

२

विष्णु भगवान लोकनायक वैकुण्ठ ही में,
जाँच करते हैं प्यारे भक्तों के भजन की ।
देते हैं दया का दान न्याय न बिसारते हैं,
बाँटते हैं भोग-भाजी भोजन-बसन की ।
एक बार सिन्धु-तनया को मुसकान ही में,
सौंपदी कवित्व-कला मेरी भी लगन की ।
दूर की दरिद्रता बनाया धनी शंकर को,
मान गई बात कमलापति के मन की ।

'झण्डा झुकने न दो'

१

चाटो चाटुकारी को चरण चूमो चाकरी के,
चंचल चबोरों का चबाउ चुकने न दो ।
रोकड़ से राखिया रगेलों को रखाते रहो,
रामरट्टू रेवड़ की रें-रें रुकने न दो ।
लूटो लोभी-लालची लवार लण्ठ लुक्कड़ों को,
लीडरी के लट्टूओं की लीला लुकने न दो ।
झींख-झींख झेलो झक्कड़ों के झुण्ड झंझटों को,
झूँठ की झड़ाझड़ का झण्डा झुकने न दो ।

२

जीवन सुधारो धर्म-कर्म साधनों के द्वारा,
जाति प्रेम-पालन की पूँजी चुकने न दो।
कटुता कुनीति की कुचालों को मिटाते रहो,
दम्भ से सुबोध सदाचार रुकने न दो।
चारों ओर वैदिक विधान का प्रचार करो,
लालसा में लालच की लीला लुकने न दो।
ज्ञानियो, गिरादो झूँठी झंझटों की झंडियों को,
शंकर सदुद्यम का झंडा झुकने न दो।

'पाकर कदम सेव पीपर न रूसा कर'

'अतियाँ 'कटीली' हठ 'कीकर' न 'काहू' 'बेर',
रोष 'बगला' न 'चीरे' सेवा 'सफरी' की नर।
मान' सत्यानाशी' ने 'उखारी' 'जीवनी' की 'जड़',
'प्यार' 'कमरख' न 'प्रधान' 'मृदुफल' पर।
'रम्भा' 'मजुघोषा' को 'लताड़' 'रसभरी' 'बाल',
'अम्बा' 'वन' 'वंश' उप 'जामन' की 'नीम' घर।
'नारिकेलि' क्यों न 'सेवती' है 'तज' 'फूट' बेलि',
'पाकर' 'कदम' 'सेब' 'पीपर' न 'रूसा' 'कर'।

[एक वार अखिल भारतवर्षीय कवि-सम्मेलन देहली की दी हुई समस्या थी—'पाकर कदम सेव पीपर न रूसा कर'। उसी की पूर्ति शंकरजी ने ऊपर की है। शर्त यह थी कि पूर्ति में कम से कम बारह वृक्षों के नाम श्लिष्ट रूप से आने चाहिएं, परन्तु शंकरजी की पूर्ति में बारह के स्थान में अड़तीस वृक्षों के श्लिष्ट नाम मौजूद हैं। सम्पादक]

'हाय नागरी को नाह छाँड़िके कितै गयो'

भारत के इन्दु भारती के भाल-भूषण को,
कोऊ न बतावतु उतै गयो इतै गयो।
शंकर साहित्य के सुधारन की कामना सों,
सम्पदा गँवाई सारौ जीवन बितै गयो।
हिन्दी को गहायो हाथ हिन्दवासी हिन्दुन को,
चन्द्रिका की चाहकी चितौनी सों चितै गयो।
शोक हरिचन्द को बनारस बिगाड़ गयो,
हाय नागरी को नाह छाँड़ि के कितै गयो।

'बजाई जय-भेरी है'

१

काँप-काँप शीत के सँगाती भय-भीत भागे,
सुन्दर बसन्ती धज धरणी की हेरी है।
छदन पुराने झाड़े वृक्ष, लता, बल्लियों पै,
दिव्य दल-दान की छबीली छटा फेरी है।
कोयलों की कूकें बिरदावलि बखानती हैं,
गुंजरत भृंग यहाँ ऐसी मति मेरी है।
जीत कर शंकर बिकास की रुकावटों को,
मानो ऋतुराज ने बजाई जय-भेरी है।

२

रौंद-रौंद मारी महामारी बार फ़ीवर ने,
मण्डली दुकाल की दरिद्रता ने घेरी है।
ओढ़ें गाँठ-गूदड़े, न रोटी भर-पेट मिले,
चैन का ठिकाना कहाँ, चिंता बहुतेरी है।
ढोर कटने से जो रहेंगे उन्हें पालने को,
भूसा, घास, करबी पुआल की न ढेरी है।
शंकर बचेंगे परिवार न अकिंचनों के,
भुक्खड़ों के अन्त ने बजाई जय-भेरी है।

'समाने को अहा गये'

खोल गुरुकुल वेद-विद्या के प्रचार द्वारा,
गैल ब्रह्मचारियों को ज्ञान की गहा गए।
भूतल पै जीवन का सुयश पसार पूरा,
कर्मवीर धर्मसिंह साहसी कहा गये।
अन्त को छिदाय छाती कायर की गोलियों से,
शुद्धि की समुन्नति पै शोणित बहा गये।
धन्य दयानन्दजी के शिष्य श्रद्धानन्द स्वामी,
शंकर की सत्ता में समाने को अहा गये।

'गितक्कड़ों को छोड़िये'

प्रेम को प्रचारो धर्म धारो भजो शंकर को,
नाता दीनबन्धु की दयालुता से जोड़िये।
सत्य के सँगाती बनो प्रेमामृत पीते रहो,
झूँठ की घमण्ड-घोषणा का घट फोड़िये।
आदर न दीजिये विवेकहीन बक्कुओं को,
ठग्गुओं की ओर न उदारता को मोड़िये।
पूजो कवि-कोविदों को रीझो गुणी गायकों पै,
तुक्कड़ों को त्यागिये गितक्कड़ों को छोड़िये।

'देव दयानन्द ने'

वेदों के विचार का प्रचार चारो ओर हुआ,
अज्ञता उड़ादी शुद्ध बोध सुखकन्द ने।
सामाजिक मंगल-मिलिन्द से मिलाप किया,
प्रेम पुण्डरीक के प्रमोद मकरन्द ने।
एकता, सुनीति, स्नेह, समता का देखा दृश्य,
पिण्ड छोड़ा दम्भ के जटिल जाल फन्द ने।
योगिराज कृष्ण बुद्ध शंकर की भाँति हमें,
सत्य समझाया गुरुदेव दयानन्द ने।

'समोद चढ़ जायँगे'

धर्मधारी वैदिक विवेकशील कर्मवीर,
बाधक-विरोधी झंझटों से कढ़ जायँगे।
सत्य के सनेही गुरु-ज्ञानियों की सेवा कर,
बाल ब्रह्मचारी चारों वेद पढ़ जायँगे।
सामाजिक बल से स्वतंत्रता करेंगे सिद्ध,
दोष परतंत्रता के माथे मढ़ जायँगे।
भारतीय भव्य भावना का बल पाय सब,
गौरव के गिरि पै समोद चढ़ जायँगे।

'गुरुदेव दयानन्द का'

धारणा-धरा पै ज्ञान-भानु का प्रकाश पड़े,
अज्ञता गिरावे न अँधेरा मतिमन्द का।
सत्य का सनेही मन भृङ्ग अनुरागी बने,
प्रेम पुण्डरीक के प्रमोद मकरन्द का।
जीवन कुमुद फूले सभ्यता-सरोवर में,
नीति-रजनी में हो उजाला न्यायचन्द का।
सामाधिक ध्यान में विराजे भक्ति शङ्कर की,
तारे उपदेश गुरुदेव दयानन्द का।

'राणा के प्रताप को'

शंकर सुभक्त बनो केवल स्वतंत्रता के
काट दो तुरन्त पराधीनता के पाप को।
देख-देख दुखियों को रोती है—बिसूरती है,
रोको कुल-वीरो देश-माता के विलाप को।
सत्य सदाचार धार न्याय के सँगाती रहो,
छोड़ो कूटनीति की छुतैली छद्म छाप को।
भद्र भावना से यदि जीवन बिताना है तो,
पूजिए प्रताप महाराणा के प्रताप को।

'गोपाल हैं'

देवकी के जाये प्यारे पुत्र वसुदेवजी के,
लाड़ले यशोदाजी के नन्दजी के लाल हैं।
भारत के भूषण प्रतापशील-पूषण-से,
दूषणविहीन बोध-वारिधि विशाल हैं।
ज्ञानियों के गौरव सनेही धर्मधारियों के,
सज्जनों के जीवन खलों के महाकाल हैं।
बैठे हैं कदम्ब तले बाँसुरी बजाते हुए,
शंकर विलोक लोक-वल्लभ गोपाल हैं।

'पोत पैं चढ़त हैं'

शंकर के सेवक दुलारे गुरु लोगन के,
नीति के निकेत निगमागम पढ़त हैं।
जीवन के चारौ फल चाखन की चाह कर,
उन्नति की ओर निशि-वासर बढ़त हैं।
जीवन के भूषण प्रताप-शील पूषण-से,
जिनकी कृपा से पर दूषण कढ़त हैं।
ऐसे नर नागर तरेंगे भव-सागर को,
प्यारे परमारथ के पोत पैं चढ़त हैं।

'ध्यान में धसाई है'

जाके आदि-अन्त को न जोगी जन जानत हैं,
नेति-नेति वेद ने अनेक बार गाई है।
भूमि, जल, पावक, समीर, नभ, काल, दिशा,
आदि में समाई पर सारी न समाई है।
लोकन को रचि-रचि धारति बिगारति है,
पाई सब ठौर पूरी किनहू न पाई है।
ऐसी बड़ी ब्रह्म की बड़ाई गुरुदेवजू ने,
ज्ञान द्वारा शंकर के ध्यान में धसाई है।

'उन्नति यों करिये कविता की'

रूप दिखावत है तम तोप करे हित उष्ण प्रभा सविता की,
लेत सुधा वसुधा जब सीतल होत सुधाकर पै छबि ताकी।
धी, बल दे, जल दै सुख देत हुताशन भेट करै हवि ता की,
जीवन जीवन को रवि शंकर उन्नति यों करिये कविता की।

[सूर्य का कार्य प्रभा है, और कवियों का कार्य कविता है। जिस प्रकार सूर्य प्रभा की उन्नति करता है, उसी प्रकार कवियों को कविता की उन्नति करनी चाहिए। जिससे संसार को लाभ होता है वही उन्नतिशील कहलाता है। सूर्य की प्रभा अन्धकार को दबाकर रूप दिखाती है, कवियों की कविता अज्ञान को हटाकर विद्या सिखाती है। प्रभा उष्ण गुण से अन्नादि की उत्पत्ति द्वारा हित करती है। कविता वीरों का उत्साह बढ़ा कर प्रजा-पालन करती है। प्रभा चन्द्रमा पर जाकर रात्रि को शीतल बनाती है, और वसुधा उससे अमृत लेती है। कविता अन्य विद्वानों के पास जाकर शान्ति रूप से स्थिर रहती है और साधारण लोग उससे अमृत-रूप लाभ उठाते हैं। सूर्य बुद्धि, बल, जल और सुख देता है; कविता द्वारा कवि लोग उपदेश, शूरता तथा रसों का आनन्द देते हैं। प्रभा के द्वारा अग्नि अपने में हवन किए पदार्थों का सार सूर्य की भेंट करता है। राजा-महाराजा अपने पदार्थों को देते हैं। निदान सूर्य जीवों का जीवन-रूप है और कवि उनको आनन्द देने वाले हैं। सूर्य को प्रभा का बल न हो तो वह जगत् का उपकार न कर सके। इसी प्रकार कवियों में कविता-बल न हो तो संसार को आनन्द प्राप्त न हो सके। अतएव कवियों को सूर्य के समान कविता की उन्नति करनी चाहिए—'शंकर']

'किस कारण शंकर कुन्द खिला'

उपजा रसहीन रसा-तल पै बिन रोक न पाल पसार हिला,
कुश कीकड़ हींस करील घने अटके प्रतिकूल कुसंग मिला।
झुक झेल प्रभञ्जन के झटके उलझा-सुलझा दल छोड़ छिला,
इस झाँखर झाड़ सकण्टक में किस कारण शंकर कुन्द खिला।

'मन खींच रहे'

जड़ भक्त उलूक महातम के रवि देख दुरे दृग मींच रहे हैं,
विचरें वक, शंकर हंस बँधे, घर घींच नराधम भींच रहे हैं।
तरु फूल फले मुरझाय रहे घन कीकड़-कानन सींच रहे हैं,
पशु पूज रहे कपटी-कुल को कवि-मण्डल से मन खींच रहे हैं।

'प्रिय ला गदही'

तज माय को गेह कुम्हारि कढ़ी भरतार के गाँव की गैल गही,
दुल दुल्ल दुलादुल चाल चली थक पीपर क तर पोढ़ रही।
बतरान लगी सुन देवरिया अब जेठ की ताप न जाति सही,
डग नाहिं फटे पग सूज गये मोहि लादन को प्रिय ला गदही।

'भारत के सम भारत है'

१

कवि शंकर जोड़ बने इसका वह कौन सुदेश समुन्नत है,
समझे सुरलोक सहोदर जो उनका अनुमान असंगत है।
कवि कोविद वृन्द बखान रहे सबका अनुभूत यही मत है,
उपमान विहीन रचा विधि ने बस भारत क सम भारत है।

२

पहले सब भाँति स्वतन्त्र रहा अब तो परतन्त्र पुकारत है,
जिनका शिरमौर बना उनके अपने शिर पै पग धारत है।
बन शंकर सिद्ध सुबोध, धनी, जड़ रंक हुआ झख मारत है,
बढ़ियापन में घटियापन में बस भारत क सम भारत है।

३

उत रुद्र अनर्गल गाज रहा इत शंकर शान्त पुकारत है,
उत बैर बिलास बिगाड़ करे इत प्रेम-प्रयोग सुधारत है।
उत गौर-गिरोह न जीत सका इत श्याम-समूह न हारत है,
भर जेल उते दुख झेल इते बस भारत के सम भारत है।

'किम कारण कौन निकाली है जाली'

१

शंकर लोक विचित्र बिलोक गुणी मन रोक रहें कब ठाली,
देख अनेक जुदी छबि छेक यथोचित एक नई गढ़ डाली।
यों उपचार नवीन विचार प्रवीण प्रचार करें पर पाली,
भौतिक दृश्य प्रमाण बिना किम कारण कौन निकाली है जाली।

२

चाप चतुर्भज वृत्त त्रिकोणज बंक बिलक्षण जान प्रणाली,
नाग फणी अठमास छमास छला बँद मच्छ पिटी छुरियाली।
अङ्कित फूल कली दल बेल अनेक पै एक ते एक निराली,
शंकर सो सब साँच कहो किम कारण कौन निकाली है जाली।

३

फूल, पता, फल, वृक्ष, लता, हिम[१] जन्तु छता[२] नग-नाग[३] कुचाली,
ये सब अन्य अनेकन की कर एक यथाविधि आकृति घाली।
भूतल पाहन काटन में लिख छील छटी छबि धातु की ढाली,
यों न रची कवि शंकर तो किम कारण कौन निकाली है जाली।

४

पौन, प्रकाश, प्रवेश करे निसरे तम धूम रहे उजियाली,
भीतर दीपक एक धरे पर बाहर होत प्रतीत दिवाली।
चन्द्र छटा, बन, बिज्जु, घटा, पुर, कुंज, अटा, दुर देखत आली,
ये यदि हेतु न शंकर तो किम कारण कौन निकाली है जाली।

१बर्फ के चिन्ह चक्रादि। २मधुमक्खी का घर। ३नगीने-बूटे।

५

लालन लाल प्रकाश कियो ललना लख लीन झरोखन लाली,
दीपक पै धर काँच हरौ निशि के मिस भीर सखीन की टाली।
हेर हरी झझरी झपटे झट शंकर जाय मिले बनमाली,
लक्ष लखावन को जो नहीं किम कारण कौन निकाली है जाली।

६

लेट रही ललिता लखि लालन शंकर कन्दुक लाल उछाली,
गेंद गिरी कुच पै उठ झाँक झरोखन दैन लगी तिय गाली।
गाल बजें उत ग्वालिन के इत ग्वाल-गुपाल बजावहिं ताली,
कौतुक हेतु नहीं तो कहो किम कारण कौन निकाली है जाली।

७

छिद्रन में चख दैन नदी निरखे वृष भानुसुता बनमाली,
पेख पुकार सहोदर को दिखरावत कृष्ण बने तब काली।
पूजत भावज शक्ति सप्रीति निहारि सबन्धु फिरें सुन आली,
भीतर झाँपन को जो नहीं किम कारण कौन निकाली है जाली।

८

सूखि गयौ बिन जीवन-वारि शरीर तड़ाग मिटी हरियाली,
शंकर चेतन कन्त बिना कस कूकत कीरति राज मराली।
को कल हंस उड़ाय दियो कहि रे खल काल कराल कुचाली,
सो जब जो अस पूछत हो किम कारण कौन निकाली है जाली।

["किम कारण कौन निकाली है जाली", यह समस्या फतेहगढ़ से प्रकाशित होने वाले "कवि-व-चित्रकार" के सम्पादक स्व० श्री पं० कुन्दनलाल शर्मा की ओर से दी गई थी। आठ सौ से अधिक कवियों ने इसकी पूर्तियाँ की। उनमें शंकरजी की उपर्युक्त पूर्तियाँ सर्व-श्रेष्ठ सिद्ध हुईं। इस परीक्षक-समिति के सभापति थे श्रीमान् राजा लक्ष्मणसिंह जी]

'प्राण वियोगिनि के न छुड़ाये'

दामिनि भानु कृशानु वियोग हुताशन में पजरें न जुड़ाये,
आँखन आँसुन के निधि में मुनि कुम्भज मान घटाय बुड़ाये।
धीर धराबत हू धड़कै उर स्वासन सर्व समीर उड़ाये,
शंकर या दुख दारुण ने पर प्राण वियोगिनि के न छुड़ाये।

'भाल लिखो लिपि को सक टार'

१

शंकर देशन को सिरताज अधोमुख आज बिना अधिकार,
है पर दास न मोद-विलास धरा-धन पास न त्रास अपार।
श्रीहत अङ्ग न गौरव सङ्ग दुखी चित भङ्ग मरे मन मार,
हा, बन भारत की बिगरी बिधि भाल लिखो लिपि को सक टार।

२

देह धरे न डरे न मरे जग राज करे अस कौन विचार,
सीस उतारि गमार वृथा हर बार पजारि करे मति छार।
प्राण हरें नर-बानर, भालु कपालन में विधि लेख निहार,
बाँचि न साँचहि आँच दशानन भाल लिखी लिपि को सक टार।

'कीरति जाकी'

१

मोहन सो मिल खेलत होरी, रंग-भरी वृषभानु-किशोरी।
वीर बराबर को तिय ताकी, चाह करे रति कीरति जाकी।

२

मोद-सुधा बरसावति है दरसावति है पटुता प्रतिभा की,
भूषण भूषित छन्दन में छबि राखति है रसखानि कथा की।
कोमलता मय शुद्ध छटा यह ता कवि शंकर की कविता की,
राज करे कविराजन की करणी धरणी पर कीरति जाकी।

'धीर धरैना'

१

जाहि अशोक बतावति हैं सब शंकर सो तरु शोक हरै ना,
भीर निशाचर नारिन की करि कोप घनो दुख देत टरै ना।
जी तन प्राण बरें बिरहानल में पर जोबन हाय जरै ना,
हे रघुवीर, अधीर भयौ अब तो मन व्याकुल धीर धरैना।

२

शंकर नाहिं उधार मिले धन बातन ते कछु काज सरै ना,
हारि हिए दिन-राति अनेक उपाय करें पर पेट भरै ना।
रोटिन को रिरियात फिरें कितहू दुखियान की दार गरै ना,
भारत के हतभागिन कौ दल दीन भयौ अब धीर धरै ना।

'पामर पंच कहाये'

बोझ लदे हय हाथिन पै खर खात खड़े नित जात खुजाये,
बन्धन में मृगराज पड़े शठ स्यार स्वतन्त्र पुकारत पाये।
मान-सरोवर में बिहरें वक शंकर मार मराल उड़ाये,
मान घटो गुरु लोगन को जग वचक पामर पंच कहाये।

'सविता गहि भूमि पै डारिबो है'

भरिवो है समुद्र को शम्बुक में छिति को छिगुनी पर धारिवो है,
बँधिवो है मृणाल सों मत्त करी जुही फूल सों शैल बिदारिवो है।
गनिवो है भकूटन को कविशंकर रेणु सों तेल निकारिवो है,
कविता समझाइवो मूढ़न कों सविता गहि भूमि पै डारिवो है।

'कपटी मन को'

लघुता पकड़ी जड़ भक्त बना तज व्यापक शंकर चेतन को,
वह बोध विधा तक क्यों न कहै मछली जल छोड़ चली वन को।
अपमान करे गुरुमंडल का धन से बढ़िया समझे धन को,
भ्रम के वश जो मतिहीन हुआ कब रोक सके कपटी मन को।

'हाथ पसार अकेले'

पालत ही जननी जन के फिर बालक-मण्डल में मिल खेले,
भोग-विलास किये धन के बल, धांग-ग्रसोड़ बने डँड पेले।
घेर जरा अधमा अटकी अब हा, न रहे सुख, संकट झेले,
शंकर आज गए सबको तज है हरि हाथ पसार अकेले।

'आयो अकेलो अकेलो सिधायो'

रोवत मात, पिता, बनिता, दुहिता, सुत, मित्र कोलाहल छायो,
लोगन बाँध मसान में लाय चिता चुन फोर कपार जरायो।
फूँक-पजार गये सब गेह कुटुम्ब में एकहु काम न आयो,
शंकर लायो न लैके चलो कछु आयो अकेलो अकेलो सिधायो।

'ताकनि तेरी'

साथ बली रसराज महा भट पावस की छबि रैन घनेरी,
धार प्रसून शरासन शायक भीर युवा-युवतीन की घेरी।
फूँक रह्यो बिधवा-दल को कुल की अनरीति की आग बखेरी,
भूल गयो रतिनायक शंकर तीसरे चच्छु की ताकनि तेरी।

'अबला अबलों अबलोकति हैं'

जिन बैदिक बीरन की बतियाँ उलटी मति की गति रोकति हैं,
ठुकरावति हैं ठगियापन को कुविचार की पीठ न ठोकति हैं।
सब को शुभकर्म सिखावति हैं हठ का हुरदंग हटोकति हैं,
उनकी बरदा बिधि को बिधवा अबला अबलों अवलोकति हैं।

'सब तारे गुलाबी भये'

रजनी सुख शंकर भोग चुकी भगवान निशापति वे अथए,
ध्वनि फोरत कान नखायुध की रस खेल खिलावत आप नए।
बिकसे अरबिन्द मिले चकई-चकवा मुरझाय कुमोद गए,
रवि की छबि लाल छिपावन को छिटकी सब तारे गुलाबी भए।

'मूरति ही मुसकानी'

भूलि गई सुधि राम को देख ठगी-सी सहेलिन जानकी जानी,
श्यामल गौर किशोर दिखाय बहोर सप्रेम पुजाई भवानी।
शङ्कर चित्र सखी हँसती सिय को सुथरी प्रतिभा में दिखानी,
माल खसी हरि हेर सखी लखि जान के मूरति ही मुसकानी।

'चाह करे मत मेरी'

आगम वेद-पुराण पढ़े सद् ग्रन्थन माहिं रहे रुचि तेरी,
शङ्कर-सेवक न्याय-निकेत महाव्रत सम्पति पाय घनेरी।
जीत सुरासुर लोकन में कल कीरति की करतूलि बखेरी,
हा, दशकण्ठ निशाचर नाश-विधायक चाह करे मत मेरी।

'तन त्याग तरोगे'

एक मता कर आपस में यदि बैरिन के दल सों न डरोगे,
तो सब काल स्वतन्त्र सुखी जगतीतल पै नित राज्य करोगे।
शङ्कर साहस पौरुष के बल जो रण में जुट जूझ मरोगे,
तो कृतकृत्य भये समझो भवसागर सों तन त्याग तरोगे।

'भरपूर भलाई'

'वाद-विवाद विसार महाव्रत धार पसार सनेह सगाई,
वैदिक पद्धति को अपनाकर योग विहीन रहो मत भाई।
सिद्ध बनो शुभ साधन के बल पाय विशुद्ध विवेक बड़ाई,
शंकर है जग-जीवन का फल मित्र करो भरपूर भलाई।

'मन का'

शुभ नाम बना बिधि के पितु से मिल बाहन शंकर की धन का,
पहले पद का रस पी न छका चित भृंग कहो किस सज्जन का।
सबसे मिल भेंट पसार चुका यश-सौरभ गौरव जीवन का,
वह पद्म प्रभाव प्रसुप्त हुआ अब सिंह स्वभाव जगा मन का।

[यह सवैया 'पद्मसिंह' नाम का द्योतक है]

'उन्नति यों करिये कविता की'

मायिक द्वैत उपाधि मिटी अपने तन में अपनी छवि ता की,
शंकर केवल तत्त्व यही जड़-चेतन मिश्रित आकृति जा की।
मैं अनवद्य, अनादि, अनन्त, अखण्ड, अनन्य करूँ भय का की,
जीव दशा तज ब्रह्म भयो कवि उन्नति यों करिए कविता की।

'यों अपनी-अपनी तक ताने'

चेतन दो अज एक अजा जड़ विश्व बने मिल वेद बखाने,
सत्य कहे शिव को, भव को भ्रम-रूप अनन्य उपासक जाने।
सिद्ध सनातन संसृति है बस ब्रह्म निरीश्वरवाद न माने,
शंकर गैल गहे किसकी सब यों अपनी-अपनी तक ताने।

'जगदुन्नति चाहन हारे'

उपदेश यथाविधि बाँट रहे निगमागम को अवगाहन हारे,
सुख दान करें, पर दुःख हरें प्रणपाल सुनीति निबाहन हारे।
छिड़कें चहुं ओर सदुद्यम कौ रस दुर्गति कौ उर दाहन हारे,
कवि शंकर सेवक हैं सबके, सुकृती जगदुन्नति चाहन हारे।

उद्बोधन

१

साथ रही शिशुता जबलों तबलों शिशु-मण्डल में मिल खेले,
जोबन जागत ही सुख-भोगन में मन के सब साधन मेले।
हाय, जरा अब आय चढ़ी रस-भंग भयौ दुख दारुण झेले,
शंकर आज समाज बिसार चले हम हाथ पसार अकेले।

२

छोड़ भयानक भोगन को बन में बस फूल-फली फल खाते,
कर्म्म सुधार महाव्रत धार निशंक समोद समाधि लगाते।
या बिधि शंकर को अपनाय सनाथ कहाय सदा सुख पाते,
सो शुभ औसर बीत गयौ अब तो हम हाय चले पछताते।

३

ढोंग अनेक रचे हमने गुरु लोगन की मरियाद बिगोई,
या छल के बल की प्रभुता पर शंकर वेदन की विधि रोई।
गैल गही कुलबोरन की सब आयु बिसासिन में मिल खोई,
बीत गये दिन जीवन के अब साथ चले अघ और न कोई।

४

दास बने लघु लोगन के पर सेवक शंकर के न कहाये,
लालच के बस लेख लिखे कविता कर कूरन के गुण गाये।
डूबत हैं भवसागर में अब औरन के कछु काम न आये,
केवल पाप कमाय चले हम जीवन के फल चार न पाये।

५

पण्डितराज बने हम शंकर मूढ़न में मिल मार गपोड़े,
भोग-बिलास बसे मन में निगमागम के व्रत-बन्धन तोड़े।
रंक नरेश निशंक ठगे सब ढंगन के रस-रंग निचोड़े,
अन्त भयौ अब जीवन को तन त्याग चले पर पाप न छोड़े।

६

बन्धन-मुक्ति दुकूलन माहिं त्रिधा दुख-वारि भरौ भवसागर,
संसृति-चक्र तरंगन में पड़ तैरत-बूड़त जीव चराचर।
धर्म-जहाज महाव्रत केवट संवित ज्ञान सहायक जा पर,
शंकर साधु तरो चढ़ि तापर बार करौ जिन बार-बराबर।

७

संवितशील सुधी सुकृती नर शंकर का ध्रुव ध्यान धरेंगे,
दूषित वैर-विरोध मिटाकर नित्य सुप्रेम प्रचार करेंगे।
मन्त्र समाज समुन्नति के पढ़ भारत में बल भद्र भरेंगे,
तारक जीवन बोहित पै चढ़ संसृति-सागर शीघ्र तरेंगे।

८

साहस राखि सुकर्म करो नित औरन को अपकार न कीजे,
नीति पसार अनीति बिसार सदा सब को सुख दै यश लीजे।
मान भली गुरुलोगन की सिख शंकर प्रेम सुधारस पीजे,
स्वारथ साधि जियो जग में परमारथ के हित प्राणहुँ दीजे।

९

जब तू अपनी करनी-तरनी शुभ साधन भारन सौं भरि है,
चढ़ि तापर शंकर केवट के ढिंग धर्म धरोहरि को धरि है।
पुनि गैल गहै उपकारिन की तब संसृति-सागर सौं तरि है,
क्षणभंगुर जीवन के दिन बीत गये पर बोल कहा करि है।

१०

बन्धन बेलि बढ़ावति है सुखदा सनभौ मत सम्पति फीकी,
जीवन पै तज बैर दयाकर जान महौषधि जीवन पी की।
है सब के सुख में अपनो सुख सिद्ध कहावत है सबही की,
लोक-प्रबन्ध बिगाड़ न शंकर या जग में करनी कर नीकी।

११

तन त्याग प्रयाण किये सबने न टिके गतिशील गृही न वनी,
धर मृत्यु-महासुर ने पटके कुचले कुल रंक बचे न धनी।
भव-सागर को न तरे जड़ वे जिनकी करनी बिगड़ी, न बनी,
बिन भेद मिले प्रभु शंकर से प्रतिभा बिरले बुध पाय घनी।

१२

हम दीन दरिद्र हुताशन में दिन-रात पड़े दहते रहते हैं,
बिन मेल विरोध-महानद में मन-बोहित-से बहते रहते हैं।
कवि शंकर काल-कुशासन को फटकार कड़ी सहते रहते हैं,
पर भारत के गत गौरव की अनुभूत कथा कहते रहते हैं।

१३

इस मानसरोवर से अपनी उस पोखर का न मिलान करेंगे,
पिक, चातक, कीर, चकोर, शिखो सबका अब तो अपमान करेंगे।
कवि शंकर काक, शचान, कुही कुल को अति आदर-दान करेंगे,
बक राजमराल बने पर हा, जल त्याग न गोरस पान करेंगे।

ब्रह्म-ज्योति

१

ज्योति अखण्ड निरंजन की भरपूर प्रशस्त प्रकाश रही है,
दिव्य छटा निरखी जिसने उसने दुविधा भ्रम की न गही है।
सिद्ध विलोक बखान रहे सबने छबि एक अनन्य कही है,
तू कर योग निहार चुका अब शंकर जीवनमुक्त सही है।

२

अबलों न चले उस पद्धति पै जिसमें व्रतशील विनीत गये,
वह आज अचानक सूझ पड़ी भ्रम के दिन बाधक बीत गये।
प्रभु शंकर की सुधि साथ लगी मुख मोड़ हठी विपरीत गये,
चलते-चलते हम हार गये पर पाय मनोरथ जीत गये।

३

जिसने सब लोक रचे सबको उपजाय, बढ़ाय विनाश करे,
सबका प्रभु साथ रहे सबके सब में भरपूर प्रकाश करे।
सब अस्थिर दृश्य दुरें दरसें सबका सब ठौर विकाश करे,
वह शंकर मित्र हितू सबका सब दुःख हरे न हताश करे।

४

जाल प्रपंच पसार घने, कुल-गौरव का उर फाड़ रहा है,
मानव-मण्डल में मिल दाहक दानव दुष्ट दहाड़ रहा है।
जाति-समुन्नति की जड़ को कर घोर कुकर्म उखाड़ रहा है,
भूल गया प्रभु शंकर को जड़ जीवन-जन्म बिगाड़ रहा है।

५

सभ्य समागम के प्रतिकूल न मूढ़ भयानक चाल चला कर,
वंचक, बान बिसार बुरी रच दंभ किसी कुल को न छला कर।
देख विभूति महाजन की पड़ शोक हुताशन में न जलाकर,
शंकर को भज रे भ्रम को तज रे भव का भरपूर भलाकर।

६

आय बसी तन माहिं जरा अबतो सित केश बिलोक लजो रे,
चाल चलो गुरु लोगन की गहि वैदिक धर्म्म अधर्म्म तजो रे।
छोड़ धरो छलके हथियार महा सुख साधक साज सजो रे,
श्वास रहे जबलौं तबलौं प्रभु शंकर को धर ध्यान भजो रे।

७

कर कोप जरा मन मार चुकी बलहीन सरोग कलेवर है,
परिवार घना धन पास नहीं भुज भग्न दरिद्र-भरा घर है।
सब ठौर न आदर मान मिले मिलता अपमान अनादर है,
मुझ दीन अकिञ्चन की सुधिले सुखदे प्रभु तू यदि शंकर है।

षट्पदी छन्द

'विस्तारिये'

भेज-भेज कर कार्ड बात मनमानी कहिये,
सब से कविता-लेख यथोचित लेते रहिये।
रचना प्रेषक भक्त मदद का मुण्ड झुकादें,
शंकर खरचें दाम डाक-महसूल चुकादें।
उन ख्याति-लोलुपों को कभी धन देना न विचारिये,
इस भाँति पत्र-संचालको, यश अमोल विस्तारिये।

'सुमति शारदा सिद्ध हो'

शंकर शुद्ध चरित्र बुद्धि सुविचार प्रचारे,
सुन्दर देह पवित्र क्रिया कर बल विस्तारे,
शुभ-समृद्धि-सम्पन्न विलास-विभूति बगारे,
लब्धप्रतिष्ठ प्रसन्न प्रशंसा सुयश पसारे।
कुल-भूषण गौरव देश का दान-वीर सुप्रसिद्ध हो,
शुभचिन्तक प्रजा-प्रजेश का सुमति शारदा सिद्ध हो।

'बरसात में'

१

उमड़ि-घुमड़ि घहरात घने घन घिर-घिर आये,
छोड़त छिति पर छबि छटान छिन-छिन छबि छाये।
धौरे धूसर धूम धार सम श्याम सुहाये,
झंझा झोकन झूमि-झूमि झुकि-झुकि झर लाये।
अब ताप न आतप में रह्यो पावक बहुत न बात में,
सब जगतीतल सीतल भयो शंकर या बरसात में।

२

रुम-झुम झरना झरत झिल्ली-झींगुर झिंगारें,
पल-पल पै प्यारे पपिहा पिउ पीयु पुकारें।
बिहरत बिरदी बार-बार बारिन में बोलें,
मतवारे मृदु मुग्ध मिलिन्दगण गुंजत डोलें।
कस कूजत कल रव कोकिला शंकर सुख सरसात में,
मधुरी ध्वनि कानन में सुधा बरसावति बरसात में।

३

फूल-फूल तरुपुंज फले फलहीन फलाये,
फूले बिनफूले फूले फिर फूलन छाये।
पल्लव झोटा लेत झुण्ड झूलत पतान के,
ठौर-ठौर लागे लपेट लौनी लतान के।
परिमल पराग मकरन्द कढ़ि मिलत सकल संघात में,
जग-जीवन को जीवन भयो बन बिनोद बरसात में।

४

बरसें धारा धार मेघ मारुत के मारे,
दामिनि करति विलास दुरे दिनकर, शशि, तारे।
उमड़े झावर, झील, तड़ाग, नदी, नद नारे,
तमको तिमिर-प्रताप भये जल-थल सब कारे।
चकवा, चकवी, कैरव, कमल भेद करें दिन-रात में,
घर-बाहर दीखत नाहिं कछु, बिन प्रकाश बरसात में।

'हा न किसी विधि से बचे'

एक अनादि अनन्त अनामय मंगलराशी,
अनघ सच्चिदानन्द विश्वव्यापक अविनाशी।
सकल शक्ति-सम्पन्न, सनातन वेद बखाने,
अमित बोध वागीश मुक्त शंकर जग जाने।
हे नाथ, अकारण आपने क्यों कराल रूपक रचे,
हम डाले कर्म-प्रवाह में हा, न किसी विधि से बचे।

'चरणों में रख दीजिए'

जो भव-भोग विसार सुयोग प्रसार रहे हैं,
मेट विकल्प विकार निशंक पुकार रहे हैं।
परमोदार विचार प्रसंग प्रचार रहे हैं,
सबको सौंप सुधार अनघ उद्धार रहे हैं।
उन गाँधीजी महाराज के शंकर दर्शन कीजिए,
श्री खण्ड दरिद्र-समाज के चरणों में रख दीजिए।

'जीवन-ज्योति जगी रहे'

शुद्ध बोध अपनाय विश्व-वल्लभ बलधारे,
पौरुष-प्रभुता पाय प्रगल्भ प्रताप प्रसारे।
शुभ समृद्धि-सम्पन्न बने सुकृती सुख भोगी,
परमोदार प्रसन्न रहे प्रिय प्रेम प्रयोगी।
हा, उन्नत बृहदुत्कर्ष की सुषमा साथ लगी रहे,
हे शंकर भारतवर्ष की जीवन-ज्योति जगी रहे।

'संसार में'

केशव, तुलसी, सूर आदि यदि जीवित होते,
तो हम सबसे दूर बैठ कर आदर खोते।
तुकियों में कवि-थोक न नाम लिखा सकता है,
शंकर-सा डरपोक न दर्प दिखा सकता है।
हम तुकड़राज कहा रहे पढ़ुओं की भरमार में,
गढ़ गीत गितक्कड़ गा रहे सुबुध आर्यसंसार में।

'देशभक्ति-भाजन बने'

वैमनस्य कर दूर परस्पर प्रेम पसारें,
दिव्य भाव भरपूर सुमति महिमा विस्तारें।
कर्म करें अति शुद्ध सनातनधर्म प्रचारें,
हों सुमित्र अविरुद्ध अशुद्ध विलास बिसारें।
हठवाद मोह-माया तजें ह्रास अधोगति को हनें,
मदहारी शंकर को भजें देशभक्ति-भाजन बनें!

'भूल न द्विविधा दूर हो'

शंकर ब्रह्म विशुद्ध जिसे मुनि जान रहे हैं,
पर, विज्ञान-विबुद्ध न उसको मान रहे हैं।
वाद-विवाद पसार पक्ष-प्रतिपक्ष लड़ाये,
सिद्ध सकार-नकार न दोनों दल कर पाये।
अविकल्प स्वयम्भू एक में क्या स्वभाव भरपूर है,
यदि हाँ, तो विश्व-विवेक में भूल न द्विविधा दूर है।

'अम्बिका'

सर्व-शक्ति-सम्पन्न सर्वसंघात एक तू,
जड़-चैतन्य विशिष्ट रूप धारे अनेक तू।
तूही अखिलाधार धार संसृति-सागर की,
सत्ता तुही त्रिदेव विधाता हरि शंकर की।
कुचले जीव-समूह को तू बनि प्रबल प्रलम्बिका,
त्यों सकल अमंगल नाश कर कवि-मण्डल के अम्बिका।

'सुर-सरिता तारन चलो'

राम रजायसु पाय लाय जल पाय पखारे,
कर पादोदक पान पितर अपने उद्धारे।
सेवक-स्वामि विलास देख उमगे सुर सारे,
धन्य-धन्य बहु बार पुष्प बरसाय पुकारे।
कवि शंकर केवटराज के हाथ लग्यो अवसर भलो,
भवसागर तारनहार को सुर-सरिता तारन चलो।

'कवि-कोविद मिलते रहैं'

शंकर प्रेम प्रधान गान अलिगण गुञ्जारे,
कृति कोयल माधुर्य धार चहुँ ओर पुकारे।
गद्य-पद्य तरु-पुञ्ज-कुञ्ज नवरस सञ्चारे,
कोमल शब्द सदर्थ दिव्य भूपक्ष दल धारे।
सम्पादित वैदिक धर्म के लेख-पुष्प खिलते रहैं,
साहित्य-विलास-वसन्त से कवि-कोविद मिलते रहैं।

'मंगलमूल हो'

जीवन-जन्म सुधार प्रीति रस-रीति सिखावे,
प्रतिभा पुण्य पसार समोद सुदृश्य दिखावे।
फूल फले परिवार मनोरथ सिद्ध कहावे,
कर सबका सत्कार सुयश का स्रोत बहावे
आदर्श सुकर्म-समूह का भव्य भाव अनुकूल हो,
यों पौरुष बिन प्रत्यूह का शंकर मंगलमूल हो।

'छूत-अछूत क्यों'

समझ धर्म का मर्म प्रेम भरपूर पसारो,
करते रहो सुकर्म जाति पर जीवन वारो।
आपस में कर मेल भूल-भ्रम भेद भगादो,
हिल-मिल खेलो खेल सुकृति की ज्योति जगादो।
हितकारी शंकर को भजो कहते हैं, गुरु लोग यों,
मत शुद्ध एकता को तजो पकड़ी छूत-अछूत क्यों।

'संसार में'

हिल-मिल भैंसा, बैल, ऊँट, खच्चर, हय, हाथी,
पकड़ो और न गैल बनो खर-दल के साथी।
यदि प्रजेश को भूल प्रजा बलिदान न देगी,
तो विधि के प्रतिकूल नाश अपना कर लेगी।
जो हुकुम, सिंह का मानते विचरें वे पशु हार में,
हा, हेकड़ खोज न जानते शंकर सुख संसार में।

'भक्त न शंकर के रहे'

धन्य लोक-अभिराम धर्म धरणी पर आया,
भारत का था नाम हिन्द इस्लाम कहाया।
हमने भी सदुदार धवल हिन्दूपन धारा,
अपना किया सुधार अनिष्ट बिगाड़ बिसारा।
हम हिन्दू हिन्दी बोलत ब्रजभाषा के गुण गाहे,
जड़ता की खोली खोलके, भक्त न शंकर के रहे।

'उन्नति कवि-कुल-रवि करत'

शब्द अर्थ, सम्बन्ध युक्त भाषा विशाल थल,
शक्ति-सरोवर गद्य-पद्य-रचना विशुद्ध जल।
आशय-मूल प्रबन्ध नाल भूषण-सुन्दर दल,
शंकर नवरस-फूल ग्रन्थ मकरन्द-मोद फल।
परहित पराग छक-छक मुदित रसिक भृंग-गण गुंजरत,
नित या साहित्य-सरोज की उन्नति कवि-कुल-रवि करत।

'भज शंकर भरतार को'

सुख भोगे भरपूर पायर वामदेव को,
रहती है कब दूर त्याग रति कामदेव को।
प्रेम-भक्ति अपनाय बनी सिय शक्ति राम की,
उलही प्रिया कहाय रुक्मिणी रसिक श्याम की।
यों सधवा धर्म-प्रचारिणी तज तुक्कड़ कुल जार को,
हे कविता मंगलकारिणी भज शंकर भरतार को।

'मारुत-पूत है'

संवितशील विशुद्ध ब्रह्मचारी शुभकारी,
वैदिक धर्म धुरीण धीर योधा बलधारी।
सेवक दीन विरक्त वृन्द त्राता असुरारी,
सज्जन बन्धु सुकण्ठ शोक बाधा भयहारी।
सर्वज्ञ सत्य संकल्प श्री रामचन्द्र को दूत है,
विख्यात कीश-कुल-केशरी शङ्कर मारुत-पूत है।

'ता रहे'

धारे सुमन सुगन्ध दीन गुड़हर को बिरवा,
शङ्कर जान गुलाब गिरै गोबर को किरवा।
लपक कीटहिं जान जपा भूषण भौंरन को,
गुबरीला रसपान करे फांक फूलन को।
इन दोउन की बरसात-भर उलही प्रेम-लता रहे,
पट सूख जात है, शरद में एक न डार पता रहे।

'नहि भेद विचार है'

शिशुता को तम तोप ज्योति जौवन की जागी,
मार मार की खाय लगी लौ-लाज न भागी।
लालहि लखि अनखाय मनायो मन अनुरागी,
पै न लाग की आग बुझी सकुची उर लागी।
फिर भाव न भायो भेद को भई भावतो की सगी,
कवि शंकर पाय सुहाग-सुख भोग सुधारस में पगी।

[स्वकीया, उत्तमा, मध्यमा, अधमा, मुग्धा, अज्ञात यौवना, मुग्धा ज्ञात यौवना, नवोढ़ा, निश्रब्ध नवोढ़ा, मध्या, प्रौढ़, रतिप्रीता, आनन्द सम्मोहिता ये सारी बातें एक ही छन्द में भर दी हैं; तथा धीरा, अधीरा और धीरा आदि भेदों को निरादर से सूचित किया है। कनिष्ठा अभाव रूप से प्रकट है। शंकर']

'जीवन-ज्योत जगाइये'

शंकर वैदिकधर्म धार मत-पन्थ बिसारो,
मुख्य मान शुभ कर्म सुमति महिमा विस्तारो।
पुण्य-प्रताप प्रसार पाप को पटक पछाड़ो,
करिये सर्व-सुधार न विधि की बात बिगाड़ो।
भारतमाता की ख्याति में हा लघुता न लगाइये
कुल-वीरो मरती जाति में जीवन-ज्योति जगाइये।

'दाहक जेठ जरै लगो'

सूखे झाबर-झील, तड़ाग-नदी, नद-नारे,
खौले सागर-शैल बरे झुरसे वन सारे।
भूमि भई सुनि भानु दसो दिस ज्वाला जागी,
शङ्कर सीतलता न रही जाने कित भागी।
सब जीवन को धरि आगि में हाय, अचेत करै लगो,
यह औरस पूत निदाघ को दाहक जेठ जरै लगो।

'शङ्कर धनु दमनीय की'

विद्याधर गन्धर्व नाग-नर किन्नर सारे,
बैठे बात बिगार देव-दानव हिय हारे।
दूरि भयो उत्साह बढ़ी चहुं ओर उदासी,
सोच करे रनिवास फिरैं व्याकुल पुरवासी।
यह देखि दशा बोले जनक आस तजो सब सीय की,
कुल कीरति है मेरी सुता शङ्कर धनु दमनीय की।

'लाल की'

शंकर सुकवि किरीट गिरो कविता के शिर को,
हा, दीपक बुझि गयो भारती के मन्दिर को।
नाहिं चले साहित्य नागरी की कटि टूटी,
साहस भयौ हताश आँखि उन्नति की फूटी।
जड़ भारत पै रिस-बीजुरी परी कुचाली काल की,
रुचि मन की मन में ही रही रसिक 'मनोहर लाल की'।

['रसिकमित्र'-सम्पादक पं० मनोहरलाल मिश्र के देहावसान पर यह पूर्ति की गयी थी। सम्पा०]

कवि-कीर्तन

सुन्दर शब्द प्रयोग मनोहर भाव रसीले,
दूषण-हीन प्रशस्त पद्य भूषण भड़कीले।
प्रिय प्रसादता पाय मर्म महिमा दरसावे,
रसिकों पर आनन्द सुधा-शीकर बरसावे।
जिनके द्वारा इस भाँति की परम शुद्ध कविता कढ़े,
उन कविराजों का लोक में सुयश सदा शंकर बढ़े।

कविता-कीर्तन

१

श्रीकवि-मण्डल को महेश मंगलमय राखे,
काव्य-सुधाधर को पियूष कोविद-कुल चाखे।
पूजहिं पूरक-कञ्ज शुद्ध साधन सविता को,
शंकर आदर-मान मिले मधुरी कविता को।
अधिवेशन माँहि गुणीन को यश प्रकाश पूरण करे
गुण भाँति-भाँति के भारती भारत-भाषा में भरे।

२

आशय अम्बर ओढ़ि अलौकिक भूषण धारे,
छन्द छबीले अंग सरस करतूति बगारे।
मधुर मनोहर भाव-भरे रूपक दरसावे,
रसिकन के उर माँहि रसीली रस बरसावे।
उमगी असीम आनन्दमय मुक्ति कथा बाँचति रहे,
कवि-मण्डल में कविता-नटी निशि-वासर नाचति रहे।

गुरु-ज्ञानामृत

मानव-धर्म प्रचार बढ़े वैदिक जीवन से,
सब को जगदुद्धार सुधारे साधन-धन से।
सामाजिक व्यवहार पुष्ट हो सुकृती तन से,
उमगे सत्य प्रसार वचन के द्वारा मन से।
उर धार दया-आनन्द से गुरु-ज्ञानामृत पीजिये,
श्री शंकर करुणाकन्द से मेल निरन्तर कीजिये।

पवित्र जीवन

विद्या पढ़कर बुद्ध बनो वैदिक जीवन से,
तप से होकर शुद्ध पसारो प्रेम-कथन से।
करते रहो सुकर्म वीर बलधारी तन से,
सत्य सनातनधर्म न हटने पावे मन से।
शंकर योग प्रयोग का सामाधिक रस पीजिये,
हितहारी लौकिक भोग का त्याग यथोचित कीजिये।

जीवन-महत्त्व

मुखिया वैदिक सिद्ध जिसे जन जान रहे हैं,
परमोदार प्रसिद्ध महामति मान रहे हैं।
जिसने जन्म सुधार सुकृति का स्रोत बहाया,
कर सद्धर्म-प्रचार यशोधर धीर कहाया।
यों जीवन-काल बिता रहा जनता के उपकार में,
रे शंकर, बोल उसे कहा किसने लघु संसार में।

स्वराज्य-स्वाधीनता

शंकर प्रेम पसार सुमति की ज्योति जगादो,
वैर-विरोध बिसार अधोगति मार भगादो।
छोड़ कुपन्थ अनेक एक पद्धति अपनालो,
वीर टिका कर टेक सुरक्षित राष्ट्र बनालो।
कर दूर दुर्दशा-दीनता भारत फिर ऊँचा चढ़े,
सुख दे स्वराज्य-स्वाधीनता विद्या-बल-वैभव बढ़े।

गौर-श्याम-संग्राम

एक ओर विष घोर गाल पशुबल के बाजे,
सदय दूसरी ओर सुधा मुख सद्गुण गाजें।
एक थोक तज न्याय निशंक अनीति पसारे,
प्रतियोगी-दल हाय धर्म पर जीवन वारे।
रिपु रुद्र त्रिशूली वाम का शंकर सुख सञ्चार है,
इस गौर-श्याम-संग्राम का इष्ट बिगाड़-सुधार है।

प्रतिभा

शंकर, जिसका नाम सुकवि का यश विस्तारे,
अगला-पिछला वर्ण तरणि का तेज पसारे।
अन्तिम अक्षर दिव्य छटा छवि की दरसावे,
त्रिभुवन में आनन्द तीन विधि से बरसावे।
जो एक तुला पर तोलती रङ्क और महाराज को,
उस प्रतिभा की पूजा करे सभ्य-सुबोध, समाज को।

विश्व-रचना

प्रकटे भौतिक लोक मेघ तड़िता ग्रह तारे,
झील, नदी, नद, सिन्धु, देश, वन, भूधर भारे।
तन स्वेदज, उद्भिज्ज, जरायुज अण्डज सारे,
अमित अनेकाकार चराचर जीव निहारे।
नव द्रव्यों के अति योग से उपजा सब संसार है,
इस अस्थिर के अस्तित्व का शंकर तू करतार है।

विमल विवेक

प्रकटे शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, धार तू,
सर्व, सर्वसंघात, ख, मारुत, अग्नि, आप, भू।
शुद्ध-सच्चिदानन्द, विश्व-व्यापक, बहुरंगी,
मन, दिगात्मा, काल, सत्व, रज, तम का संगी।
हे अद्वितीय तू एक ही अविचल, चले अनेक में,
यों पाया शंकर को तुही शंकर विमल विवेक में।

आलसी-निरूपण

आस्तिक आलसी

एक अनादि अनन्त अन्नमय मंगलराशी।
शुद्ध सच्चिदानन्द विश्व-व्यापक अविनाशी।
सर्व शक्ति-सम्पन्न सनातन वेद बखाने,
ब्रह्म-बोध-वारिधि विमुक्त शंकर जग जाने।
करतार, अकारण आपने क्यों कराल कौतुक रचे,
हम डारे कर्म-प्रवाह में हाय, न काहू विधि बचे।

विशुद्ध आलसी

उपजावे उर में असीम आनन्द उदासी,
आँखन में अँगड़ाति नींद मंगल महिमा-सी।
केलि करे करतूति कथा केवल बातन में,
भूल-भरी भरपूर उठे उत्साह न मन में।
नित पलका पै पौढ़े रहें एक भरोसे राम के,
कवि शंकर साहसहीन हम और न काहू काम के।

धर्मध्वज आलसी

औरन के अपकार बिना धन हाथ न आवे,
ऐसे अनभल-भाजन को फिर कौन कमावे।
लोभी सम्पति पाय पाप की पूँजी जोरें,
पै संतोष-निकेत नाहिं अघ-ओघ बटोरें।
तन त्याग पातकी अन्त को नरकन में भर जायँगे,
सब कर्महीन हम-से खरे भवसागर तर जायँगे।

कुसीद-आलसी

तन को चकनाचूर करे खेती सुख-सूनी,
सेवा विष की बेल पीर उपजावे दूनी।
दुख दे उन्नति के शिर पै वाणिज्य चढ़ावे,
पर हाँ उद्यम-राज ब्याज आनन्द बढ़ावे।
सुखदा कुसीद की जीविका याहि कहो कैसे तजें,
कछु काम नाहिं ठाली पड़े बैठे ठाकुर को भजें।

उद्दण्ड आलसी

विद्या की सुधि भूल धीरता लातन मारी,
उद्यम की दर खोय धूरि सेवा पर डारी।
कोसें साधन को विचार की छाती छोलें,
अंडबंड बोलें निशङ्क बौरे-से डोलें।
गुरु लोगन के गुरुदेव हम घर-घर पूजे जात हैं,
गुण गाय लाड़लीलाल के माल पराये खात हैं।

वाग्वीर आलसी

जोर अनेक समाज अनर्गल गाल बजाये,
साहस के स्वर साध गीत गौरव के गाये।
उन्नति की आशा प्रसंग के संग नचाई,
पीट-पीट तारी सुधार की धूम मचाई।
कवि शंकर सेवा में रहे, अनुरागी उपदेश के,
हम चंदा कौ चारौ चरें हैं हितकारी देश के।

औघड़ आलसी

छोड़ घनो परिवार पिता सुरधाम सिधारे,
बूड़े संकट-सागर में सुख-भोग हमारे।
अंबर, भूषण और बेच बासन सब खाये,
होन लगे उपवास घिरे घर में घबराये।
तब लोक-लाज कुल-कानि को चाट रची रचना नई,
गुरु औघड़ के चेला भये चैन करें चिंता गई।

अक्खड़ आलसी

वंचक चोर कठोर कुचाली घोर घमंडी,
पामर पोच पिशाच पिशुन पूरे पाखंडी।
क्रोधी कटुवादी-लवार कच लंपट कामी,
सूम निरंकुश नीच क्रूर कुल-नायक नामी।
कमचोर कुजाति जमात की पाप-कथा कबलों कहैं,
इन साधु वेशधारीन में हम-से मुनि मुखिया रहैं।

शंकर करतार

शुद्ध सच्चिदानन्द स्वयंभू शिव सविता तू,
पूरण पुरुष प्रमाण प्राण प्रिय परम पिता तू।
इन्द्र भूमि जल अग्नि वायु आकाश काल तू,
विश्व-विधायक विश्व विश्वपति विश्वपाल तू।
रमि रह्यौ सर्वसंघात में निर्गुण गुण गण धार तू,
सब जीवन को जीवन बनो रे शंकर करतार तू।

ब्रह्म-स्तवन

ओमक्षर अखिलेश अर्यमा अज अविकारी,
गौरव ज्ञान गणेश नित्य निर्गुण गुण धारी।
विद्याधर बुध बुद्ध ब्रह्म वसु विश्व-विधाता,
सत्य सनातन शुद्ध मुक्त मनु मंगलदाता।
श्री शंकर करुणाकन्द को सर्व शिरोमणि मानिये,
गुरुदेव सच्चिदानन्द को धार योग-बल जानिये।

हिन्द के हिन्दू

धन्य लोक-अभिराम धर्म धरणी पर आया,
भारत का धर नाम हिन्द इस्लाम कहाया ।
शंकर परमोदार प्रबल हिन्दूपन धारा,
करता क्यों न सुधार बढ़ाकर मान हमारा ।
हम हिन्दू हिन्दी बोलते निरखें उरदू की अदा,
रस दा वाणी में घोलते लिखते-पढ़ते हैं सदा ।

उत्थान

भरती है भरपूर लमक ऊपर लाती है,
वारि बहाय-बहाय अधोमुख मुड़काती है ।
जल-घड़ियों की माल रहट पर यों फिरती है,
इस प्रकार प्रत्येक जाति उठती-गिरती है ।
अब होगा भारत का भला सब सुयोग सुख-मूल है,
गुरू गाँधी-से ज्ञानी मिले शंकर प्रभु अनुकूल है ।

मायिक परिणाम

मन के हर्ष विषाद करें मोटा-कृश तन को,
तन के रोग-विकाम दुःख-सुख देते मन को ।
ज्ञान-क्रिया उपजाय फुरें चेतनता-जड़ता,
इनका अन्तर-भेद निराला सूझ न पड़ता ।
अद्वैत सर्वसंघात के पुरुष—प्रकृति दो नाम हैं,
कूटस्थ शंकरानन्द में सब मायिक परिणाम हैं ।

क्या किया ?

बालक, दीन, अनाथ, हाय, अपनाय न पाले,
दलित देश के साथ प्रेम कर कष्ट न टाले ।
संकट किया न दूर अभागे विधवादल से,
मान-दान भरपूर न पाया मुनि-मण्डल से ।
गरिमा न गही गोपाल की ज्ञान न गुणियों से लिया,
शठ शंकर लोभी-लालची पाय प्रचुर पूँजी जिया ।

चोटी

चोटी कहै कौन काल-ब्याल की कुमारी कारी,
लंक पै लटक फन सीस पै पसारे है।
कुन्दन के युगल कमल काक-रचन में,
काढ़ै चख चोखे सीस फूल मणि धारै हैं।
मोती-भरे दशन सिंदूर-रेख रसना-सों,
झूमर गरल झर माँग मुख फारे है।
प्यारे रूप-कोष को रखावति है रोष-भरी,
भाग-भाग शंकर भुजंगिनी निहारै है।

माँग

सुन्दरता अंबर सिंगार अवतंस सारे,
अंग हथियार हाव-भाव चण्ड चाल-ढाल।
शंकर निशंक निठुराई रिस राखै उर,
बीर बर बाँको तेरौ आनन बिसाल बाल।
योगिन को बैरी भलो चाहत न भोगिन कौ,
काम कौ सँगाती बिरहीन कौ कराल काल।
या ने बेनी म्यान सों निकार मन मेरो काट,
पटिया फरी पै धरी माँग करबाल लाल।

भाल

विश्वकरमा कौ कोणमापक है यन्त्र कैधों,
चापाकृति खेत चतुराई कौ बिसाल है।
काम कौ अखाड़ो है कि शोभा कौ बिहारथल,
सेतु रूप-सिन्धु कौ कि आधौ इन्दु बाल है।
या के बीच अबनी कौ लाल है कि लाल है,
प्रबाल है कि गोल बिन्दु बन्दन को लाल है।
पूजत हैं शंकर सुजान अनुरागी बड़—
भागिन को भायौ भलौ भामिनी कौ भाल है।

भृकुटी

मोहिनी मनोहर ये मोह की पताका है कि,
मारण के मंत्र मृगमद सों लिखाये हैं।
काल की कटारी है कि प्यारे मुख-चन्द्र पर,
कारे लट नागिन के छौंना चढ़ि आए हैं।
शंकर पं काम ने कृपाण-कोप काढ़े हैं कि,
रोष-भरे रूप ने पिनाक लै चढ़ाये हैं।
घूरते ही घायल भये हैं तेरे आनन को,
लाखन पं भृकुटी के आरे-से चलाये हैं।

नेत्र

प्यारे चख चंचल निहारे कजरारे,
सितकारे रतनारे मतबारे बरनी के हैं।
ऐसे न सती के न शची के न शकुन्तला के,
हैं न मैनका के न मनोज-घरनी के हैं।
रूप-सरिता में तरनी से तरैं कैसे खल,
खंजन न वारिज न वारिचरनीके हैं।
शंकर बखाने अब का के हरनी के दृग,
फीके हरनी के नीके मनहरनीके हैं।

कर्ण

बेनी अलबेली ब्यालनी के हैं बिसाल बिल,
कोटर हैं कैधों दृग खंजन खगन के।
प्यारी के करन शोभा-सागर के सीप हैं कि,
शंकर सुजान फूल फूले हैं गगन के।
सोहैं कल कुंडल करनफूल कुन्दन के,
जिनमें जड़ाऊ जगमगत नगन के।
चेरे मुखचन्द के चकोर चोबेदार मानो,
प्रगट करत भाव सबकी लगन के।

'वृषभानु लली को'

बोली री वृषभानु लली को,
पूछो ऐसी चाल चली को।

सुधि सहेट की गैल गहावे, घर की ओर लाज लौटावे,
इर-फिर चकरी-सी चकरावे, रोकि रही कुल-कानि गली को।
अटकी जानि उमंग रिसाई, सटकी भय-शंका सकुचाई,
चटकी चाह चौक लों लाई, लैगई लगन बिहार-थली को।
पायो रसिकराज मन भायो, नख-सिख लों अनुराग समायो,
रस रसनायक ने बरसायो, खेल खिलाय मनोज बली को।
ननदी ठीक थाँग ले आई, भौजी के ढिंग भेजो भाई,
काली बनि बैठे यदुराई, आय गयो अनुमान हली को।
भींत फाँद पहुंचो असिधारी, नारी पूजा करत निहारी,
रिस बिसारि बोल्यो सुन प्यारी, कबहुँ न लगत कलंक भली को।
छोड़ि समाधि सती सो रोई, नाथ, कहो किन मोहि बिगोई,
पर हित हानि करे जो कोई, ता समान जगमाँहि मली को।
भगिनी के छल पै पछितायो, धन को धींग धनी घर लायो,
शंकर ताको भेद न पायो, प्रेम-लता बनि फूल फली को।

'ठानी है'

श्री रसिक-शिरोमणि की महिमा जानी है,
साहित्य-सुधा-रस चाखन की ठानी है।
सुखसागर नागर सभ्य सभा में आओ,
उर धर्म धीर धर धर्मराज बन जाओ,
तजि पक्षपात करि न्याय विमल यश पाओ,
साँचे गुणग्राहक शुद्ध कृपालु कहाओ,
स्वीकार करो जो पै यह मन मानी है,
साहित्य-सुधा-रस चाखन की ठानी है।

जाकी रचना चतुरन के चित्त चुरावे,
कोमल शब्दन में सरल भाव दरसावे,
बिन दूषण भूषण भूषित रस बरसावे,
सो कवि-कुल-कमल-दिनेश सुकीरति पावे,
सुनिए अब और कहानी समझानी है,
साहित्य-सुधा-रस चाखन की ठानी है।

पदवी प्रदान कर संवितशील कविन को,
उपहार दीजिए पूरक बड़भागिन को,
फिर होनहार गुण-भाजन जानो जिनको,
बाँटो सानन्द असीस-बधाई तिनको,
आगे केवल बेतुकी तान गानी है,
साहित्य-सुधा-रस चाखन की ठानी है।

बेडौल बनावट अंडबंड गति जाकी,
अनमेल कथा कोरी कलंक की काकी,
रूखी बलहीना बैरिन काव्यकला की,
झट पोल खोलिए ता खोटी कविता की,
शंकर वह दूध न होय निरो पानी है,
साहित्य-सुधा-रस चाखन की ठानी है।

मेंढ़क-मण्डल

'बरसात में'

१

मूत रहे जीमूत वमन मोरिन को लागी,
तज पुरवास कुवास बधू बाहर को भागी।
छूट गयो मल पेट भए कुंडिन के रीते,
भेक चले उतरात पङ्क-पूरित जल पीते।
सो कढ़ि पोखर की पार पै जुर-मिल बैठे रात में,
यों मेंढक-मण्डल को भयो अधिवेशन बरसात में।

२

मण्डलेश उठ गाल सगर्व फुलाय पुकारो,
सब जानैं मण्डूक-वंश विख्यात हमारो।
धन्य हमारी जाति शुद्ध रसना बिन बोले,
धन्य हमारो बोल पोल पण्डित की खोले।
फिर दोष दिखावे को कुपढ़ हम लोगन की बात में,
कछु कविता की चरचा करो भैया या बरसात में।

३

सो सुनि दादुर बोल उठे बाबा बलिहारी,
बलिहारी कविराज जातिहित मंगलकारी।
पहले सब की आज आप कविता सुन लीजे,
फिर जो जैसो होय ताहि तैसो कहि दीजे।
कबहूँ कलंक की कालिमा कढ़े न यश अवदात में,
प्रभु, ऐसो रस निज न्याय को बरसाओ बरसात में।

४

बोले मुखिया बोल कपट की ऐसी-तैसी,
देंगे पदवी दान ठीक जैसे को तैसी।
कूद पड़ो साहित्य-सुधा-सागर में भाई,
दर्प दिखाय-दिखाय पढ़ो अपनी कविताई।
पटुता को परिचय दीजिए प्रियवर, जाति-जमात में,
रस मीठो पद्य-प्रवाह को पान करो बरसात में।

५

एक मूढ़ मेंढ़क चढ़ाय चख यों ललकारो,
नाम नंग साहित्य-शत्रु उपनाम हमारो।
घूँस खाय कर न्याय-नीति कीचड़ में कूँचो,
हमको आसन देउ सभा में सबसे ऊँचो।
नहिं मण्डल की कढ़ि जायगी मींग एक ही लात में,
फिर आपहु को बह जायगो मुखियापन बरसात में।

'उपदेश देते हैं'

न हम खोटी कहानी से किसी के कान भरते हैं,
न कोरी कल्पना पर भूषणों का भार धरते हैं।
गपोड़ों की प्रथा से पद्य की पूजा न करते हैं,
नवेली नायिका के भेद-भावों पै न मरते हैं।
निराले ढंग से सारे रसों का स्वाद लेते हैं,
उसी साहित्य का अब आपको उपदेश देते हैं।

'वन में'

धन्य नागरी-प्रचार प्यारा उमगा शंकर के मन में,
लेटा कठिनाई भरता था कविता के कोमल तन में।
सोया स्वप्न कल्पतरु फूला सफल हुआ सौ हायन में,
राजा लक्ष्मणसिंह निहारे मोदमढ़े नन्दन वन में।

'भारत निवासी हैं'

सुधारक राष्ट्रभाषा को सदा पढ़ते-पढ़ाते हैं,
सुधी साहित्य शंकर के बड़प्पन को बढ़ाते हैं।
सुभाषित गद्य-पद्यों की सरसता के विलासी हैं,
प्रचारक नागरी के यों बने भारत निवासी हैं।

'राधिका-श्याम के'

दास ये काम के, पारखी वाम के।
भक्त हैं नाम के, राधिका श्याम के।

१

सारी सम्पति की पसार प्रभुता नेगी भए नाम के,
फूले भोग प्रसून पाय वन के भौंरा सुखाराम के।
देखे कौतुक मोद मान मन में पी वारुणी वाम के,
पै पूजे न पदारविन्द हमने हा, राधिका श्याम के।

२

प्यारे पोचन के मलीन मन के कर्त्ता बुरे काम के,
भोगी भोजन के भुजंग धन के ध्यानी धरा-धाम के।
दाता बातन के समान सनके वारीश दुर्नाम के,
ऐसे नीच तरे चरित्र सुन के श्रीराधिका श्याम के।

'अति अधिक न होंगी क्यों हमारी व्यथायें'

१

हिल-मिल बल धारो न्याय से जोड़ नाता,
समुचित सुख देगा शंकरानन्द दाता।
सुन-सुन कर कोरे कायरों की कथायें,
अति अधिक न होंगी क्यों हमारी व्यथायें।

२

कुल-गुरु न बनाये धर्म्म-धी सन्त-स्वामी,
हठ वश अपनाये लालची लण्ठ कामी।
सुन-सुन इन ढोंगी लोलुपों की कथाएँ,
अति अधिक न होंगी क्यों हमारी व्यथाएँ।

'मेरो हिरायो हेरिये'

दूर दौरे जात हैं मत ग्वाल बालन टेरिये,
द्यौस बीत्यो वे गईं गैयाँ इते मत फेरिये।
काम की है बात हाँसी में न हा-हा गेरिये,
हार हरि या हार में मेरो हिरायो हेरिये।

'दिन के दिव्य उजेरे में'

उद्यमशील विदेशी अपनी-अपनी उन्नति करते हैं,
पर ये भारतवासी ठाली बैठे भूखन मरते हैं।
चख मीचे चकराय पश्चिमी चपला के चकफेरे में,
दीखत नाहिं उलूकन को ज्यों दिन के दिव्य उजेरे में।

'काज कहा नर तन धर सारा'

अकल सच्चिदानन्द सकलपति प्रभु को भूला,
मत्त महा मति-मंद प्रकृति-रस पीकर फूला।
धार सुलक्षण-साज न जीवन-चरित सुधारा,
रे शंकर शठ काज कहा नर तन धर सारा।

शुभ सद् पद्धति छोड़ बना अनुचित पथ-गामी,
उन्नति से मुख मोड़ रहा नटखट खल कामी।
नीच निरंकुश लाज तजी पर मद न विसारा,
रे शंकर शठ काज कहा नर तन धर सारा।

पोच प्रतारक चोर कपट-नाटक रच देखा,
करता है कुलबोर कुटिलता पर न परेखा।
त्याग सुसभ्य-समाज असुर-दल का बल धारा,
रे शंकर शठ काज कहा नर तन धर सारा।

घेर घसीट घमण्ड अकड़ से अटक रहा है,
पाप प्रमाद प्रचण्ड नरक में पटक रहा है।
रही न कुल की लाज कुयश कलुषित विस्तारा,
रे शंकर शठ काज कहा नर तन धर सारा।

केशव, तुलसी, सूर आदि कवि-कुल-गुरु छोड़े,
अभिमानी भरपूर पकड़ तुक्कड़ जड़ जोड़े।
बनता है कवि-राज वृथा पर-हित न पसारा,
रे शंकर शठ काज कहा नर तन धर सारा।

'व्रजचन्द को'

छिटकी छबीली चाँदनी निशि आज की अति सोहिनी,
बन में बुलावति है कृपा करि बाँसुरी मन मोहिनी।
तज मान मंगल-साज साजो त्याग मत्सर मन्द को,
चलि पूजिये आनन्द से मिल प्राण प्रिय व्रजचन्द को।

'बसो उर धाम सदैव हमारे'

गुरुदेव दयानिधि वैदिक धर्म विधाता,
ऋषिराज महाव्रत शील सुधी-सुखदाता।
कवि शंकर प्रेम-पयोधि स्वदेश-दुलारे,
घनश्याम बसो उर धाम सदैव हमारे।

'शारदा के हैं'

कथनीय भाव उपजें जब जैसे मन में,
प्रगटें तब तैसे अर्थ-प्रसङ्ग कथन में।
ये गुण वाणी में जिस विशारदा के हैं,
सब कवि किङ्कर उस मात शारदा के हैं।

'दुरत जात'

छल को बल केवल बढ़त जात,
मन चञ्चल पै मल चढ़त जात।
दुख पापन को फल जुरत जात,
सुख-भोगन को दल दुरत जात।

'अन्न-पानी'

१

तुही सच्चिदानन्द धाता, विधाता,
तुही न्यायकारी दया-दान दाता।
महा शक्ति तेरी जिन्हों ने न जानी,
उन्हें भी तुही दे रहा अन्न-पानी।

२

मिले नम्र नेता महावीर गाँधी,
उठी आपदुद्धार की उग्र आँधी।
प्रजातन्त्रता देश ने ठीक जानी,
मिलेगा इसी योग से अन्न-पानी।

३

बिगाड़ो किसी को अछूता न छोड़ो,
विरोधी बनो मेल का तार तोड़ो।
करो कर्मवीरो, अवज्ञा बिरानी,
नहीं तो पचेगा नहीं अन्न-पानी।

४

शिवा का सगा सूरमा पूत हूँ मैं,
प्रतापी मृगाधीश का दूत हूँ मैं।
सुनो पामरो, घोषणा जो न मानी,
अरे तो मरोगे विना अन्न-पानी।

५

सभा में हमारी भणन्तें बखानो,
हमें तुक्कड़ों का महाराज मानो।
बड़ाई महादान दो मान दानी,
नहीं माँगते आपसे अन्न-पानी।

'नारी'

कभी तर्क के तेज को जो न ताके,
सिधारे प्रमाणादि की गन्ध पाके।
न आके अड़े युक्तियों के अगारी,
उसी पक्ष को पालते हैं अनारी।

कई अक्षरों को जले जानते हैं,
गणों के गपोड़े सही मानते हैं।
अविद्या-भरी छन्द-विद्या बगारी,
सखी जार नीकी बनाई सुनारी।

किसी देवता को मनाते रहेंगे,
कि शृंगार के गीत गाते रहेंगे।
करेंगे कभी पद्य की चित्रकारी,
चलाते रहेंगे पुरानी पनारी।

खराबात की ओर जाने लगी है,
नये नायकों से थुकाने लगी है।
वही नायिका इष्ट देवी तुम्हारी,
बिसारो इसे हो चुकी है दिनारी।

सुने कौन क्यों आपके ये पखाने,
न ये कान वे हैं न ये वे ठिकाने।
नई रौशनी में करे जो उजारी,
गिरा से कहो गीत ऐसे सुना री।

'मनौ नहिं आनत आन तियान'

अनुकूल पति

अलौकिक रूप कृपालु किशोर,
बली व्रतशील धनी चितचोर।
रिझावत केवल मोहि सुजान,
मनौ नहिं आनत आन तियान।

धृष्ट पति

अड़े अटके इठलात निशङ्क,
न आवति लाज बने अकलंक।
सहे अपमान कहे फुर मान,
मनौ नहिं आनत आन तियान।

शठ पति

बनावट की बगराय विभूति,
चलावत क्यों छल की करतूति।
अरे, कपटी हठ यों न बखान,
मनौ नहिं आनत आन तियान।

अनभिज्ञ पति

करे नित चन्द्रकला धन प्रीति,
न जानत शंकर पै रस-रीति।
बने रसिया न बिलोक सखान,
मनौ नहिं आनत आन तियान।

धर्माभ्युदय

१

सत्य शंकर ने रचे हैं संयमी जिनके स्वभाव,
नेक भी होता न जिनसे प्रकृति देवी का दुराव।
ज्ञान-गरिमा ने बनाये साहसी जिनके हृदय,
कर रहे हैं वे प्रतापी धर्म धर-धर्माभ्युदय।

२

बुद्ध,विद्या, बोध-बल से बन गये जो वीतराग,
ज्ञान के उपदेश देते मोह के मत-पन्थ त्याग।
भक्ति-भाजन में दया का रस भरें आनन्द मय,
कर रहे हैं वे प्रतापी धर्म धर धर्माभ्युदय।

३

साम्य सद्भट के सँगाती श्रील,सज्जन, सभ्य, शूर,
पापिनी परतन्त्रता के तन्त्र से रहते हैं दूर।
जो न डरते हैं खलों को जीत कर पाते विजय,
कर रहे हैं वे प्रतापी धर्म धर धर्माभ्युदय।

४

मिल बड़े व्यापारियों में बन रहे उद्योगशील,
घूमते भूगोल-भर पै लांघ सरिता, सिन्धु, झील।
पालती जिनकी कमाई दूर कर दुर्भिक्ष-भय,
कर रहे हैं वे प्रतापी धर्म धर धर्माभ्युदय।

५

देश के सेवक बने हैं मान कर सेवा सदिष्ट,
भूल कर भी सोचते हैं जो न जनता का अनिष्ट।
वारते हैं जाति पर जो धन्य जीवन का समय,
कर रहे हैं वे प्रतापी धर्म धर धर्माभ्युदय।

दोहावली

दोहावली

[शंकरजी ने 'शंकर-सतसई' नाम से एक सतसई अपने देहान्त से कुछ काल पूर्व लिखी थी। यह सतसई बड़ी गम्भीर, प्रौढ़ और कवित्व-मयी थी। सतसई पर शंकरजी पुनर्दृष्टिपात कर रहे थे। उसके छपाने की पूर्ण व्यवस्था हो चुकी थी, परन्तु एक दुर्घटनावश उन दोहों की कापी नष्ट होगयी, और वे फिर बहुत उद्योग करने पर भी न लिखे जा सके। इस साहित्यिक हानि का दुःख शंकरजी को अन्त समय तक रहा। नीचे शंकरजी के कुछ दोहे दिये जाते हैं। ये दोहे ऐसे हैं, जो उन्होंने समय-समय पर जहाँ-तहाँ अङ्कित कर रखे थे। पुस्तक लिखने के विचार से नहीं, अपने मनोविलास के लिए। इसीलिए उनमें कुछ सम्बद्धता-सी नहीं दिखाई देती, फिर भी उनके द्वारा पाठकों का किसी-न-किसी रूप में मनोरंजन तो होगा ही। इस दोहावली में कुछ दोहे तो ऐसे हैं, जो अबसे साठ-पैंसठ वर्ष पूर्व लिखे गये थे। ये दोहे प्रायः नीति और देश-सम्बन्धी हैं। दो-चार दोहे सन् १९२०-२१ के आन्दोलन से भी सम्बन्ध रखते हैं। 'शंकर-सतसई' में तो देश-सम्बन्धी दो-सौ से अधिक मार्के के दोहे थे। बड़े ही सुन्दर और भाव-पूर्ण। सम्पादक]

तेरी सत्ता के बिना हे प्रभु मंगलमूल,
पत्ता भी हिलता नहीं खिले न कोई फूल।१

जिसकी सत्ता में भरे मायिक भेद अनेक,
सो शंकर संसार का कारण केवल एक।२

मुख्य नाम है ईश का ओमनुभूत प्रसिद्ध,
योगी जपते हैं इसे सुजते हैं सब सिद्ध ।३

भानु, चन्द्र, तारे, शिखी, चपला, उलकापात,
शंकर तेरी आरती करते है दिन-रात ।४

तू मुझसे न्यारा नहीं मैं तुझसे कब दूर,
तेरी महिमा से मिली मेरी मति भरपूर ।५

प्यारे तू सब में बसे तुझ में सबका बास,
ईश हमारा है तुही हम सब तेरे दास ।६

ब्रह्म सच्चिदानन्द का देखा सबल स्वरूप,
शंकर तू भी होगया परम रंक से भूप ।७

जो मुझसे न्यारा नहीं नित्य निरंतर साथ,
हा, वह विद्या के विना अबलों लगा न हाथ ।८

प्यारे प्रभु की ज्योति का देख अखण्ड प्रकाश,
सत्य मान हो जायगा मोह-तिमिर का नाश ।९

भई न है न-न होयगी अधिक न तुल्य न और,
सर्वशक्ति-सम्पन्न है एक शक्ति सब ठौर ।१०

शंकर स्वामी से मिला शंकर सेवक दीन,
सर्व शान्ति सुख से रहें पकड़ें ताप न तीन ।११

शंकर स्वामी एक है सेवक जीव अनेक,
वे अनेक हैं एक में वह अनेक में एक ।१२

शंकर है कैवल्य का ज्ञान योग ध्रुव धाम,
कर्मयोग का भोग है भक्ति-योग परिणाम ।१३

शंकर सर्वाधार तू सर्व हेतु सब ठौर,
सर्व-सर्व संघात है और नहीं कुछ और ।१४

शंकर तेरा ही तुझे समझा शुद्ध विवेक,
नाम रूप तू एक ही अपना रहा अनेक।१५

समझे पूरे अर्थ को अङ्ग अधूरे जान,
सो प्रत्यक्ष प्रमाण को अनुगामी अनुमान।१६

शंकर है तू एक ही ब्रह्म अनादि अनन्त,
सादि दृश्य संसार के रखते हैं सब अन्त।१७

शंकर तेरा खेल है अस्थिर जगदाकार,
पोल-ठोस का मेल है निर्विकार-सविकार।१८

शंकर सर्वाधार है शंकर ही सब ठौर,
शंकर से न्यारा रहा शंकर क्या कुछ और।१९

शंकर स्वामी हो जिसे सुमति शारदा सिद्ध,
छोड़ उसे पूजे किसे मान प्रधान-प्रसिद्ध।२०

शंकर तेरा भक्त है विद्या, बल, धनहीन,
प्रेम, दया-आनन्द दे दूर ताप कर तीन।२१

शंकर का सर्वस्व है सो शंकर कविराज,
जान जानता है जिसे सारा सुकवि-समाज।२२

शंकर से न्यारा रहा धर्म, सुकर्म विसार,
कौन उतारेगा तुझे भव-सागर से पार।२३

शंकर सर्वाधार है शंकर ही सुखधाम,
शंकर प्यारे मंत्र हैं शंकर के सब नाम।२४

शंकर स्वामी से नहीं शंकर सेवक दूर,
न्याय दया माँगे मिले ज्ञान-भक्ति भरपूर।२५

शंकर से जो पा चुका प्रतिभा मंगल-मूल,
उसके ज्ञानागार में कौन भरे भ्रम-भूल।२६

शंकर स्वामी और है सेवक शंकर और,
भेद-भावना में भरे नाम, रूप सब ठौर ।२७

शंकर स्वामी के सुने शंकर नाम अनेक,
मुख्य सर्वतोभद्र है मंगलमय ओमेक ।२८

शंकर स्वामी से मिला बिछुड़ा शंकर दास,
भानु-प्रभासाद्वैत का भिन्न-अभिन्न विलास ।२९

शंकर तेरा नाम है ओमक्षर अखिलेश,
रूप सच्चिदानन्द है वेद-मन्त्र उपदेश ।३०

जिसकी सत्ता के बिना हुआ न कुछ भी सिद्ध,
विश्व-बीज का बीज है सो शंकर सुप्रसिद्ध ।३१

ज्ञान, क्रिया धारे नहीं चेतन-जड़ का योग,
ऐसे दैहिक दृश्य को मृतक मानते लोग ।३२

जो प्रत्येक विशेष का बीज एक अविशेष,
मैं उसका मेरा वही शंकर शेष अशेष ।३३

तीन तनावों से तना जिसका अस्थिर जाल,
हाँक रहा संसार को अविरामी वह काल ।३४

जीव अविद्या-व्याधि को कर देगा जब दूर,
शंकर दाता की दया तब होगी भरपूर ।३५

जीवन के व्यापार से प्रकटें सबके कर्म,
धर्म-रूप हैं जीवके स्वाभाविक गुण-कर्म ।३६

जो मुरदों के साथ भी कहा पुकार-पुकार,
राम-नाम सो सत्य है बोल असत्य बिसार ।३७

जाना जिनका आदि है समझा उनका अन्त,
शंकर स्वामी है तुही एक अनादि अनन्त ।३८

सर्वशक्ति सम्पन्न है रचना रचे अनेक,
साथ सर्वसंघात के रहे एक रस एक ।३९

टिके न ठेला ठोस का चले न अचला पोल,
ठोस-पोल के मेल में चेतन करे कलोल ।४०

सर्व-शक्ति-सम्पन्न है स्वगत सच्चिदानन्द,
भूले भेद-अभेद में मान रहे मतिमन्द ।४१

सदा रह्यो मैं राम में राम रह्यो मो माँहि,
राम और मैं मिलगये अब कछु अन्तर नाहिं।४२

सादि सान्त का स्रोत है एक अनादि-अनन्त,
नानाकार अखण्ड के खण्डन समझें सन्त ।४३

सब जीवों का मित्र है जो जगदीश पवित्र,
उपजावे, धारे, हरे वह संसार विचित्र ।४४

देश-वस्तु कालादि से समझा जिसको दूर,
व्यापक है संसार में सो शंकर भरपूर ।४५

जिसके द्वारा जीव के चलते हैं सब काम,
फैल रहा संसार में वह जीवन-संग्राम ।४६

जिसकी माया से बने-बिगड़े अखिलाकार,
निर्विकार सो एक है शंकर जगदाधार ।४७

देख पोल में ठोस के दरसें दृश्य अनेक,
भासे कल्पित द्वैध में ब्रह्म अखण्डित एक ।४८

जड़ता भासे ठोस में चेतनता धर पोल,
ठोस पसारे तोल को अचला पोल अतोल ।४९

तू सबका स्वामी बना सेवक हैं हम लोग,
नाथ, न छूटेगा कभी यह स्वाभाविक योग ।५०

देश-काल की कल्पना ज्ञान-क्रिया बल पाय,
जागी जगदम्बा अजा नाम-रूप अपनाय ।५१

जाना ईश्वरवाद का जोड़ निरीश्वरवाद,
दो दल दोनों के लड़ें धार प्रचण्ड प्रमाद ।५२

देख डोलती ठोस को तजे न अचला पोल,
भेदाभास विलास में शंकर तत्व टटोल ।५३

योगी पढ़ते हैं जिसे शंकर का वह वेद,
भक्ति-भावना में भरे भेद विशिष्ट अभेद ।५४

रोके तेज दिनेश का रे शशि, लघुता लाद,
जैसे ढके महेश को अन्ध अनीश्वरवाद ।५५

रूप दिखाते हैं जिसे समझाते सब नाम,
सूझा एक अनेक में सो अक्षर अभिराम ।५६

जिसके द्वारा हो रहे सिद्ध समस्त प्रयोग,
ठीक जानते हैं उसे विरले ही गुरु लोग ।५७

जिसके मंत्रों में कभी भरे न भ्रामक भेद,
तारे मानव-जाति को सो शंकर कृत वेद ।५८

जिसकी सत्ता में भरे मायिक भेद अनेक,
सो शंकर संसार का कारण केवल एक ।५९

सर्व शक्ति-सम्पन्न है जिसका एक स्वभाव,
सत्य स्वयम्भू है वही मिले न मेल-मिलाव ।६०

जो प्रत्येक विशेष का बीज एक अविशेष,
मैं उसका मेरा वही कारण शेष अशेष ।६१

देश, दृश्य कालादि से समझा जिसको दूर,
व्यापक है संसार में सो शंकर भरपूर ।६२

योग एकता से करे सबसे रहे विरक्त,
धर्म न त्यागे अन्तलों शंकर का प्रिय भक्त ।६३

जिसकी सत्ता का नहीं नादि, न मध्य न अंत,
योगी हैं उस बुद्ध के विरले संत-महन्त ।६४

घूम रही है पोल में ठोस प्रपंच पसार,
द्विविधाधारी ऐक्य है निर्विकार-सविकार ।६५

कौन सुनेगा क्या कहूँ अस्थिर मन की बात,
व्याकुलता के वेग में बीत रहे दिन-रात ।६६

विश्व-विलासी ब्रह्म का विश्वरूप सब ठौर,
विश्वरूपता से परे शेष नहीं कुछ और ।६७

शब्द जनाते हैं जिसे रूप-राशि रचनीय,
सो अविनाशी अर्थ है एक अनिर्वचनीय ।६८

ठोस-पोल दो द्रव्य हैं जिसके मायिक भेद,
गाता है उस एक को नेति-नेति कह वेद ।६९

जो जन ब्रह्म अनन्त को जान गयो सो संत,
जाने बिना न होत है जन्म-मरण कौ अन्त ।७०

सदा रहूँ मैं राम में राम रहे मो माहिं,
मैं अरु राम उपाधि यह मिटे तो अन्तर नाहिं ।७१

रूप दिखाते हैं जिसे समझाते सब नाम,
सिद्ध योगियों को मिला सो अक्षर अभिराम ।७२

लक्षण और प्रमाण बिन बने न वस्तु विचार,
कल्पित अर्थ-अनर्थ को मूढ़ करें स्वीकार ।७३

पाठ रटे, पोथे पढ़े, सीखे विविध विधान,
पै न तत्वदर्शी बने बिन स्वाभाविक ज्ञान ।७४

पाया अपने आपको अपने में भरपूर,
अपना होने का नहीं अपनेपन से दूर ।७५

भूल न दीनानाथ को कर्म विचार सुधार,
यों हो सकता है सखा भव-सागर से पार ।७६

पोल-ठोस का होरहा ज्ञान-क्रिया बरताव,
विश्व-रूप एकार्थ के नाम स्वयम्भु स्वभाव ।७७

ब्रह्म सच्चिदानन्द जो व्यापक है सब ठौर,
राम उसी का नाम है अर्थ न समझो और ।७८

भेद-भाव से एक के जड़-चेतन दो नाम,
देखो, एक शरीर में दरशें दो परिणाम ।७९

बैठ प्रेम की गोद में हिल-मिल खेलो खेल,
प्रेम बिना होगा नहीं प्रभु शंकर से मेल ।८०

भेद न सूझे वेद में जान लिया जगदीश,
पूजे पग विज्ञान के फोड़ कुमति का शीश ।८१

पोल-ठोस का योग है श्याम-शबल का मेल,
कल्पित है यों एक में जड़-चेतन का खेल ।८२

पोल प्रकाशे चेतना प्रकटे ठोस जड़त्व,
ज्ञान-क्रिया का कोश है चेतन-जड़ एकत्व ।८३

मग्न हुआ आनन्द में शंकर भक्त अनन्य,
लौकिक लीला देखली प्रभु लीला-धर धन्य ।८४

माया मायिक ब्रह्म की उमगी गुण विस्तार,
ठोस-पोल के मेल में विचरे खेल पसार ।८५

ज्ञान-गम्य सर्वज्ञ है शंकर तुही स्वतंत्र,
तेरे ही उपदेश हैं विश्रुत वैदिक मंत्र ।८६

पी रस ब्रह्मानन्द का शंकर होकर मौन,
योग सिद्ध संवाद को सुन समझेगा कौन ।८७

तारक तेरा नाम है जो शंकर भगवान,
तो हम को भी तारदे छोड़ न अपनी बान ।८८

नाम-रूप धारें तजें पोल-ठोस कर मेल,
भासें नित्य प्रवाह में जगदनित्य के खेल ।८९

जिसने ब्रह्मानन्द का किया निरन्तर भोग,
उस योगी के योग में टिकता नहीं वियोग ।९०

किस में से काढ़े किसे किस में करे प्रवेश,
एक सच्चिदानन्द है शंकर ही सकलेश ।९१

एक ब्रह्म के नाम हैं शंकर विष्णु अनेक,
भाँति-भाँति की कल्पना करता है अविवेक ।९२

कर्महीन में हो रहे सब के कर्म-कलाप,
देख रहा संसार को पर न दीखता आप ।९३

जिसने जीता काल को भूत किये भयभीत,
वे प्यारे उस ईश के जो न चलें विपरीत ।९४

जाना जिनका आदि है समझा उनका अन्त,
शंकर स्वामी है तुही एक अनादि-अनन्त ।९५

जाना पहले भाव का भेद हुआ यह और,
आगे फिर होगा वही त्रिक नाचे सब ठौर ।९६

क्यों कब कैसे किस लिये प्रगट कियो संसार,
सदा रहेगो वा नहीं को जाने करतार ।९७

जाना जिसने आपको भ्रम के भेद विसार,
मित्र उसी तल्लीन का है शंकर करतार ।९८

ओमक्षर के अर्थ का धरले ध्यान पवित्र,
बोध बना देगा तुझे अमृत मित्र का मित्र ।९९

एक स्वयम्भू मानता समझा एक स्वभाव,
दोनों पक्ष सदर्थ का करते नहीं दुराव ।१००

एक महत्ता में मिला तुझको-मुझको बास,
मेरी भाँति करे नहीं पर तू भोग-विलास ।१०१

होना सम्भव ही नहीं जिसमें सैक निरेक,
जाना उस अद्वैत को किसने बिना विवेक ।१०२

है कब से संसार का कब तक होगा नाश,
क्या देगा इस प्रश्न का उत्तर युक्ति-प्रकाश ।१०३

हुआ नहीं होगा नहीं है न कहीं कुछ और,
सर्व शक्ति-सम्पन्न है शंकर ही सब ठौर ।१०४

हे शंकर तू एक ही विरचे विश्व-विवेक,
तुझ में तेरे ही भरे मायिक भाव अनेक ।१०५

औरों के सुख दुःख का जिन में बसे न बोध,
उन जीवों की चाल का कौन करे परिशोध ।१०६

शंकर स्वामी को भजो झंझट झेल अनेक,
वीरो, वैदिक धर्म की पर न टालिये टेक ।१०७

ज्ञानी करते हैं सदा जड़-चेतन की जाँच,
मन्त्र प्रचारें लोक में वेद अलौकिक बाँच ।१०८

जिसकी सत्ता से करे अंग यथोचित काम,
काया है उस जीव के जीवन का ध्रुव धाम ।१०९

जिसके मन्त्रों का कभी खण्डन करे न तर्क,
सो विद्यानिधि वद हैं अटल अर्थ का अर्क ।११०

युक्ति-प्रमाणों से नहीं जिनका कुछ सम्पर्क,
उन बातों पै हो रहे तर्क, वितर्क, कुतर्क ।१११

जीव जन्म से मृत्यु लौं लाख पढ़ो किन वेद,
ब्रह्मतत्व विज्ञान बिन फुरे न भेदाभेद ।११२

देह-वारि के योग से चेतन को कर शुद्ध,
बुद्धि-ज्ञान से-सत्य से शुद्ध करें मन बुद्ध ।११३

सभ्य जाति के मेल में मिलजा छोड़ कुमेल,
फिर भी माया-जाल से खेल फड़कता खेल ।११४

शंकर स्वामी को भजो करते रहो सुकर्म,
ऐंठ अविद्या की तजो पकड़ो वैदिकधर्म ।११५

जन्म लिया जीता रहा जोड़ शुभाशुभ कर्म,
छोड़ गया जो देह को उसका मिला न मर्म ।११६

लोगों पै खुलते नहीं जिन विषयों के भेद,
साधें शब्द-प्रमाण से उनको उनके वेद ।११७

जाना है जिस जीव ने शंकर करुणाकन्द ।
दुःख त्यागता है वही पाकर परमानन्द ।११८

रहे न जाके जपत ही वाद-विवाद-विषाद,
ता अकथ्य गुरुमन्त्र को कौन करे अनुवाद ।११९

ढाँप रहा प्रत्येक को जो सब में भरपूर,
वह ज्ञानी के पास है अन्ध अबुध से दूर ।१२०

यद्यपि दोनों में रहें जड़तामूलक मोह,
तोभी प्रभुता प्रेम की प्रकटें चुम्बक-लोह ।१२१

यों निर्जीव सजीव का समझो प्रेम-प्रसंग,
प्यारे दीपक से मिले प्राण विसार पतंग ।१२२

कौन विराजे स्वर्ग में नरक-निवासी कौन,
मुक्त जीव पाया किसे सब का उत्तर मौन।१३५

काटे सीस असत्य को मार सत्य के बाण,
शंकर ताके कथन को समझो शब्द-प्रमाण।१३६

शंकर डूबे अन्त को सब हो-हो कर मौन,
हा संसार-समुद्र को तर सकता है कौन।१३७

एक बात के न्याय दो मिलते हैं प्रतिकूल,
पै न न्यायकारी बने अपराधी कर भूल।१३८

खोल खिलौने खोखले खेल पसार न खेल,
प्रेमामृत पीले सखा. शंकर से कर मेल।१३९

केवल शब्दों को रटें करें न अर्थ विचार,
ऐसे मौखिक मन्त्र का जपना निरा असार।१४०

शंकर अपने आप को जान गयो जो सन्त,
जाने बिना न होत है जन्म-मरण को अन्त।१४१

शंकर जो संसार में रहते हैं बिन रोग,
वे बड़भागी अन्त लों करते हैं सुख-भोग।१४२

कर लेता है शुद्ध जो जब आचार-विचार,
सत्य सूझता है उसे तब संसार असार।१४३

इन्द्रिय द्वारा अर्थ को होय यथारथ ज्ञान,
सो प्रत्यक्ष प्रमाण है धीर सुनो धर ध्यान।१४४

ज्ञान बिना होते नहीं सिद्ध यथोचित कर्म,
रचते हैं संसार को जड़-चेतन के धर्म।१४५

भर जाते हैं स्वप्न में जाग्रत के सब ढंग,
पाय गाढ़ निद्रा रहे चेतन एक असंग।१४६

भूला भोग-विलास में अबलों रहा अचेत,
फल की आशा छोड़ दे उजड़ा जीवन-खेत ।१४७

मार सहै अन्धेर की अटकें कष्ट अनेक,
धर्मवीर की अन्तलों पर न टलेगी टेक ।१४८

कोरे तर्क-वितर्क में उलझें वाद-विवाद,
अस्थिर जी पाता नहीं शंकर सत्य-प्रसाद १४९

क्यों तू कल्पित भावना करे अन्य में अन्य,
जड़ न होत चेतन्य जड़, जड़ न होत चेतन्य ।१५०

नाना कारण दुःख के सुख के हेतु अनेक,
साधन है कैवल्य का केवल एक विवेक ।१५१

शंकर क्या से क्या हुआ देख अदृष्ट विलास,
ओस-कणों के पान से रुकती नहीं पिलास ।१५२

धर सौदा सद्भाव के खोल धर्म की हाट,
तर्क-तुला ले तोलले डार युक्ति के बाट ।१५३

अपनालेता है जिसे शंकर परमोदार,
देता है उस जीव को जीवन के फल चार ।१५४

अनुकम्पा आनन्द की जब होगी अनुकूल,
तब ही होंगे जीव के कष्ट-विनष्ट समूल ।१५५

इन्द्र इन्द्रियों से हुआ तन का मनका मेल,
भूत बने दो भाँति के हिल-मिल खेलें खेल ।१५६

जीवन पाते एक-से भोग-विलास विहार,
सारहीन संसार के अस्थिर दृश्य निहार ।१५७

ज्ञान-क्रिया के मेल से चेतन-जड़ का योग,
नाना तन धारें तजें जीव कर्म-फल भोग ।१५८

जन्म-काल से अन्त लों कर जीवन को नष्ट,
मरजाते हैं आलसी भोग-भोग कर कष्ट ।१५६

मरते जाते हैं घने मानव जीवन भोग,
तर जाते हैं मृत्यु को शंकर विरले लोग ।१६०

जाता है टिकता नहीं अस्थिर काल कराल,
देखो इसकी दौड़ में चुके न किसकी चाल ।१६१

त्याग चुकी जो चेतना ज्ञान-क्रिया तन-प्राण,
अब क्या मानूँ मैं उसे बिन प्रत्यक्ष प्रमाण ।१६२

जाके मन, वच, कर्म में पर-हित सत्य प्रधान,
ता विधानिधि देवकी कर सेवा गुरु मान ।१६३

मिले मिलापी मेल के मैल मेंट, कर मेल,
चलाचली में चेत कर खेल-खिलाड़ी खेल ।१६४

होती बन्द बिगाड़ से जब जीवन की चाल,
चुक जाता है जीव का तब ही जीवन-काल ।१६५

जो मन, वाणी, कर्म को कर न सकेंगे एक,
वे न निबाहेंगे कभी प्रण कर टालू टेक ।१६६

जो स्वभाव संसार में व्यापक है भरपूर,
क्या उससे विज्ञान का बल रहता कुछ दूर ।१६७

जन्म लियो सौ सर जियो कियो न पर-उपकार,
मूढ़ मरो संसार में कर्म असार प्रसार ।१६८

जो जीवन के अन्तलों करता रहा सुकर्म,
धन्य उसी का मित्र है सत्य सनातन धर्म ।१६९

जो बड़भागी साहसी करते हैं शुभ काम,
रहते हैं संसार में जीवित उनके नाम ।१७०

जहाँ इंद्रियन के विषय तहाँ जात शठ दौर,
मुक्ति मोल माँगत फिरें दृढ़ बन्धन के ठौर।१७१

रहें एक ही ठौर पर कपटी करें न मेल,
जैसे भाजन में भरे मिलें न पानी-तेल।१७२

सज्जन का आदर मिले पिटें कुचाली कूर,
चन्दन मस्तक पैं चढ़े जारे जात बबूर।१७३

सुमन सरोवर में खिले सदुपदेश अरविन्द,
देख दुष्ट दादुर दुरें सेवत साधु मिलिन्द।१७४

शंकर सुन्दर रूप को तन की शोभा जान,
मन की शोभा साँच है धन की शोभा दान।१७५

तन से सेवा कीजिए मन से भलो विचार,
धन से या संसार में करिये पर-उपकार।१७६

मन में राखें और कछु वाणी में कछु और,
कर्म करें कछु और ही झूठे तीनों ठौर।१७७

दाहसार में दाह कर फिरे मिलापी लोग,
जीवत कौ संयोग है सब को अन्त वियोग।१७८

ऊँचन की मिल नीच सों होत प्रतिष्ठा भंग,
गंगाजल खारी भयो पाय सिन्धु कौ संग।१७९

अभय दान दे दीन को फेर न करहिं सहाय,
ऐसे पापी पोच कौ संचित सुयश नसाय।१८०

कहाँ अविद्या कौ भयो विद्या के ढिंग बास,
साँच कहो तो कब रह्यो तम तमारि के पास।१८१

सूरन कौ सनमान कर कूरन कौ अपमान,
साधुन कों सुख दे सदा दुष्टन कों दुखदान।१८२

जिनके लिये समान है मान और अपमान,
तिनको या संसार में सन्त-शिरोमणि जान।१८३

वृथा राम के नाम को क्यों रटि रह्यो गमार,
कर्म राम के-से करे तो सुख होय अपार।१८४

गरजत-बरसत जात हैं घन घनघोर अनेक,
चुई न चातक चोंच में बूँद स्वाँति की एक।१८५

सुख में बने न आलसी दुख में तजे न धीर,
शंकर कहा न कर सकै ऐसो नरवर वीर।१८६

आलस रोग दरिद्र मद झूठ अविद्या रार,
जा घर में ये सात सो दुक्खन को भंडार।१८७

लागे लालच मोह मद काम-क्रोध ये पाँच,
जीवत छुटें न जीव को सदा नचावत नाच।१८८

तू काहू को है नहीं तेरो कोई नाहिं,
स्वारथ को सम्बन्ध है शंकर या जग माँहि।१८९

विद्या, पौरुष, सम्पदा, सुयश, देह नीरोग,
भोगें इनके योग से बड़भागी सुख भोग।१९०

वृथा जियो सौ वर्ष लों कियो न पर उपकार,
धरणी में धन धर मरो केवल कुयश प्रसार।१९१

रोगन को भण्डार है मिथ्याहार-विहार,
या सुख-सूनी बान को शंकर बेग बिसार।१९२

रे शंकर मिट जाँयगे धवल धाम आराम,
पै न मिटैगौं कल्पलों उपकारी कौ नाम।१९३

विद्या पौरुष वित्त का जो न करे अभिमान,
ज्ञानी बलधारी धनी उन पुरुषों को जान।१९४

हरिभक्तन के हरि पदां तन, मन, धन हरलत,
भई बिदेसिन की सगी सींचत डोलत खेत ।१९५

क्षीर शर्करा-से मिलें भूल निजत्व-परत्व,
प्रेमामृत पीते रहें अपनाते अमरत्व ।१९६

भूला तू भगवान को रे मद-मत्त अजान,
पोच प्रतिष्ठा का वृथा करता है अभिमान ।१९७

वक्ता वायसराय से जो सुन चुके खगेश,
ऐसे रामचरित्र का भूले हम उपदेश ।१९८

हे शंकर संसार में रहे न रावण राम,
दोनों के अवशिष्ट हैं दूषित-भूषित नाम ।१९९

तनसे सेवा कीजिये मन से भलो विचार,
धन से या संसार में करिये पर-उपकार ।२००

मान-बड़ाई मत करे अपनी अपने आप,
पावेगा इस पाप का फल कठोर सन्ताप ।२०१

नारायण के साथ श्री करती जो न विलास,
तो वे जीवन काटते हो धन-हीन उदास ।२०२

लाद पराये धर्म का संकट-भार अतोल,
तोता पिंजड़े में पड़ा बोल मनुज के बोल ।२०३

कैसो तारक मन्त्र है राम-चरित्र उदार,
थोरे हू गुन राम के गहै तो बेड़ा पार ।२०४

कलपावत हौ और को कलपाओगे यों न,
प्यारा है सुख-भोग तो चरित सुधारो क्यों न ।२०५

खेला शैशव श्रेय में जीवनमुक्त कहाय,
खोया यौवन-स्वर्ग हा नरक-बुढ़ापा पाय ।२०६

धर सौदा सद्भाव के हाट समझ की खोल,
युक्तिवाद के बाट ले तर्क-तुला पर तोल।२०७

शंकर औरों के लिये कर कुछ ऐसा काम,
जिसके द्वारा देश में अमर हो रहे नाम।२०८

कर्मवीर जाते नहीं मानव-धर्म-विरुद्ध,
रखते हैं आचार से तन, मन, वाणी शुद्ध।२०९

कर्म छोड़ पौढ़े रहें उद्यमहीन उदास,
श्री, बल, धी लाती नहीं उन्नति उनके पास।२१०

करता है जो पातकी विधि-निषेध का लोप,
होता है उस नीच पै शंकर प्रभु का कोप।२११

करते हैं जो और का इष्ट बिगाड़ अनिष्ट,
कण्टक हैं वे जाति के कुटिल दुष्ट पापिष्ठ।२१२

झूँठ-साँच के ढाँच में दई जाँच की आँच,
राखे रही न राख हू पल में पजरे पाँच।२१३

ऐसी करनी कर सखा छल की बान बिसार,
तेरी कुल-कीरति बढ़ै सुख पावै संसार।२१४

जो न बिताता है वृथा दुर्लभ जीवन-काल,
होता है वह साहसी जगदादर्श विशाल।२१५

साँचे मन के भाव को सत्य बोल कर खोल,
कर वैसा, जैसा कहै तुल्य रहै त्रिक तोल।२१६

प्रेमी करते हैं सदा सब से मेल-मिलाप,
त्यागें वैर-विरोध को मान भयानक पाप।२१७

जो जन खोते हैं वृथा अपना जीवन-काल,
बनते हैं वे आलसी शठ, निर्बल, कंगाल।२१८

जो संसार सुधार में रहते हैं अनुरक्त,
वे अमोघ आदर्श हैं जगदुन्नति के भक्त ।२१९

मूढ़ ब्रह्मज्ञानी बना हुआ ढोंग रच मौन,
पेट-पाल के जाल में उलझा ऊत न कौन ।२२०

सुने स्वर्ग के लालची मन्त्र जपें ले माल,
वर्तमान सुख-भोग तजि बृथा बितावत काल ।२२१

अपने को नीके लगें औरन के जो कर्म्म,
सोच शुभाशुभ सो करो यही सनातनधर्म ।२२२

अब करने के काम को फिर के लिये न छोड़,
उन्नतिशील सुजान के जीवन की कर होड़ ।२२३

ऊपर से त्यागी बने भीतर धन की आस,
चारे के चेरे चरें बाबा गर्धवदास ।२२४

औरों की अनरीति पर क्यों करता है रोष,
रे धर्मध्वज छोड़दे अपने दुर्गुण दोष ।२२५

शोणित पीते हैं सदा अटके पाँच पिशाच,
पाँचों में मुखिया बना प्रबल पंच-नाराच ।२२६

शक्तिहीन,रोगी,दुखी, बालक, वृद्ध, अनाथ,
सब की सेवा कीजिये पकड़ पुण्य का हाथ ।२२७

शंकर जासों लोक में बढ़े सदा सुख-प्रीति,
नीति जान ता रीति को है विपरीत अनीति ।२२८

ताकें तेरी चाल को रे बहुरंगी काल,
भये दरिद्री लोकपति रङ्क भये भूपाल ।२२९

पाते हो तरु-पुञ्ज से पत्र-पुष्प फल-दान,
औरों का उपकार यों करते रहो सुजान ।२३०

मुख मोड़ा कर्त्तव्य से करता है कुछ और,
शंकर लेखा आयु का दूषित है सब ठौर ।२३१

पास रहें न्यारे चुगें गुप्त करें सहवास,
काक सिखाते हैं हमें उत्तम तीन विलास ।२३२

पोच, पापियों से घृणा करना समझो पाप,
धर्माधार सुधार से सुधरो अपने आप ।२३३

माला के मनके घिसें बसे न मन में राम,
नाम कमाते भक्तजी खोल कपट का काम ।२३४

मूढ़ न माँगो मोह की महिमा से सुख-दान,
चिड़ियों की चूँ-चूँ कहाँ सुनते सुने शचान ।२३५

ठीक बात माने नहीं मन में भरली भूल,
सींच रहा है मूढ़धी चन्दन जान बबूल ।२३६

प्यारे नर-नारी रहे जिसमें प्रेम पसार,
सुख से ऐसे गेह में बढ़ता है परिवार ।२३७

जाति-पाँति की भिन्नता राजनीति मतभेद,
करते हैं ये तीन ही प्रेम-पटल में छेद ।२३८

बातों के बरछे लिए आपस के मतभेद,
क्या बरसावेंगे सुधा बादल में कर छेद ।२३९

थोड़े दिन के और हैं हा जीवन,जल,अन्न,
ठेल बुढ़ापा लारहा शंकर मरणासन्न ।२४०

फैल रहा संसार में जिनका पुण्य-प्रताप,
वे बड़भागी धन्य हैं परम पूज्य निष्पाप ।२४१

सत्यशील जौ लों जियें तौ लों तजें न टेक,
झूँठे करत अनेक प्रण पै न निबाहत एक ।२४२

सूखी रीझ कठोर की गहै न गुण की बाँह,
सूखे तरु देते नहीं पत्र, फूल, फल, छाँह ।२४३

आ तरुणी के अंग में करे निवास अनंग,
तरुण अकेलो मत रहे ता पर-तिय के संग।२४४

ब्याज बढ़ाता है जिन्हें उद्यम करें न और,
उनकी माया मे कहाँ परहित पावे ठौर ।२४५

राज-दण्ड सों डरत हैं डाकू, चोर, लबार,
निडर जगत को ठगत हैं साधु-वेष बटमार।२४६

प्रभुता का प्रेमी बना प्रभु से किया न मेल,
रे धर्मध्वज पाप के खुल-खुल खेला खेल ।२४७

मिलता है जो मित्र से तो कुचरित्र सुधार,
प्रेमामृत पीले सखा जाति-विरोध विसार ।२४८

जो कुछ औरों का भला करते हैं हम लोग,
उसमे होता है भरा अपना ही सुख-भोग ।२४९

तरु-बल्ली फूलें-फलें आपस में लिपटाय,
माने महिमा मेल की बढ़े प्रेम-बल पाय ।२५०

घेर रहे संसार को प्रेम-वैर भरपूर,
पहले की पूजा करो पिछले को कर दूर ।२५१

छोड़-छोड़ आलस्य को कर उद्यम-उद्योग,
धर्मवीर जीते रहो मरो कर्म-फल भोग ।२५२

जो चाहे जड़ता घटे बढ़े विवेक-विचार,
तो मादक द्रव्यादि तू खोटे व्यसन विसार।२५३

तेरौ अथवा और कौ जामें लाभ न होय,
ता थोथी करतूति में दुर्लभ आयु न खोय २५४

दाव न नीचों पै पड़े दबैं समुन्नत वीर,
दोनों पुष्ट प्रमाण हैं निरखो नीर-समीर २५५

भूँठे हर्ष-विषाद का रहा न जिनमें रोग,
भासें उन को एक-से वन्दक-निन्दक लोग ।२५६

ब्याज बटोरें जो धनी करें न उद्यम और,
उनकी माया में कहाँ पर-हित पावे ठौर ।२५७

मान मित्रता का करो प्रेम पवित्र पसार,
मित्र-मंडली से मिलो छल-कापट्य विसार ।२५८

जपते रहते हो वृथा जिन पुरुषों के नाम,
क्योंजी करते क्यों नहीं उनके-से शुभ काम ।२५६

पहले थोड़ो सुख मिले फिर दुख होय अपार,
ऐसे पोच कुकर्म को शंकर बेग विसार ।२६०

प्यारे पर-उपकार कर भली-भलाई जान,
सबकी उन्नति में मिली अपनी उन्नति मान ।२६१

पद्म-पत्र का नीर से देख विलक्षण मेल,
रे शंकर संसार में इस प्रकार से खेल ।२६२

सबल वीर अबलान के आय पलोटत पाय,
काम नपुंसकता बिना कापै जीतौ जाय ।२६३

जो कुछ भूलों से हुआ उसका सोच विसार,
नाता तोड़ बिगाड़ से चेत चरित्र सुधार ।२६४

पानी गिरे समुद्र में पर्वत पै चढ़ जाय,
पाय नीचता उच्चता कौन नहीं कतराय ।२६५

साँचे मन के भाव जो कहते हैं छल छोड़,
उनके कर्मों की कभी कपटी करें न होड़ ।२६६

वैर-फूट के जाल में जकड़े रहो समस्त,
देखो मेल-मिलाप के गौरव-रवि का अस्त ।२६७

प्यारे अबके काम को फिरके लिए न छोड़,
चार फलों का साहसी पीले स्वरस निचोड़ ।२६८

एक बढ़ावे विज्ञता एक करे मति भंग,
देखे सभ्य-असभ्य दो दृश्य सुसंग-कुसंग ।२६९

निन्दा करो न और की है यह निंदित कर्म,
निन्दक जानोगे नहीं मनुज-धर्म का मर्म ।२७०

सरिता-सिन्धु सरादि में मज्जहिं तरे न कोय,
ज्ञान-गंग में न्हात ही शंकर सद्गति होय ।२७१

रीझ रसीले प्रेम की पकड़े प्रिय की बाँह,
बाँटे प्रेम रसाल के पत्र, पुष्प, फल, छाँह ।२७२

रूखी रीझ कठोर की गहे न गुण की बाँह,
सूखे तरु देते नहीं पत्र, फूल, फल, छाँह ।२७३

शोधे भू, जल, वायु को तरणि-ताप का योग,
जिसके द्वारा होम की विधि सीखे हम लोग ।२७४

चकराता है मोह के साथ विवेक विकाश,
घूमे-बढ़े कुचाल पै जैसे तिमिर-प्रकाश ।२७५

शंकर बूढ़ा हो गया शंकर हुआ न हाय,
बोल प्रमादी क्या किया कोरा सुकवि कहाय ।२७६

शंकर दौड़ा आ रहा अन्तिम काल समीप,
जलता देखा है सदा किस का जीवन-दीप ।२७७

अपने को नीके लगें औरन के जो कर्म,
सोच शुभाशुभ सो करो यही सनातन धर्म ।२७८

मूढ़न को परतंत्रता दुख-बन्धन को जाल,
ज्ञानी पाय स्वतंत्रता सुख भोगें सब काल ।२७६

दीनों को सुखदान दो समझो इसे न पाप,
क्या लोगे यदि होगए उनसे दुखिया आप।२८०

सुख भोगें दानी-धनी उन्नति का मुख चूम,
धर जाते हैं और को जोड़-जोड़ धन सूम ।२८१

जो उपजावे जाति में हेल-मेल सुख-प्रीति,
धर्म-नीति सो रीति है तद्विपरीत अनीति ।२८२

जानेगा जगदीश को जो जन छोड़ कुकर्म,
क्यों न सुधारेगा उसे सत्य सनातनधर्म ।२८३

हाय बुढ़ापे ने किया यौवन चकनाचूर,
पहली बातें हो गईं शंकर अबतो दूर ।२८४

गैल गही अज्ञान की धर्म-क्रिया कर बन्द,
क्या करना था क्या किया रे शंकर मतिमन्द।२८५

ज्ञातयोवना हो चुकी गुड़ियों से मत खेल,
पूरा-पूरा कर सखी शंकर-पिय से मेल ।२८६

जो तू चाहे भ्रम घटे बढ़े विवेक-विचार,
तो मादक द्रव्यादि सब खोटे व्यसन विसार।२८७

जो न जानता अर्थ को जपता है गुरु मंत्र,
ग्रामोफ़ोन समान है उसका आनन-यन्त्र ।२८८

जो मन, वाणी, कर्म से सबका करें सुधार,
वे बड़भागी धन्य हैं सुकृती परमोदार ।२८९

जो तू चाहे मोहि सब सज्जन कहें सपूत,
तो ये तीनों त्याग दे चोरी, जारी, द्यूत ।२९०

रंक धनी शठ बुध प्रजा राजा कायर शूर,
खाये काल कराल ने करके चकनाचूर ।२९१

अंकुर फूटे फूट के चली बैर की बेल,
लगे फूल-फल फन्द-छल स्वाद मिलो अनमेल ।२९२

जिन को जीवन-भार है जिनके देह सरोग,
सम्पति हू में सुख नहीं मरें महा दुख भोग ।२९३

हितकारी माता, पिता, दुहिता पुत्र कलत्र,
ये सब जीवन के संग मरें न कोई मित्र ।२९४

सुख में सब कोई मिले दुख में मिले न कोय,
भलो मिलापी जानि जो सदा संगाती होय ।२९५

स्वारथमूलक लोक में सब ही के व्यवहार,
पै परमारथ के लिए बिरले करें विचार ।२९६

करत हृदय आकाश में बहु मत-नखत प्रकाश,
ज्ञान-भानु बिन को करे मोह-निशा को नाश ।२९७

पापिन को पालत रह्यो सदा सताये सन्त,
पाय कुसंगति अन्त लों किये कुकर्म अनन्त ।२९८

बल बिन बूढ़ी देह के शिथिल भये सब जोड़,
तृष्णा-तरुणी को अरे अबतो पीछो छोड़ ।२९९

झूठन में साँची कहै ताकी रीझ न बूझ,
अन्ध अविद्या ने किये निज हित परै न सूझ ।३००

सुमति बिना सम्पति कहाँ सम्पति बिना न चैन,
चैन बिना जीवन बृथा दुख भोगो दिन-रैन ।३०१

बड़े ब्याज की जीविका करें न उद्यम और,
तिनके हृदय कठोर में कहाँ दया को ठौर ।३०२

दिन काटें दुख पाय कर करें न कोई काम,
पड़े पुकारें आलसी भोजन भेजो राम ।३०३

'हाय-हाय' अबला करें जा कुल में दुख पाय,
सो थोड़े ही काल में नष्ट-भ्रष्ट है जाय ।३०४

सुख-सम्पति के शत्रु ये दुख-दरिद्र के दूत,
सूर सपूतन कै भये कोरे क्रूर कपूत ।३०५

जान बुरी मानत नहीं हितकारी की बात,
अनहितकारी की कथा सुनत न मूढ़ अघात ।३०६

भटके देश-विदेश में किये अनेक उपाय,
मिली न एक बराटिका मरे महा दुख पाय ।३०७

विद्या,धन,धरनी,सती, सुत बुध देह निरोग,
सच्चा मित्र सुदास ये बड़भागी के भोग ।३०८

सर्वनाश को जाल है बाधक बाल-विवाह,
फरफरात या में फँसो दम्पति धर्म निवाह ।३०६

बैठ रहे जो हार हिय छोड़ अधूरे काम,
सो कबहूँ पावत नहीं कीरति,सुख, विश्राम ।३१०

झरना झरै पहाड़ ते बहुत अधोगति पाय,
देख फुहारे को सलिल नल-बल ऊँचो जाय ।३११

जुर-जुर जड़ ज्वारी करें जूआ कौ व्यापार,
जीते जी तोड़ें नहीं हार-जीत कौ तार ।३१२

जो मानव-तन पाय के करे न पर उपकार,
सो शठ, पापी, पोच,खल बाधक भूपर भार ।३१३

जिसके द्वारा हो रहें अभिनव आविष्कार,
होगा उस विज्ञान से सबका सर्व-सुधार ।३१४

पुष्ट निरोगी आलसी मूढ़ युवक धनवान,
ये गुण जामें देखिये ताहि न दीजे दान ।३१५

विद्या बलधारी बढ़े पाय धरा धन-कोष,
तोभी सुख पाते नहीं लुब्धक बिन सन्तोष ।३१६

वीर आज के काम को कल के लिये न छोड़,
प्यारे पौरुष-पुष्प का पीले स्वरस निचोड़ ।३१७

वीर बड़ाई लोक में करो न अपनो आप,
श्रोता समझेंगे उसे केवल पोच प्रलाप ।३१८

बाँधे पोट प्रपञ्च की जटिल जाल की रीति,
कौन कहेगा न्याय की वनिता है नृप-नीति ।३१९

बनते हैं विद्वान ही धार सुकर्म कुलीन,
मूढ़ ढोंगिया ढोर हैं पुच्छ,विषाण विहीन ।३२०

अज्ञ अविद्या के अड़े अक्खड़ अन्ध अबोध,
ठूँस रहे हैं जाति में वैर-फूट छल क्रोध ।३२१

झूँठन की झूँठी कथा सुनसुन उपजे सोच,
धीर चतुर के चित्त में चुभे न चरचा पोच ।३२२

उपजाते हैं लोक में दुहिता सुत मा-बाप,
रूप राम का देखले शंकर सब में आप ।३२३

विद्या-बल पाया नहीं कुछ न कमाया माल,
शंकर यों ही आयु का अब तक बीता काल ।३२४

होने लगता है जहाँ परम धर्म का ह्रास,
योगी करते हैं वहाँ दूर अधर्मज त्रास ।३२५

धर्मशील माता-पिता अतिथि और आचार्य,
इन की पूजा प्रेम से करते रहें सदार्य ।३२६

जाके भागी भारते बैलन मानी हार,
सो जूआ ज्वारीन के भयो गले को हार ।३२७

मदिरा मतवारो करे भंग करे मति-भंग,
चरस नसावे चातुरी चाँडू करे कुढंग ।३२८

समझा हारा द्रव्य को अबुध जीवनाधार,
अन्ध किया अन्धेर ने पामर पुरुषाकार ।३२९

सेवक हैं जो जाति के शुद्ध चरित्र उदार,
शंकर है संसार में उनका जीवन-भार ।३३०

लोचन जिनके ज्ञान के भ्रम ने दिये बिगाड़,
तिन को तृन की आड़ में सूझत नाँहि पहाड़ ।३३१

खाते हैं भरपेट जो मार-मार कर घूँस,
वे चाकर ऊँचे चढ़े रुधिर न्याय का चूँस ।३३२

घोर नीचता ने किया जो अवनति का दास,
शंकर जाता है नहीं वह उन्नति के पास ।३३३

खेत उजाड़े रात में सजि केहरि की खाल,
धोखा खाय किसान ने समझा सिंह शृगाल ।३३४

घटियों ने माना बड़ा नीच निरक्षर क्षुद्र,
गन्दा नाला बन गया क्या इस भाँति समुद्र ।३३५

करता है जो शुक्र का दुरुपयोग से नाश,
क्यों उसके मस्तिष्क में प्रतिभा करे प्रकाश ।३३६

काटें कष्ट कलाप में कुत्सित जीवन काल,
घेरे घोर दरिद्र ने पकड़ पोच कंगाल ।३३७

कोरे क्रूर कुमन्त्र दे चट चेला कर लेत,
ऐसे शठ गुरु को सदा शठ शिष्य धन देत ।३३८

काम क्रोध अज्ञान अरि लालच और घमंड,
ये सबके पीछे पड़े पाँच पिशाच प्रचंड।३३६

करत मरे जिन के बड़े चोरी जारी रोष,
तिनके गुणग्राही गिनें कब कुकर्म में दोष।३४०

चोर उचक्का जालिया ठग डाकू बटमार,
लूटें जनता को बने धरणीतल के भार।३४१

खाते हैं जिनकी बनी गुड़-चीनी, रस-राव,
खान-पान में क्या रहा उनके साथ बचाव।३४२

काल बिताते हैं वृथा तजते नहीं कुटेव,
कोरे बकवादी बने ठलुओं के गुरुदेव।३४३

औरन के ढिंग बैठकर मारत डोलें गाल,
ज्ञानी-गुणी न जानिये वे बंचक बाचाल।३४४

खेट खरे-खोटे करें सुख-संकट का दान,
इस झूठे विश्वास ने लूटे निपट अजान।३४५

गैल सज्जनों की गहो छोड़ कुचाल-कुपन्थ,
शुद्ध सदाचारी बनो पढ़ सुधार के ग्रन्थ।३४६

औरों को ठगते रहें ठगिया कमती तोल,
भेड़ें घटिया माल को लेकर बढ़िया मोल।३४७

औरों का कुछ भी नहीं करते हैं, उपकार,
पाप कमाते पातकी लाद कुजीवन-भार।३४८

ऋण-सुत वामी व्याज ने ग्रसे ऋणी पशु दीन,
कुरकी जबती आदि से हुए और भी हीन।३४९

उलटी-सीधी चाल से काल हुआ विपरीत,
हाय जीत की हार है निरख हार की जीत।३५०

आयु बिताता जो वृथा कर कोरा बकवाद,
धन्य मानता है उसे प्रतिभाहीन प्रमाद ।३५१

शंकर विद्या से बने कोविद करुणाकन्द,
अन्ध अविद्या ने किये अभिमानी मतिमंद ।३५२

शंकर विज्ञानी करें अभिनव आविष्कार,
मतवाले बुद्धू भरें जनता में कुविचार ।३५३

सीख सिखाना सीखना लेकर-देकर दाम,
यों गुरु-चेलों के चलें धर्म-कर्म अभिराम ।३५४

सत्यानाशी खिल रही भिनगे करें विलास,
फूल-फूल फूलो फलो देख बसन्त-विकास ।३५५

ज्यों बिजली की शक्ति से चलते यंत्र अनेक,
त्यों सब देहों को करे चलित चेतना एक ।३५६

बिछा हुआ है विश्व में सुख-संकट का जाल,
काट सकेंगे एक-सा जीव न जीवन-काल ।३५७

मत-पन्थों की कल्पना जाति-पाँति नृप-नीति,
इनके द्वारा द्वेष ने दूषित कर दी प्रीति ।३५८

मायिक मतवारेन के जाल बिछे जग माहिं,
लौकिक जन उरझे पड़े फँसे परीक्षक नाहिं ।३५९

मत-पन्थों के जाल में उलझे मानव-थोक,
समझे चोटी मुक्ति की पकड़ बन्ध का ठोक ।३६०

बुद्धू जान सुजान को गाल न मार गमार,
ढोर ढूँकता है कहाँ समझ सिंह को स्यार ।३६१

चोखा आमिष भी सड़े कुरस पीव का पाय,
डर जाते हैं सूरमा कायर को अपनाय ।३६२

सुख भोगें पुरुषारथी विद्या-बल बगराय,
नीच निकम्मे आलसी प्राण तजें दुख पाय ।३६३

जार ज्वारिया मादकी वचक चोर लवार,
करते हैं संसार में घोर कुकर्म प्रचार ।३६४

जनता का जो हित करें देश-भक्ति उर धार,
कर देंगे वे लोक का रोक बिगाड़ सुधार ।३६५

जो विद्या-बल से बने सज्जन सभ्य सुबोध,
उनके शिष्टाचार से बढ़ता नहीं विरोध ।३६६

झूठन की झूठी कथा सुन-सुन उपजे सोच,
धीर चतुर के चित्त मे चुभें न चर्चा पोच ।३६७

उद्यम द्वारा साहसी कर दरिद्र को दूर,
धर्म धार संसार में सुख भोगें भरपूर ।३६८

धनी निरधनी होत है रंक होहि धनवान,
कारण श्रम आलस्य दो सो स्वाभाविक जान ।३६९

बिचरत देश-विदेश में करत सत्य उपदेश,
सो साधू संसार के काटत कठिन कलेश ।३७०

रोगों ने जिनका किया दूषित भोग-विधान,
वे दुखिया लादें पड़े जीवन भार-समान ।३७१

मूड़ मुड़ायो मानकर मूढ़ गुरू की सीख,
सडा स्वामीजी भये मांगत डोलें भीख ।३७२

दान-भोग-त्यागी धनी निरख बिजूका चेत,
चुगना रोके और का आप न चुगता खेत ।३७३

तन मोटो मोटे चलन धन मोटो घर माँहि,
मति के मोटे सेठजी कहाँ मुटाई नाहिं ।३७४

फक्कड़ की ठाड़ी भुजा लक्कड़-सी लखि तात,
या ठगई के ठूँठ में कढ़े-बढ़े नखपात ।३७५

तन के भारी भोंट-से मनके महा मलीन,
लाला धनके लालची गुण गहि राखे तीन ।३७६

माला सटकें सेठजी पाय धरा-धन-धाम,
लिया राम का नाम पै दिया न एक छदाम ।३७७

ओढ़ें अम्बर गेरुआ धार गठीलौ दंड,
देखो दंडीजी बने व्यापक ब्रह्म अखंड ।३७८

घेरे घोर दरिद्र ने रहा न कुछ भी पास,
भिखमंगा स्वामी बने उदर देव के दास ।३७९

मान बढ़ाते मेल का सज्जन सभ्य सुबोध,
भजते हैं संसार में मूढ़ प्रमाद विरोध ।३८०

चिलम चढ़ाई चरस की चट चूँसी ललकार,
जागी ज्वाला-जोगिनी धार धुआँ की भार ।३८१

तापत हो दिन-रात क्यों नागाजी मल खेह,
पूरौ तप कर लीजिए धर धूनी में देह ।३८२

राख रमाई अंग में चिलम-चीमटा हाथ,
माँगत फिरें महंतजी बालक-बाई साथ ।३८३

हाड़न की माला धरे मदिरा मल पी-खाय,
कापालिकजी नर भरें घर-घर अलख जगाय ।३८४

कस कौपीन लपेट रज कर शिर घोटमघोट,
अलखराम मोटे भये खाय भीख के रोट ।३८५

रूखड़ सूखड़ आदि सब उदर देव के पास,
शंकर कबहु न जायगी विद्या इनके पास ।३८६

सुख से पाले दौ रया जिसम अपने अंश,
शुक्ल पक्ष के चन्द्र सम बढ़ता है वह वंश ।३८७

मर्म जनावे धर्म का जिस का अनुसन्धान,
पूजें उस मस्तिष्क को वैदिक देव सुजान ।३८८

हा बिकते हैं पैंठ मे दिन-दिन दुबले ढोर,
काटें बांधक कटा रहे निर्दय हृदय कठोर ।३८९

गटकें गट्टे रेवड़ी पीते शरबत अर्क,
जिन से ऐसा मेल है फिर भी उन से फर्क ।३९०

खनो न बौरे गीदड़ो खेड़ा समझ पहाड़,
मार पछाड़ेंगे तुम्हें सिंह दहाड़-दहाड़ ।३९१

उद्यम से न्यारे रहें मान कुमति की सीख,
पालें पेट कुलक्षणी मांग-मांग कर भीख ।३९२

द्वेषी मतवारेन की जुदी-जुदी छबि हेर,
कौन कहे मन की दशा वस्त्रन हूं में फेर ।३९३

खण्ड बना पाखण्ड का ठगई की धज धार,
ठगता है संसार को ठगिया जाल पसार ।३९४

जो मन, वाणी, कर्म से सबका करें सुधार,
वे बड़भागी धन्य हैं सुकृती परमोदार ।३९५

एक पिता के पुत्र हैं धर्म सनातन एक,
हा, मतवालों ने रचे जाल-कुपन्थ अनेक ।३९६

सुख भोगें पुरुषारथी विद्या-बल बगराय,
नीच निकम्मे आलसी प्राण तजें दुख पाय ।३९७

मारी प्राकृत न्याय ने पक्षपात पर लात,
दुख देवा संसार में कष्ट सहे दिन-रात ।३९८

टूटी खटिया पै पड़े घर की टटिया मार,
ओढ़ गूदड़ी गा रहे कर्महीन भरतार।३६६

व्यापक है संसार में विधि-निषेध विख्यात,
शिक्षा मानवजाति को मिलती है दिनरात।४००

दूर करेंगे आलसी मन-मोदक से भूख,
फूल-फलेंगे चित्र के सुन्दर नीरस रूख।४०१

मूढ़-मण्डली में पड़े पामर पूँछे जात,
ता समाज में को सुने पण्डित की प्रिय बात।४०२

बड़े बड़ाई लोक में करें न अपनी आप,
बिन पूछें सब सों कहें छोटे क्षुद्र प्रताप ४०३

पाते मन की मौज से कल्पित भोग-विलास,
कर्महीन जाते नहीं जगदुन्नति के पास।४०४

हत्यारे पति को दिया प्राणदण्ड कर न्याय,
पत्नी तो बिन पाप ही विधवा करदी हाय।४०५

विधि-निषेध जाने बिना मनमानी बक देत,
ऐसे बकबादीन की सम्मति मति हर लेत ४०६

हाय कोसती हैं जिसे अबला संकट भोग,
जाते हैं उस वंश का खोज मिटाकर लोग।४०७

मात-पिता गुरु जन अतिथि चारों देव समान,
इन्हें मान सुख दान कर भूल न कर अपमान।४०८

बाल ब्रह्मचारी जहाँ उपजें परमोदार,
शंकर होता है वहाँ सबका सर्व-सुधार।४०९

मनसा-बाचा-कर्मणा जो सुधरें हम लोग,
तो सुख देंगे देश को सब के सब उद्योग।४१०

तस्कर ठ्वागी जालिया हिंसक जार लबार,
ऐसे असुरों का करे दण्ड-विधान सुधार ।४११

प्राणदण्ड पाते रहे नरघाती अभियुक्त,
काट वैरियों के गले विचरें वीर विमुक्त ।४१२

रहै जन्म से मृत्यु लों ब्रह्मचर्य-व्रत धार,
समझो ऐसे वीर को पौरुष पुरुषाकार ।४१३

दाता जिनको दे रहा विश्व-विवेक विशाल,
उन लालों पै वारिये अगणित हीरा-लाल ।४१४

नीच, निकम्मे, नारकी, पोच पसार प्रमाद.
मोधू मरते हैं सदा भोग दरिद्र, विषाद ।४१५

जान रहा है शुक्र को जो सुख जीवन-हेतु,
ब्रह्मचर्य होगा उसे भव-सागर का सेतु ।४१६

जो विद्या बल वित्त का सुख भोगें भरपूर,
वे रहते हैं अन्त लों घोर नरक से दूर ।४१७

जो विद्याधर धर्म का करते है उपदेश,
मंत्र सुनें पूजें उन्हे सादर प्रजा-प्रजेश ।४१८

जब लों वर्ष पचीस की तेरी आयु न होय,
तबलों अपने शुक्र को मैथुन कर मत खोय ।४१९

जो पशु अपनी आयु-भर सबके आवे काम,
पालो मत मारो तजो ताको माँस हराम ।४२०

जो पंचत्व-विकास से बनते है तन थोक,
उन देहों के दृश्य है मृतकों के परलोक ।४२१

जाके मुख मदिरा लगै मतवारो कर देत,
बल-विवेक शुभकर्म सुख तन-मन-धन हर लेत ।४२२

जा प्राणी के देह में सबल शुक्र को राज,
सो सुखसों संसार में सिद्ध करे सब काज ।४२३

जान मान कर सत्य को कहें करें जो ठीक,
तिनके जीवन की प्रथा सबकी सीधी लीक ।४२४

पोथी थोथी मत पढ़े मान हमारी सीख,
प्यारे पुतुआ मौजकर माँग-माँग कर भीख ४२५

गर्भ धार नौ मास लों जनती है दुख भोग,
दूध पिलाती-पालती मा कर प्रेम-प्रयोग ।४२६

पाया जिसने ज्ञान का गौरव गुण गम्भीर,
कौन न मानेगा उसे धर्मधुरन्धर धीर ।४२७

निर्बल करें शरीर को ओज शुक्र कर अस्त,
मान घटाते बुद्धि का मादक द्रव्य समस्त ।४२८

जिनकी रक्षा के लिए रखते द्रव्य बटोर,
उन गायों को दे रहे कट्टर कष्ट कठोर ।४२९

गर्भ त्याग जन्मा पिया जिसका अमृत स्तन्य,
हा उस माता का बना पुत्र न भक्त अनन्य ।४३०

हत्यारे कटवारहे जिन को लेकर माल,
नीच काम में लारहे उन पशुओं की खाल ।४३१

बैठे सभ्य-समाज में सुन डाले उपदेश,
जड़ ज्यों के त्योंही रहे सुधरे कर्म न लेश ।४३२

जो खल खोता है वृथा अपनी आयु अमोल,
ढोता है वह अन्तलों संकट भार अतोल ।४३३

पाप कमाये आजलों धर्म-कर्म कर दूर,
अब क्या होगा पातकी भोग दुःख भरपूर ।४३४

पढ़ो न विद्या एक भी पढ़ो न उद्यम सीख,
दिन काटो आनन्द से माँग-माँग कर भीख ।४३५

हा, तारुण्य-तड़ाग के सूख गये रस-रंग,
बुढ़िया फिर भी पैठ के सुनती फिरे प्रसंग ।४३६

यथायोग्य वर्त्ताव की पद्धति के अनुसार,
पूजा करिये जाति की सादर प्रेम पसार ।४३७

धारें दम्पति धर्म को सारस आदि विहंग,
मादा-नर दोनों मिले रहें निरन्तर संग ।४३८

भोले तरसें तेज को चमक रहे चालाक,
नीच उठो, ऊँचे चढ़ो काट कुगति की नाक ।४३९

प्राण पक्षियों के हरें सिकरा कुही शचान,
तीनों के कुल-मान का बढ़ता नहीं विधान ।४४०

मतवालों ने ओढ़ली वृष की खाल उचेल,
खेल-खेल पाखण्ड के ऊल रहे अनमेल ।४४१

माँद बिसारें रात को पेट भरन के काज,
झूँड़ों में दुबके रहें पर-घाती मृगराज ।४४२

छोड़ रहे हैं साहसी लोचन अश्रु-प्रपात,
बुझे न ज्वाला आधि की व्याधि बढ़े दिन-रात ।४४३

सधवा सारी आयुलों लाख करे व्रत-दान,
पति की पूजा के विना हैं सब शून्य समान ।४४४

तर्क-प्रमाणों से परे पितरों का परलोक,
सुनते हैं, देखा नहीं मान लिया रुचि रोक ।४४५

धन्य उष्णता से मिली शीतलता विपरीत,
हरिश्चन्द्र का योग है सुखद अनुष्णाशीत ।४४६

प्रेमी करते हैं सदा सबसे मेल-मिलाप,
त्यागें वैर-विरोध को मान भयानक पाप ।४४७

आयु अजा की खा रहा काल पिशाच प्रचंड,
फिर भी तेरा तामसी घटे न घोर घमंड ।४४८

सिद्ध रहे स्वाधीनता था जिनका गुरु मन्त्र,
उन वीरों के वंश हा दिन काटें परतन्त्र ।४४९

शंकर देशों में भरे प्रेम-भाव भरपूर,
जनता की रक्षा करे मार-काट कर दूर ।४५०

शंकर ही-सा रुद्र हो रो मत भारत दीन,
मेंट पराधीनत्व को हँस होकर स्वाधीन ।४५१

बात न मानें मेल की झगड़ें फूट पसार,
ऐसी बिगड़ी जातिका बस हो चुका सुधार ।४५२

शंकर प्यारे प्रेम को पकड़ें प्रजा-प्रजेश,
हो सानन्द स्वराज्य से उन्नत भारत देश ।४५३

हत्यारी परतंत्रता प्राण हरे प्रण ठान,
भोग रहे हैं, हाय हम जीवन मृत्यु-समान ।४५४

जो सामाजिक धर्म पै टिका टिका कर टेक,
लाखों का नेता बने कर्मवीर वह एक ।४५५

परदेशों को देश का भेज-भेज कर अन्न,
शंकर लाला हो रहे मरणासन्न प्रसन्न ।४५६

भारत रोता है वृथा बैठ धार कर मौन,
तेरी दुर्गति पै कृपा कर सकता है कौन ।४५७

देशभक्ति का साहसी करते हैं अभिमान,
पाते हैं करतूति का सबसे आदर-दान ४५८

जो विकराला नीति के चलने लगे विरुद्ध,
तो हम होंगे जेल का काल काट कर शुद्ध ।४५६

देशी तूल अनाज से भरते रहे जहाज,
रक्षा करे विदेश की धन्य महाजनराज ।४६०

जो सब देशों में रहा सर्वोपरि शिरमौर,
नीचा भी मिलता नहीं उस भारत को ठौर ।४६१

कैसी फेरी कालगति हे कलियुग भगवान,
चैन करें वंचक धनी भूखन मरें किसान ।४६२

देश-बिदेशों में फिरो सामाजिक बल धार,
श्रीत बनो वाणिज्य का कर बढ़िया विस्तार ।४६३

फैलेगी जिस देश में फैलफूट कर फूट,
और ठौर की एकता दौर करेगी लूट ।४६४

ठेल सजीले ठाठ का धरे देश पर भार,
बेचें माल विदेश का कर बढ़िया व्यापार ।४६५

ठुकराते थे स्वर्ग को जिनके भोग-विलास,
वे भारतवासी करें घोर नरक में वास ।४६६

सम्पादन-स्वातन्त्र्य को कुचल रहा सर्वत्र,
प्रेस ऐक्ट की मार से अब न बचेंगे पत्र ।४६७

मार गोलियों की सहें वीर तरें तन त्याग,
तीन रक्त-धारा मिलें प्रगटे तीर्थ प्रयाग ।४६८

करते हैं आलस्य का कर्मवीर अपमान,
जाति जीवनाधार है उद्यमशील किसान ।४६९

शंकर स्वामी सौंप दे उन्नत पद प्राचीन,
प्यारा भारतवर्ष हो सबल शीघ्र स्वाधीन ।४७०

लट खोलें बाँधे जटा मुण्डित लुंचित केश,
लूट रहे इस देश को घर-घर नाना बेश ।४७१

अपना लेते हैं जिन्हें सुकृती सभ्य सुबोध,
उन देशों का क्या करें प्रतियोगी प्रतिरोध ।४७२

दूध पियें, बोझा धरें चढ़ते हैं कस काय,
जोत जिन्हें खेती करें वे पशु करते हाय । ४७३

करते हैं, योगी, गुणी, अभिनव आविष्कार,
बनते हैं विज्ञान की उन्नति के अवतार ।४७४

गीदड़ घुड़की देत हैं करके ऊँचे कान,
भेड़ी-सी भोरी भई सिंहन की सन्तान ।४७५

भोजन भेज विदेश को लेत कबाड़ मंगाय,
या भारी व्यापार की उन्नति कहाँ समाय ।४७६

तारा गण के बीच में जैसे है राकेश,
सब देशन में मुकुट-मणि तैसे भारत देश ।४७७

राजकर्मचारी करें उन पर पूरा प्यार,
डाली देकर जो करें जी हुज़ूर हर बार ।४७८

लूट रहे संसार को वे अवनीश टिकैत,
जिनके छोटे रूप हैं ठगिया चोर डकैत ।४७९

जिनके द्वारा हो सके सबका सर्व-सुधार,
उन बातों का देश में करते रहो प्रचार ।४८०

गिर जाता है गर्त्त में जब जो उन्नत देश,
ऊँचा करते हैं उसे तब ऊँचे उपदेश ।४८१

हे शंकर संसार के करदे संकट दूर,
भरदे प्यारे देश में प्रेम-भाव भरपूर ।४८२

जा राजा के राज में प्रजा भरे दुख पाय,
ताको तेज प्रताप बल सदल नाश है जाय ।४८३

देगी शंकर की दया अब आनन्द अपार,
देखो भारत का हुआ उदय दूसरी बार ।४८४

पूजो उस वाणिज्य को उद्यमराज बखान,
करता है जो शीघ्र ही निर्धन को धनवान ।४८५

खेती करते हैं जहाँ उद्यमशील किसान,
वसुधा देती है वहाँ सब को जीवन-दान ।४८६

पशु भूसा-चारा चरें हम खाते फल-अन्न,
कृषि द्वारा दोनों जियें ढोर,मनुष्य प्रसन्न ।४८७

जन्मभूमि का-देश का हो न जिसे अभिमान,
ऐसे ऊत उतार को मानो मृतक-समान ।४८८

प्यारी जनता में भरें भेद न जाति न पाँति,
सारा भारत एक हो शीर-शकर की भाँति ४८९

भारत भाषा का बढ़े मान महत्व अपार,
गौरव धारे नागरी ललित लेख विस्तार ।४९०

जो उपकारी देश का करते हैं उपकार,
पूजो उनको प्रेम से सभ्य, कृतज्ञ, उदार ।४९१

जिनके आविष्कार हैं ज्ञान-गगन के खेट,
वे पण्डित पाते नहीं भोजन भी भरपेट ।४९२

जिसमें नेगी न्याय के उपजें प्रजा-प्रजेश,
उन्नत होता है सदा बड़भागी वह देश ।४९३

नीति छोड़ कर लेत कर जो नृप छल-बल रोप,
ताहि एक दिन खायगी दुखी प्रजा कर कोप ।४९४

भूपन की भटमार में होत प्रजा की लूट,
लड़ें बलाहक बीजुरी पड़े धरा पर टूट ।४६५

हा हा शंकर हो गया तिलकहीन संसार,
संकट-पारावार से कौन करे अब पार ।४६६

हिंसा त्यागी भट बनो पीकर पौरुष-आज्य,
शंकर दाता आपको देगा सुखद स्वराज्य ।४६७

लाखों कुनवे खागये प्लेग युद्ध ज्वर घोर,
बाज रही दुर्भिक्ष की जय-भेरी चहुँ ओर ।४६८

शंकर गाँधी सिद्ध का फूल-फले उपदेश,
पावे राम नरेश की प्रभुता भारत देश ।४६६

श्रीगाँधीजी प्रभृति हैं भारत-जीवन हेतु,
संकट-पारावार का हो सब का श्रम-सेतु ।५००

गोरी गरिमा के हितू त्याग विवेक-विधान,
मार काटते हैं हमें विकट विरोधी मान ।५०१

श्रीगुरु गाँधी का फले असहयोग का मन्त्र,
भारत लक्ष्मीनाथ हो पाय स्वराज्य स्वतंत्र ।५०२

डाला अड़की आग में रौलट बिल का आज्य,
देखो भारत को मिला कैसा सुखद स्वराज्य ।५०३

भेदहीन हो जाइये हिन्दू-मुसलिम एक,
देश-भक्ति पै कीजिये प्यार टिका कर टेक ।५०४

बाजेगा घर खोजिया ललमुण्डा यम-घण्ट,
हा-हा, पकड़ेंगे हमें हेकड़ बिन वारण्ट ५०५

शंकर तेरे हाथ है हम सब का उद्धार,
पड़ने वाली है कड़ी रौलट बिल की मार ।५०६

तुम राधा के रूप हो हम केशव के रंग,
संग न चाहो छोड़ना रखते हो पर तंग ।५०७

बोल बिरानी बोलियाँ चहक रहे चण्डूल,
पर-भाषा भाषी बने अपना भाषण भूल ५०८

जो अन्याय अनीति से अटका न्याय-विरोध,
तो कर डालेगी प्रजा प्रभुता का परिशोध ।५०९

जा साहित्य-तड़ाग में फिरता रहा सराग,
फूला शंकर भृंग सो पाकर पद्म-पराग ५१०

शुद्ध रसीले भाव से सुन्दर भूषण धार,
प्यारी कविता-कामिनी कर शंकर पै प्यार ।५११

को जाने कवि के बिना कविता को आनन्द,
सुख चकोर को-सो कहो कौन लहै लखि चन्द ।५१२

मधु की आशा छोड़ दे रे मतिमन्द मिलिन्द,
क्यों नरिया के फूल को मान रहा अरविन्द ।५१३

चंद्र ग्रास देखे खड़ी सतखंडे पर बाल,
दर्शक बोले देखलो गया ग्रहण का काल ।५१४

घाई में कटि दे करे चखपुतली का खेल,
पद्मसिंह का योग है मृग-मिलिन्द का मेल ।५१५

जबलौं जाकी लोक में कविता करे प्रकाश,
तबलौं ता कविराज के यश को होय न नाश ।५१६

होता है कविराज का उस प्रकाश में जन्म,
जिसकी सीमा से सटे त्याग नकार न तन्म ।५१७

काल कराल समुद्र में कविता-रूप जहाज,
जाय चढ़ावे सो तरे कर्णधार कविराज ।५१८

गद्य-पद्य-चम्पू रचें सिद्ध सुलेखक लोग,
उनकी शैली सीखले कर साहित्य-प्रयोग ।५१९

सिर पै कच कच-पास पै सीस फूल को बास,
जनु सुमेरु पै तोपतम दिनमणि करत विलास ।५२०

मार वेग मारुत प्रबल पावक परतिय चाह,
जाके जीवन में लगी जारत बुझे न दाह ।५२१

छोड़ रसों के स्वाद को पटके भूषण भार,
कविता की बन्दी बनी तुकबन्दी करतार ।५२२

कविता देवी का सदा रे शंकर धर ध्यान,
क्या आदर देगी तुझे तुकबन्दी बिन ज्ञान ।५२३

विश्व-विहारी दान दे सो पद पद्म-पराग,
जो मेरे मन-अंग का उमगावे अनुराग ।५२४

जिनके मीठे बोले पै रीझा रसिक-समाज,
उस तोते को खागया झपट बिलौटा आज ।५२५

उमगे अंकुर प्रेम को पहले तिय के अंग,
पहले बाती जरत है पाछे जरत पतंग ।५२६

मेरी भव-बाधा हरे वह राधा सुखधाम,
जिसकी आभा से हुआ हरियाला घनश्याम ।५२७

पर्व काल में देखके तेरा वदन विकास,
सम्पादक ने पत्र में लिखा न शशि का ग्रास ।५२८

सञ्चालक सम्पादको यों करिये सब काम,
कवि लिक्खाड़ों को न दो शंकर एक छदाम ।५२९

ज्ञान-मोह के मेल को मान सुधा-विष योग,
बूड़ा सुख-सन्ताप में मिश्रित जीवन-भोग ।५३०

शंकर भारी भूल से उजड़ा जीवन-खेत,
शेष रखाने के लिए अब तो चेत अचेत ।५३१

शोणित बूढ़े देह का चाट रहे उपताप,
घेर-घेर मारें मुझे घोर कुकर्म-कलाप ।५३२

ज्ञान कहे संसार को जान असार बिसार,
मोह पुकारे मौज से कर कुनबे पै प्यार ।५३३

शंकर पूरे हो चुके जीवन के सुख-भोग,
बुड्ढा बतलाने लगे घर-बाहर के लोग ।५३४

शंकर खेला आजलों ज्ञान-मोहमय खेल,
डालेगा दिन अन्त का बस दोनों पर डेल ।५३५

काट बुढ़ापा शीत को उमगा अन्त वसन्त,
फूल बखेरेगी चिता अबतो हे भगवन्त ।५३६

हे शंकर प्यारे पिता अबतो संकट काट,
देख रहा हूँ हाय मैं मरण-काल की बाट ।५३७

शैशव खोया खेल में यौवन-काल समेत,
थोड़ा जीवन शेष है अब तो चेत अचेत ।५३८

हाय जिलाता है मुझे क्यों शंकर करतार,
देख चुका संसार को जीवन-भार उतार ।५३९

हा न चैन पाया कहीं झख मारा सब ठौर,
हे शंकर तेरे सिवा अब न ठिकाना और ।५४०

शंकर देखा आजलों चौंसठ वार वसन्त,
फूले-फूल खिला रहे फल जीवन का अन्त ।५४१

खेल चुका खोटे-खरे निपट खोखले खेल,
आज मोह-माया तजी शंकर से कर मेल ।५४२

डूबे संसृति-सिन्धु में देह-पोत बहु बार,
शंकर, बेड़ा दीन का अबतो करदे पार ।५४३

घेर रहे छोड़े नहीं अटके पाप कठोर,
दीनानाथ, निहार तू मुझ व्याकुल की ओर ।५४४

उलझा माया-जाल में मूढ़ कुटुम्ब समेत,
आता है दिन अन्त का अब तो चेत अचेत ।५४५

वंश बीज बोये उगे पूत मिले फल चार,
पोता पोता भर चुका छोड़ खेत खितहारा ।५४६

उतरा मा की गोद से मायिक मोह गमाय,
बालक बेटा बाप में शंकर गया समाय ।५४७

स्वामी मरने का नहीं सेवक अपने आप
मुक्त बनादे काटदे जीवन-बन्धन पाप ।५४८

शंकर दाता ने दिये ज्ञान मोह भरपूर,
एक दूसरे को कभी कर न सकेगा दूर ।५४९

मेला मेल-मिलाप का निरखे प्रजा-प्रजेश,
धर्म धार फूले-फले सुख भोगे सब देश ।५५०

तिय तरुणी सन्तान शिशु त्याग लियो वैराग,
शंकर ऐसे साधु पर डार बार कर आग ।५५१

भट्टा है अनरीति का हा वह बाल-विवाह,
सूखा जिसके ताप से दम्पति प्रेम-प्रवाह ।५५२

मुंदे न राखति दीठ ज्यों खुले न राखति लाज,
पलक-कपाट दुहून के पल-पल साधत काज ।५५३

जाके बाहर कछु नहीं जो सब ही को धाम,
पायो अपने आप ही अपने में सो राम ।५५४

फूला कण्टक झाड़ में काल पड़ा प्रतिकूल,
तोड़ चबाया ऊँटने शंकर सुन्दर फूल ।५५५

शंकर डूबे अन्त को सब हो-होकर मौन,
हा, संसार-समुद्र को तर सकता है कौन ।५५६

सूर्यमुखी सेवा करे रीझे पर न दिनेश,
यों अनुगामी रंक को अपनाता न धनेश ।५५७

रखते हैं खोटे-खरे भीतर-बाहर भेद,
नारंगी-ख़रबूज़ को निरखो छिलके छेद ।५५८

एक ओर तेरो वदन चन्द्र दूसरी ओर,
जाय न कितहू बीच में नाचत फिरे चकोर ।५५९

शंकर कंगाली बुरी भानु हुआ धन हीन,
मकरेला खाजायगा सब की खिचड़ी छीन ।५६०

शंकर सिंहों की भला स्यार करें कब होड़,
थोड़े पुरुषों से डरें कायर कई करोड़ ।५६१

भूतकाल में जो खिला फूल कहाय सरोज,
वर्तमान संसार में रहा न उसका खोज ।५६२

नित घूँघट की ओट में रहे न छोड़ी लाज,
सो दोऊ नैना काढ़ कै कागन खाये आज ।५६३

धीर-वीर ज्ञानी थके कर अनेक उपचार,
बचे न गारे मार ने फूलन के शर मार ।५६४

विविध रचनाएँ

भट्ट-भणन्त

१

शंकर शिवा के पुत्र प्यारे गणनायकजी,
खोलो चौड़े कान छोटी अँखियाँ उघारिये।
लम्बोदर देव भाल-चन्द्र चमकाने वाले,
एकदन्त वक्र तुण्ड-शुण्ड फटकारिये।
अंकुश घुमाते धूम्रकेतु आखु पर चढ़े,
मंगलकरन दुख हरन पधारिये।
ईख के अँगोले पूले ज्वार के चबाते हुए,
भारत में भट्ट की भणन्त को पसारिये।

२

बूँकता तमाकू दीया बार फूटी कोठरी में,
गाँजी ओढ़ सोता हूँ सराय की-सी खाट पै।
भंग की तरंग में उमंग जाग जाती है तो,
जुंग-भरे लेख लिख लेताहूं कपाट पै।
कोरी वाह-वाह कोई कौड़ी भी न दान करे,
सूम खड़े कविता-तरंगिनी के घाट पै।
दारुण दरिद्रता न छोड़ती है पिण्ड तो भी,
देवी की दया है भारी भट्ट के ललाट पै।

३

एक आँख शंख की लगाली किसे सूझती है,
ऐनक दो नाक चपटी पै धर लाया हूं।
ऊंचे कर नीचे बैठे गालों को गिलोरियों से,
मुख में बनावटी बतीसी भर लाया हूं।
खोल के मुड़ासा गंजी खोपड़ी दिखाता नहीं,
दाढ़ी और मूँछों पै खिज़ाब कर लाया हूं।
गाजता हूं तुक्कड़ नरों में नरसिंह जैसा,
गीदड़ गितक्कड़ों का मान हर लाया हूँ।

४

कालीजी की काली प्रतिमा के पग पूजा करो,
काँपो न कृपाण चपला की चम-चम से।
मार-धाड़ देखने को हुड़क बुझाते रहो,
रामलीला ही की धूम-धाम धम-धम से।
राधिका के प्यारे राधिकेश को रिझाओ-रीझो,
रासधारियों के छोकड़ों की छम-छम से।
तीसरा नयन फट्ट खोल देंगे भट्ट कहीं,
भोलानाथजी को न जगाना बम-बम से।

५

भूले भोंगा भूसुर भिड़न्त जामदग्न्यजी की,
द्रोण महाराज की न चरचा चलाऊँगा।
राम-कृष्ण जिष्णु भीमसेन-से मिलेंगे कहाँ,
ठाकुरों को ठकुरसुहाती से रिझाऊँगा।
पोले पेट वालों को न धोतियाँ धुलानी पड़ें,
गीदड़ों को गूदड़ का बाघ न दिखाऊँगा।
भागो मत भट्ट के भगोड़े यजमानो आओ,
छोड़के प्रसंग कुछ और ही सुनाऊँगा।

६

भट्ट किसी भाँति भी स्वतंत्रता न आवे हाथ,
बेड़ी परतंत्रता की पैरों में पड़ी रहे।
विद्या की सहेली सीधी सभ्यता के काटे कान,
साथ ले अविद्या को असभ्यता अड़ी रहे।
भेद के भबूके उठें वैर की बुझे न आग,
फूली-फली फूट सदा सामने खड़ी रहे।
अन्तलों अभागे भोले भारत की अन्धी आँख,
दुखदा दरिद्रता दुलारी से लड़ी रहे।

७

राज-कर्मचारियों के सुयश बखाना करो,
खाना नहीं ठोकरें बखेड़ियों के खेलों में।
काँगरेसियों की-सी न हेकड़ी जताना कभी,
नाम न लिखाना दयानन्दजी के चेलों में।
पिट्टुओं के हुल्लड़ में हल्ला न मचाना अजी,
मन्दभागियों की भाँति जाना नहीं जेलों में।
भोंकने की व्याधि करो दूर गदहों के द्वारा,
मारो भट्ट दोंच की दुलत्तियाँ तबेलों में।

८

बूट-पतलून कोट धारो वाच पाकट में,
छज्जेदार टोपी छड़ी-छतरी बगल में।
बोलो अँगरेज़ी होटलों में खान-पान करो,
साहिबी-मुसाहिबी को लाइये अमल में।
बाईसिकिलों पै चढ़े चुरुटें उड़ाते फिरो,
गोरे रंग ही का रहे अन्तर नक़ल में।
देशी वेश छोड़ो बाना बाँधिये वलायत का,
कीजिये विलास मौजी मिस्टरों के दल में।

९

शंकर की सत्ता को महत्ता हीन माना करो,
अज्ञता में विज्ञता का भाव भरना नहीं।
पूजो जड़ता को चाह कीजिये न चेतना की,
मारो प्राणियों को पर आप मरना नहीं।
खाओ फल-फूट के बढ़ाते रहो वैर वीरो,
आपस में प्रेम का प्रचार करना नहीं।
भट्ट सुख दीजिये विदेशियों को देशियों को-
संकट-समुद्र में डुबादो डरना नहीं।

१०

काम चापलूसी के सहारे से चलाया करो,
देखो न दिखाना लेखनी की करामातों को।
कोरे बकवादियों की भाँति किसी अङ्क में भी,
भोंखना न भारत की दुःख-भरी बातों को।
न्याय से अनीति के नमूने बतलाना नहीं,
नौकरों की शाही के प्रचण्ड पक्षपातों को।
सम्पादक यारो, राय भट्ट की न मानोगे तो,
खाओगे कराल काल कट्टर की लातों को।

११

देश के बिगाड़ को वसन्त का विकास मान,
टेसू के समान फूले कोयल-से कूकिये।
उन्नति को नीचता की गाढ़ में ढकेल कर,
विद्या-बल-वैभव की थूथरी पै थूकिये।
भारी भक्ति-भावना से गोरी-गरिमा को पूज,
काली कालिमा के खोज खोने में न चूकिये।
भट्ट जो न धारे पराधीनता तुम्हारी भाँति,
दीजिये उलाहने असंख्य उसे ऊकिये।

१२

देवनागरी की राम रें-रें को प्रणाम करो,
बूढ़ी बोलियों का मान माथे न मढ़ाइये।
फ़ारिस लों फ़ारसी की छारसी उड़ाते रहो,
उरदू के दायरे का दौर न बढ़ाइये।
बाप ने पढ़ी थी; अब आपने पढ़ी है वही,
प्यारी राज-भाषा बाल-बच्चों को पढ़ाइये।
मिस्टर कहाओ भट्ट लंडन की लाड़िली को,
ऊल-ऊल उन्नति की चोटी पै चढ़ाइये।

१३

छूना नहीं चाहते विलायत की वस्तु कोई,
वञ्चक विदेशी व्यवसाय को बताते हो।
भारत को भट्ट ढाँप दोगे खादी-खद्दर से,
आप बुनते हो सूत बीबी से कताते हो।
फाड़-फाड़ थान बेचते हो दूने दाम लेके,
धर्म से कमाते हो न दीनों को सताते हो।
पाया है नकीज़ा नाम देश-हितकारियों में,
जालियों को जीवन सुधारना जताते हो।

१४

वारे बेटा-बेटियों के ब्याह में न देरी करो,
प्यारे शीघ्रबोध का प्रमाणामृत पीजिये।
गर्भ चुपचाप विधवाओं के गिराते रहो,
सधवा किसी को भी दुबारा नहीं कीजिये।
बूढ़े बड़भागी बालिकाओं को वरें तो उन्हें,
ऊकिये न बार-बार धन्यवाद दीजिये।
चूको मत भट्ट चटापट्ट बेचो बच्चियों को,
मौज मारो माल की कमाई कर लीजिये।

१५

बूचड़ों के हाथ बेच-बेच बोदे पशुओं को,
जीवन की नाथ काटे नाक में नचाओ रे।
छागी मृग मीन कुक्कुटादि को कुयोनियों के,
जाल से छुड़ाओ खाओ पेट में पचाओ रे।
छीन-छीन दाम धरा-धाम रंक-ऋणियों को,
चोर-ठग, डाकुओं के डर से बचाओ रे।
आओ रे कृतज्ञ कारुणिक दया-दानवीरो,
भट्ट धमाधम्म धूम धर्म की मचाओ रे।

१६

विद्याधर बी०ए०,एल-एल० बी उपाधिधारी,
मिश्रजी विहारी कृष्ण बेधड़क बोलिये।
देव को विहारी से बड़ा जो मान बैठे हो तो,
न्याय की तुला पै प्रतिवाद को न तोलिये।
अण्ड-बण्ड दूषण गढ़न्त के दिखाते हुए,
गोल-मोल पोल कवि शंकर की खोलिये।
तुक्कड़ों का राजा छपा दीजिये 'सरस्वती' में,
भट्ट की भणन्त में न भूल को टटोलिये।

१७

लघुता पै गुरुता गुरुत्व पै लघुत्व लाद,
मिश्र बिन बेंड़ी समालोचना करेगा कौन।
मौजी महाराज मौजहीन हो गए तो फिर,
शंकर पै गालियों के गट्ठर धरेगा कौन।
खन्नाजी की दानवीरता जो न रही तो हाय,
तुक्कड़ों की जेबें खनाखन्न से भरेगा कौन।
तेरी तुकबन्दी का न आदर बढ़ा तो भट्ट,
बोल पोल खोलते भड़ौश्रों से डरेगा कौन।

१८

भेद मत-पन्थों के भिड़ादो भौंड़ी भिन्नता से,
कोप को कुतर्क की तुला पै तोलते रहो।
ढोंगिया ढंढोरा पीटो ढोँग के ढकोसले का,
बाँध-बाँध गोल डामाडोल डोलते रहो।
आप जिसे जानो मानो ठीक सम्प्रदाय उसे,
औरों की निरादर से पोल खोलते रहो।
प्रेम को घटा के भट्ट वैर को बढ़ाते रहो,
हिन्द के निवासी हिन्दू हिन्दी बोलते रहो।

पंच-प्रपंच

[इन छन्दों में शंकरजी ने प्रचलित बरादरियों के पोच पचों—चौधरी-चौकड़ात—के पाखण्ड-प्रमादों का प्रदर्शन किया है। ये लोग भयङ्कर पापों को तो पाप नहीं समझते, परन्तु यदि किसी ने किसी छूत-अछूत के हाथ की कोई चीज़ छू या खाली तो उस पर बहिष्कार का बम छोड़ देते हैं। शहरों में प्रपंची पंचों का प्रलाप और प्रभाव कम होता है, परन्तु ग्रामों और क़सबों में तो ये अपने को 'बरादरी-साम्राज्य' का एक मात्र अधिपति समझ कर अकारण ही चाहे जिसको 'छेक' देते हैं। इन्हीं भावों की ओर इन छन्दों में संकेत किया गया है। सम्पादक]

१

पञ्चों में बुझक्कड़ों की भाँति कौन बूझता है,
छोटे-मोटे खोटे अपराध न जताते हैं।
भ्रूण-हत्या मद्य-पान जूआ झूठ चोरी-जारी,
ऐसी करतूति पै न प्यारों को सताते हैं।
जैसा महा पापी है छुतैली छाक छूने वाला,
पातकी खलों में वैसा पतित न पाते हैं।
उक्त महा पाप जो करेगा उसे छेक देंगे,
भट्ट गाँठ बाँधो बात बूझ की बताते हैं।

२

बूढ़ों के बड़प्पन पै बोजुगी गिराने वाली,
    ज्योति जाति-जीत की जबानों में जगाते हैं।
ऊँचा न चढ़ाते हैं चबोर-चोर लम्पटों को,
    ठीकरी भी ठल्लू ठगियों को न ठगाते हैं।
खोल-खोल पाल खलोपाड़ खोटे मद कों की,
    भीरुता भसको भूल भुग्गों को भगाते हैं।
भट्ट पक्षपातियों के पक्षपात-पञ्जर में,
    लुक्कड़जी लूकटी लताड़ को लगाते हैं।

३

गाँजा चण्ड चरस मदक फकाफक्क फूँकें,
    ध्यान-धारणा को धुआँधार कर लेते हैं।
ताड़ी, भंग, वारुणी चढ़ाते अफ़यून खाते,
    मादकता ज्ञान की गढ़ी में भर लेते हैं।
ज्वारी, जार चोरों के सँगाती जेल जा चुके हैं,
    तो भी पुरुखों के पुण्य-पाप हर लेते हैं।
पञ्च हैं लुचक्कड़ अछूतों छाक देखते ही,
    छूते नहीं कानों पर हाथ धर लेते हैं।

४

लेके मनमाने खनाखन्न बूढ़े बरना से,
    छोटी-सी छुकड़िया का कन्यादान दीजिये।
कोरे कुलवीरो, छुपाछुप्प व्यभिचार करो;
    किन्तु भूल कर भी न दूजा ब्याह कीजिये।
बाहर तो ढोंग पुण्य-प्रेम का दिखाते रहो,
    भीतर से पाप का प्रचुर रस पीजिये।
भट्ट पै अछूती छाक छूकर बरादरी के
    गोल में सुभकड़ों से लानत न लीजिये।

५

रंकों में करेंगे नहीं कौओं की-सी काउँ-काउँ,
धनिकों के घर जाय कोयल-से कूकेंगे।
पातक मिटाने को जो पातकी करेगा भोज,
पुण्य-रूप उसको बताने में न चूकेंगे।
पाप छल-छन्द से कमाई कर पाया धन,
धनिक बना है, किस भाँति उसे रूकेंगे।
छूता है अछूत की जो छाक उसे छोड़-छेक,
थूथरी पै थुक्कड़ थपेड़े मार थूकेंगे।

६

चौथा चौकड़ात को निकाली मींग चौधरी की,
गालियों की रेती से नकीले रोंद रेते हैं।
पूरे पापियों को जाति-पाँति में घुसेड़ते हैं,
कौन जानता है चुपाचुप्प घूँस लेते हैं।
खाते हैं सबों को न खिलाते हैं किसी को कभी,
जूतियाँ चखाने से हमारे भाग्य चेते हैं।
छूकर अछूतों छाक पूजता है जो न हमें,
भट्ट उसे छेकने का शंख फूँक देते हैं।

७

बेटियों को बेचें करें वार-वधुओं पै प्यार,
तो भी न बरादरी से न्यारा किया जायगा।
वारुणी उड़ाता माँस खाता है गिराता गर्भ,
ऐसे कुलवीर से न दण्ड लिया जायगा।
चोरी करता है झूँठ बोले भोगता है जेल,
साथ उसके भी पञ्च-प्याला पिया जायगा।
भट्ट भूल से भी जो अछूतों की छुएगा छाक,
हाँ, न हुक्कड़ों में उसे हुक्का दिया जायगा।

८

चार बार गरमी फ़रंग फूटी पाँच बार,
फूल गईं गाँठें गठिया से जंग जारी है ;
नाम के सठोरा हैं, पठोरों में मिलाते मेल,
सात शादी की हैं, आठवीं की भी तयारी है।
बेधड़क बैठे करते हैं मनमाने पाप,
बान पै अछूती छाक छूने की बिसारी है।
पुच्छुओं में पाते हैं बड़ाई भर-पेट भट्ट,
पञ्च हैं पुछक्कड़ हमारी पूँछ भारी है।

९

साबोनी बताशे बूरा मियाँजी बनाते हैं तो,
बोलो उन्हें कौन-से अछोपा नहीं खाते हैं।
पानी मिला दूध घोसियों का गटागट्ट पीते,
चब्बूजी चबैना भड़भूज्जों का चबाते हैं।
चाशनी चमार करें थापते हैं भेलियों को,
ऐसा गुण गप्पू गपागप्प कर जाते हैं।
जच्चों को जनाती भंगिनें हैं भट्ट तो भी नित्य,
छुक्कड़जी पेड़े कलाकन्द ही उड़ाते हैं।

१०

भक्कू ब्रह्मभोज के न छोड़ें ठिक ठाकुरों के,
लालाओं के जीमते परोसे बाँध लाते हैं।
दरजी तमोली, राज, मुरजी, कहार, काछी,
बारी, नापितों के नोते ओट से उड़ाते हैं।
आस-पास पाँत की जो थाँग लग जाती है तो,
चार-चार कोसलों बुलाए बिन जाते हैं।
भट्ट भूल से भी छाक छूना है अछूत की जो,
टुक्कड़ हैं टूक पर उसके न खाते हैं।

११

मादकी चबोर चोर लालची लबार लुक्के,
ज्वारी जार जालिया जतीलों को बुलाते हैं।
न्याय को विसार दम्भ-द्वेष का प्रचार करें,
जीवनी की चादर के धब्बे न धुलाते हैं।
भट्ट माँसखौआ मालमारा झगड़ालू झूँठे,
झुण्ड को न झंझट-झमेले में झुलाते हैं।
भूल से भी छूता है अछूत की जो छाक उसे,
छेकते हैं छीतरी छिकन्त की ढुलाते हैं।

१२

तानी हैं गनेसजी के मूसटा की भाँति मूँछें,
छूँकत हों शंकर के बैल ते डरत हों।
भट्ट मारे खौप के निकर रह्यो दम मेरो,
पंचन के लोतरे लिलारी पै धरत हों।
जान के गरीबरा बकसदेउ जान मेरी,
हाथ जोर बार-बार बीनती करत हों।
इन्ने छेको, बिन्ने छेको, चौरे भइया किन्नें छेको,
जिन्ने छेको मोय ताके पायन परत हों।

१३

एक जगदीश की उपासना करेंगे सदा,
सत्य के विरोधियों की गैल न गहेंगे हम।
सेवक बनेंगे धर्म-धारी गुरु-ज्ञानियों के,
मानी मूढ़-मण्डल के साथी न रहेंगे हम।
सम्पदा मिली तो भले भोगों से जियेंगे सुखी,
आपदा अड़ी तो सारे संकट सहेंगे हम।
भट्ट पै प्रपंची पक्षपाती पंच पामरों के,
सामने न दीनता के वचन कहेंगे हम।

हिजड़ों की मजलिस

१

नाम नपुंसक है शंकर का ब्रह्म सनातन मंगलमूल,
मन को भी हिजड़ा कहते हैं इस में नहीं नेक भी भूल।
ब्रह्म और मन का होता है जब तक नहीं निरंतर योग,
तब तक दूर न होगा हमसे जीवन-जन्म-मरण का रोग।

२

जिसके मारे सीता त्यागी रामचन्द्र ने प्रेम विसार,
जिसके आगे गंगा-सुत ने रण में खोल धरे हथियार।
जिसको पाकर हम लोगों के बुचरी-पीर बने सरदार,
उस अनुभूत नपुंसकपन को करिये बारम्बार जुहार।

३

बाल ब्रह्मचारी हम सब हैं सहते नहीं मार की मार,
नर के कण्ठ नहीं लगते हैं करते नहीं नारि पर प्यार।
दाढ़ी-मूँछ नहीं रखते हैं उर पर उकसे नहीं उरोज,
शुक्र और रज रहित हमारे अंग अछूते उगलें ओज।

४

पहले हम करते रहते थे कुल-बनिता के-से शृंगार,
अबतो अँगरेजी अंकुश ने सबके लहँगे लिये उतार।
आज अँगूठा दिखलाने को कोई करता नहीं पसन्द,
उद्यम डूबे हाय हमारे सारे द्वार हो गये बन्द।

५

बस ब्याहों में मिल जाते हैं पैसे कभी-कभी दो-चार,
भूखे संकट काट रहे हैं कोई देता नहीं उधार।
ढोलक और मजीरे फूटे इनसे क्या निकलेगा काम,
काल कुचाली मेंट रहा है हाय नपुंसकता का नाम।

६

खोटे दिन बीते सो बीते अबतो ऐसा करो उपाय,
जिसके द्वारा हम दीनों का दारुण दुःख दूर हो जाय।
उन्नति की सीढ़ी पर बोलो—पहले पाँव धरेगा कौन ?
इतना कह कर पंड अभागा आँसू थाम हो गया मौन।

७

सुनते ही प्रस्ताव सभा में मचा भयानक हाहाकार,
ज्यों-त्यों धीरज धार जर्ताले हिजड़े करने लगे विचार।
उन्नति की 'सुन्नति' करने को टाँग अड़ाय टिकाई टेक,
सब की सम्मति का प्रतियोगी कहने लगा सभासद एक।

८

'उन्नति-उन्नति' हाँक रहे हो हमको उन्नति से क्या काम,
क्या हिजड़े भी हो सकते हैं उन्नतिशीलों में सरनाम।
'कोऊ नृप होय हमें का हानी' इस पर कर बैठो विश्वास,
'चेरी छाँड़ि कि होउब रानी' कह गये बाबा तुलसीदास।

९

जो अवनति ने दे पटका है क्या उठ सकता है वह देश,
तो भी तुमको दे सकता हूँ पेट पालने का उपदेश।
अब जयचन्द महाराजा को देकर धन्यवाद का दान,
नक-फूल्ली छूकर छिंगुनी से सुनलो खोल-खोल कर कान।

१०

धर्म सुधारो तो घर बैठे आटा पीसो कातो सूत,
धन चाहो तो विधवादल के बनजाओ विटनैशिक दूत।
जो तुम चाहो हम लोगों को आदर-मान मिले सब ठौर,
तो अब दाई के हथकण्डे सीखो उद्यम करो न और।

११

जो बावरची बन जावेंगे रहकर भटियारों के साथ,
उनके रोटी-दाल भात से रीते नहीं रहेंगे हाथ।
दरजी बनो सिलाई लेना बन्द बीबियों से चौचन्द,
नाप-नाप बेसीन सिपिस्ताँ सीना सबके सीनेबन्द।

१२

कच्चे-बच्चों को पालो तो क्या कुछ लग जावेगा पाप,
तुमको मीठा बदला देंगे उन मासूमों के मा-बाप।
देशी-परदेशी लोगों से उनका हो जावेगा मेल,
जो नाटक में परियों के-से खुल-खुल कर खेलेंगे खेल।

१३

सुनकर बोल उठे सब श्रोता बस बकवाद न करिये आप,
लो लानत लेकर जा बैठो अपने चिथड़े पर चुपचाप।
जिसकी अंडबंड बातों से फैल गया सङ्गत में शोक,
बैठ गया पाकर बदनामी वह बूढ़ा वक्ता डरपोक।

१४

थू-थू कर पहले लीडर को रोने वालों को समझाय,
तड़क तीसरा हिजड़ा बोला शूर शिखण्डी के गुण गाय।
हिम्मत बाँधो उन्नति होगी हरगिज़ होना नहीं हताश,
जो मेरा मत मानोगे तो दूर रहेगा सत्यानाश।

१५

बूढ़े वेदों की बातों का कुछ-कुछ कर लेवें अभ्यास,
फिर स्वामीजी बन जावेंगे लेकर काशी से संन्यास।
भगवाँ काछ कमण्डलु काला मुण्डित मुण्ड गठीला दंड,
ठौर-ठौर आदर पावेगा ब्रह्म-रूपधारी पाखण्ड।

१६

बच्चे जाकर कालेजों में सीखें अँगरेजी भरपूर,
और ज़बानों में भी करलें काफ़ी इस्तेदाद ज़ुरूर।
हिजड़ी हिजड़ों से भी आगे लौट पड़ें ले-लेकर पास,
फिर पाकर पद ऊँचे-ऊँचे करें यथारुचि भोग-विलास।

१७

आरज-दल में जाय जवानों होकर वैधिक विधि से पाक,
रखलो नाम कुलीनों के-से पहनो मरदानी पोशाक।
नकली दाढ़ी-मूँछ लगालो छाता-बेंत बग़ल में मार,
उद्यम के कीड़े बन जाओ रहना कभी नहीं बेकार।

१८

आढ़त ले-लेकर लोगों से बेचो और खरीदो माल,
नाम करो नामी नगरों में होकर हरजाई दल्लाल।
तीरथ पण्डों की प्रभुता के मार गपोड़े चारों ओर,
दान-दक्षिणा हरि-भक्तों से लेते रहो बटोर-बटोर।

१६

यार वकीलों के बन जाओ खातिर खूब करेंगे लोग,
आप चहारुम लेकर उनसे भेजा करो कड़े अभियोग।
दिया करो दिलबोर गवाही खा-खाकर सौ-सौ सौगन्द,
मुफ्त किसी के काम न आना मुफ़लिस हो या दौलतमन्द।

२०

करो कमाई उन कामों से जिनमें घर के लगें न दाम,
खाओ-खरचो मौज उड़ाओ देकर अपनों को आराम।
पूरी पूँजी हो जावे तो कर लेना दिल को मसदूद,
सौ पर तीन रुपे दो आने खाना कंगालों से सूद।

२१

आमद आधी एक तिहाई या उसका चौथाई खण्ड,
देना इस जातीय सभा को बढ़ता रहे नपुंसक-फ़ण्ड।
सबसे पहले करना अपने तालिबे इल्मों की इमदाद,
ताकि न होवें हम लोगों की होनहार हस्ती बरबाद।

२२

गरमी-नरमी नहीं बढ़ाना ज्यों के त्यों रहना निरदम्भ,
इस पञ्चायत के चन्दे से करना बड़े-बड़े आरम्भ।
भाँति-भाँति की कारीगरियाँ खोज-खोज कर लेना सीख,
छोड़ो पहली परिपाटी को कल से नहीं माँगना भीख।

२३

छोड़ काहिली को उठ बैठो पकड़ो मुस्तैदी के कान,
यों न किया तो हो जावेगा हिजड़ों का मलिया मैदान।
बैठ गया अगुआ गुदड़ी पै देकर सबको नेक सलाह,
गूँज उठी वह महफ़िल सारी कह कर 'वाह-वाह जी, वाह'।

२४

ख़ूब-ख़ूब क्या ख़ूब सबों की सुनता रहा मसोसे मार,
आखिर को आँखें मटकाता मोर मुख़न्नस उठा पुकार।
मुशकिल को आसां समझे हो देने लगे मुबारकबाद,
हमको ख़ाक सुधार सकेगा इसका बेहूदा बकबाद।

२५

जोश दिलाना ठीक नहीं है काँटों को बतलाकर फूल,
जिन बातों पर फूल रहे हो उनमें एक नहीं मा.कूल।
अबतो हँसते हो पर आगे चलकर निकल पड़ेगी नींद,
नहीं मानते तो लो सुनलो सारे मसलों की तरदीद।

२६

नक़ली बाबाजी बन जावें लाकर वेदों पर ईमान,
हिन्दू ऐसा कर सकते हैं नहीं मुसलमां को आसान।
घर-घर अलख जगाते डोलें भीख माँग कर पाले पेट,
इस लीला से इन बुड्ढों की सुख से कभी न होगी भेट।

२७

हिजड़े तुलबा के पढ़ने को कोई कहीं नहीं कालेज,
है तो उसमें दाखिल करदें बच्चों को वाइज़ का हेज।
आलिम होकर ऐंड़ रहे हैं अबतो जाहिल और गमार,
हम लोगों को नहीं पढ़ाती आदिल इंगलिशिया सरकार।

२८

पाक वही होगा समझा है जिसने अपने को नापाक,
ऐसा है तो पड़जावेगी हिजड़ों की हुरमत पर ख़ाक।
दुर-दुर छी-छी जाति-पाँति का जिनको लगा हुआ है रोग,
हमको नहीं मिला सकते हैं अपने में वे आरज लोग।

२९

आढ़त की हेरा-फेरी में बात-बात पर होगी झौड़,
काम कड़ा है दल्लाली का हम से कब होगी घुड़दौड़।
पण्डे और वकीलों से भी अपना नहीं मिलेगा मेल,
क्या कुछ माल जमा कर लेना समझा है लड़कों का खेल।

३६

बीत गया विद्या-बल जिनका रहा न अवनी पर अधिकार,
बन गये दास दरिद्र।सुख व सम्मान पहुँची सागर-पार।
पड़ गई गाज कला-कौशल पे खो बैठे सारे व्यापार,
उन मुरदों पर नहीं चलाना तुम जिन्दा हो कर हथियार।

३७

बच्ची बच्चों के बच्चों से जो कुछ रखते हैं उम्मेद।
जो बकबादों के बरछों से करते है बादल में छेद।
जिनकी जड़ को काट रहा है आपस का कौटिल्य-कुठार,
उन मुरदों पर नहीं चलाना तुम जिन्दा होकर हथियार।

३८

जो खोकर अपनी आजादी औरों के बन गये गुलाम,
जिनके पैसों से पाले हैं पापी पाखंडी आराम।
जो कुलघोर न कर सकते हैं दीन-दरिद्रों का उद्धार,
उन मुरदों पर नहीं चलाना तुम जिन्दा होकर हथियार।

३९

रेद-रेद कर रौंद रहा है जिनको सामाजिक मतभेद,
जिनकी मन्द मनोमुखताने भिन्न-भिन्न गढ़डाले वेद।
महँगी काल महामारी मे होता है जिनका संहार,
उन मुरदों पर नहीं चलाना तुम जिन्दा होकर हथियार।

४०

जो खुदगरजी के मखजन हैं करते हैं सबको पामाल,
जिनकी ठगई कर डालेगी सारी दुनिया को कंगाल।
जिनके द्वारा मजलूमों का होता है दिन-रात शिकार,
दिखलाना उन बेदरदों को अपने करतब की तलवार।

४१

जिस मण्डल में गरज रहा हो बल-वैभव का घोर घमंड,
जो मानव-दल मान रहा हो अपने को उन्नत उद्दण्ड।
जो कुल प्रभुता का अभिमानी करता हो निश्शंक अनीति,
उन सबको सिखलाना रणमें न्याय-धर्म-पालन की रीति।

३०

खंडन-खड्ग न कुंठित होगा छूटेगी न अकड़ की मूँठ,
क्या कोई मेरे कहने को साबित कर सकता है झूँठ।
फूट गया बम का गोला-सा मीर महोदय का मज़मून,
मातम टूट पड़ा मजलिस पै कर डाला उलफ़त का .ख़ून।

३१

सन्नाटा छा गया सभा में सब के सब हो गए उदास,
रही न साहस की सामग्री कायर कापुरुषों के पास।
रो-रो कर रञ्जूर पुकारे बेशक हमसे हुआ कुसूर,
अब जैसा करना हो वैसा फ़रमाते क्यों नहीं हु.ज़ूर।

३२

मान मेम्बरों की मिन्नत को फिर बोला मजलिस का मीर,
थोड़े-से फ़िक़रे कहता हूँ बहरे तरक़्क़ी पुर-तासीर।
भारतमाता की जय बोलो पकड़ो पवन-पुत्र की पूँछ,
आलस-उल्लू के पर काटो मूँड़ो डर-केहरि की मूँछ।

३३

पाँच धड़ी सामर बिकती है पाँच सेर का बिके पिसान,
पैदावार बढ़े तो रोवें घट जावे तो हँसें किसान।
ऐसे मंज़र इनक़िलाब का करते हैं काफ़ी इज़हार,
जीत रहेगी नामरदों की होगी मरदों की अब हार।

३४

करती है जो जाति समर में अगुआ वीरों का बलिदान,
उन्नति के कर से पाती है केवल वही मान का पान।
जिसकी करनी कर जाती है मौक़ा पड़ने पर भी चूक,
उसके काले मुख-मण्डल पै पड़ता है अवनति का थूक।

३५

लो अब औसर आ पहुँचा है हिजड़ो, हो जाओ तैयार,
कोहे तरक़्क़ी पर चढ़ जाओ क्या कर सकते हैं ऐयार।
ऊँचों के आगे बढ़ जाना नीचों पर न चलाना चोट,
खुल्लमखुल्ला दर्प दिखाना छिपना नहीं किसी की ओट।

४२

कलही से घमसान मचादो कुल की बान बिसार-बिसार,
मैं तुम सबके साथ रहूँगा बन कर वीर सिपहसालार।
हरफ़नमौला मीर मियाँ के सुनकर जंगो-जदल के बोल,
हिजड़ों के डरपोक दिलों में बजे हेकड़ी के रमझोल।

४३

हेकड़ बोल उठे इटलाते तोड़ नज़ाकत की ज़ंजीर,
तान अबरूओं के कमठां को मारेंगें मिजगाँ के तीर।
चाबुक चलें चोटियों के तो ताज़ी-सी तड़पेगी चाह,
ठोकर खाकर छैल-छबीले भूल जायँगे घर की राह।

४४

चिमटे लाल कमरबन्दों में लुके-लुके लटकेंगे मीर,
दिखला देंगे यों रखते हैं एक म्यान में दो शमशीर।
लम्बी चिलमों के बिगुलों से गूँज उठेंगे लाखों मील,
सूर समझ कर चौंक पड़ेंगे अर्शेबरीं पर अशराफ़ील।

४५

इस खँडहर से हम लोगों का निकलेगा अब जल्द जुलूस,
कुल बातें सुन कर थाने में पहुँचा सरकारी जासूस।
थाँग बाग़ियों की पाते ही चला लपक कर थानेदार,
उसके पीछे-पीछे दौड़ी काले ललमुण्डों की लार।

४६

आते देख पुलिसमैनों को उठ भागा हिजड़ों का झुण्ड,
गिरते-पड़ते ठोकर खाते टूटे घुटने फूटे मुण्ड।
पीछा कर कानिस्टबिलों ने बुज़दिल पकड़ लिये छह-सात,
उनके साथ सभापति को भी खाने पड़े लीतरे-लात।

४७

तोड़ दिये दिल बेताबी ने सबका निकल पड़ा पेशाब,
रो-रो हा-हा खाते-खाते बिगड़ गई मुखड़े की आब।
बोला चीफ़ कहो अब ऐसा नहीं करेंगे पकड़ो कान,
दस-दस दे-दे कर उठ जाओ वरना कर दूँगा चालान।

४८

औरों के आँसू बहते थे हाथ जोड़ कर बोला मीर,
हम लोगों से कभी न होगी आयन्दा ऐसी तकसीर।
छोड़ दीजिये बजुज़ दुआ के क्या दे सकते हैं कंगाल,
आज इंडिया के हिजड़ो ने समझा लण्डन का इक़बाल।

४९

'बायकाट' का नाम न लेना छोड़ स्वदेशी वस्तु-प्रचार,
दुष्ट राज-विद्रोही दल के पढ़ना नहीं बुरे अखबार।
किसी तरह की किसी सभा में समझे कभी न रखना पैर,
इतना कहकर थानेश्वर ने मुजरिम छोड़ दिये बिल.खैर।

५०

जान बचाकर घर को आये हफ्ते-भर में आया होश,
हाय तनज्जुल के भट्टे में जला तरक्की तेरा जोश।
हिन्दी-उरदू की खिचड़ी का रखलो हिजड़ी भाषा नाम,
पाठक, हिजड़ों की मजलिस का हिल्लड़-हुल्लड़ हुआ तमाम।

साधु-जीवन

जिस दिन अपनावेंगे आप।

वेद पढ़ावेंगे हम सबको गुरुकुल में मा-बाप,
ब्रह्मचर्य-व्रत से सुधरेंगे छोड़ कुकर्म-कलाप।
पौरुष-पावक में पजरेंगे दुर्मति के अभिशाप,
वैर विसार प्रेम पकड़ेंगे करके मेल-मिलाप।
बल-वारिधि में बूड़ मरेंगे पुण्य-विघातक पाप,
व्याकुल प्रतिभा को न करेंगे आविधिक उपताप।
वैदिक मण्डल में न भरेंगे दुष्ट विदाहक दाप,
मंगलमूल भजन गावेंगे देकर शंकर छाप।
जिस दिन अपनावेंगे आप।

कब अपनावेंगे ?

मार साधु-जीवन है भाई,
इस असार संसार में ।

वैर विसारो प्रेम पसारो, ब्रह्मचर्य विद्या-बल धारो,
मानो मिलते हैं फल चारो, केवल कर्म-सुधार में ।
वेद बखान रहे हैं जैसा, मानव-धर्म मानलो वैसा,
तर्क-सिद्ध निश्चय हो ऐसा, सामाजिक व्यवहार में ।
देव-देवियों के गुण गाओ, मतवालों के पास न जाओ,
दानवीर हो नाम कमाओ, प्यारे पर-उपकार में ।
ज्ञान-शक्ति की ज्योति जगादो, भेद-भाव का भूत भगादो,
योगी होकर ध्यान लगादो, शंकर ब्रह्म-विचार में ।

इस असार संसार में ।

मेरा भी होवे दुख दूर

जो प्रभु पूरा प्यार करे तो,
मेरा भी होवे दुख दूर ।

मनमें जैसा जान रहा हूँ, वैसा ठीक बखान रहा हूं,
दाब-धौंत से मान रहा हूं, हाय निबौरी को अंगूर ।
देख दशा मैं दीन हुआ हूँ, श्री-बल-विद्या-हीन हुआ हूँ,
दुष्ट विदेशाधीन हुआ हूँ, हा, धोखा खाया भरपूर ।
दीन-अधीर होरहा हूँ, मैं संकट-भार ढोरहा हूं मैं,
जीवन, प्राण खोरहा हूँ, मैं हो चोटों से चकनाचूर ।
क्या श्री सुख-सम्पन्न करेगा, चिन्ता मेंट प्रसन्न करेगा,
किंवा मरणासन्न करेगा, कर बाबा जो हो मंजूर ।
अबतो भूल भगादे मेरी, तरणी पार लगादे मेरी,
शंकर ज्योति जगादे मेरी, काट क्रूरता को अक्रूर ।

मेरा भी होवे दुख दूर ।

चेतावनी

क्या भूल रहा टुक चेत,
काल की चाल देख भाई।

बिन्दु-स्वरूप गर्भ में आया, शनै-शनै पुतला बन पाया,
मोदमढ़ी जननी ने जाया, समझा सुखदाई।१
बालक बना खिलाड़ी खेला, देखा शिशु-मण्डल का मेला,
झंझट का मिल गया झमेला, बीती लरिकाई।२
रहे न लक्षण बालकपन के, उमगे रंग-ढंग यौवन के,
साधन बदल गए सब तन के, महिला मन भाई।३
वासर तरुणाई के बीते, किये यथारुचि मनके चीते,
हा, उपहार भोग-रस-रीते, राँड जरा लाई।४
साथ नहीं रसराज रसीले, सारे अंग होगए ढीले,
कित गई ठसक बोल गरबीले, धौरी छबि छाई।५
सारे केश होगए भूरे, मुख में दाँत न दरसें पूरे,
डग-मग डोलें डील लँडूरे, लकुटी परचाई।६
धार बुढ़ापे का वर बाना, बन्द हुआ अब आना-जाना,
स्वर्गवास पौरी को माना, तजे न चरपाई।७
अबतो छोड़ अनारी घर को भक्तिभाव से भज शंकर को,
वल्लभ मत खोवे अवसर को, मौत निकट आई।८
काल की चाल देख भाई।

योग-साधना

यों ध्रुव ध्यान लगाओ,
रे, साधो, यों ध्रुव ध्यान लगाओ।

आसन पर बैठो अंगों को इत-उत को न डुलाओ,
थोड़ा सोना, बहुत न बोलो अधिक न भोजन पाओ।
दूर रहो खोटे विषयों से वैदिक व्रत अपनाओ,
पान करो पीयूष प्रेम का सरल सुशील कहाओ।

राग विसार बनो वैरागी विमल विवेक बढ़ाओ,
योग-शत्रु कामादि भटों की अनुचित मार न खाओ।
सामाधिक विद्या के बल से भय, भ्रम-मूल मिटाओ,
धार धारणा में शंकर को परम सिद्ध बन जाओ।
रे साधो, यों ध्रुव ध्यान लगाओ।

भजन-माला

भज भगवान के हैं,
मंगलमूल नाम ये सारे।

ओमद्वैत, अनादि, अजन्मा, ईश, असीम, असंग,
एक, अखण्ड, अर्यमा, अत्ता, अखिलाधार, अनंग।
सत्य सच्चिदानन्द, स्वयम्भू, सद्गुरु ज्ञान गणेश,
सिद्धोपास्य, सनातन, स्वामी, मायिक, मुक्त, महेश।
विश्वविलासी, विश्वविधाता, धाता, पुरुष, पवित्र,
माता, पिता, पितामह, त्राता, बन्धु, सहायक, मित्र।
विश्वनाथ, विश्वम्भर, ब्रह्मा, विष्णु, विराट्, विशुद्ध,
वरुण, विश्वकर्मा, विज्ञानी, विश्व, बृहस्पति, बुद्ध।
शेष, सुपर्ण, शुक्र, श्री, स्रष्टा, सविता, शिव, सर्वज्ञ,
पूषा, प्राण, पुरोहित, होता, इन्द्र, देव, यम, यज्ञ।
अग्नि, वायु, आकाश, अंगिरा, पृथिवी, जल, आदित्य,
न्यायनिधान, नीतिनिर्माता, निर्मल, निर्गुण, नित्य।
ब्रह्म, वेदवक्ता, अविनाशी, दिव्य, अनामय, अन्न,
धर्मराज, मनु, विद्याधारी, सद्गुण-गण-सम्पन्न।
सर्वशक्तिशाली, सुखदाता, संसृति-सागर-सेतु,
काल, रुद्र, कालानल, कर्त्ता, राहु, चन्द्र, बुध, केतु।
गरुत्मान, नारायण, लक्ष्मी, कवि, कूटस्थ, कुवेर,
महादेव, देवी, सरस्वती, तेज, उरुक्रम, फेर।
भक्तो, नाम सुने शंकर के अटल एकसौ आठ,
अर्थ विचारो इस माला के कर से घिसो न काठ।
मंगलमूल नाम ये सारे।

आनन्दोद्गार

सिज में नट राज ला चुका है,
उस नाटक में नचा चुका है।
जिस के अनुसार खेल खेले,
वह शैशव दूर जा चुका है।
उस यौवन का न खोज पाता,
अपना रस जो चखा चुका है।
तन-पंजर हो गया पुराना,
मन मौज नवीन पा चुका है।
अब शीकर सिन्धु में मिलेगा,
शुभ काल समीप आचुका है।
शिव शंकर का मिलाप होगा,
दिन अन्तर के बिता चुका है।

गुरु-गौरव

श्री गुरुदेव दयालु हमारे,
बड़भागी हम सेवक सारे।

अटल ब्रह्मचारी बुध नीके, जीवनमुक्त सुधाम सुधी के,
साँचे शुभचिन्तक सबही के, विरति-वाटिका के रखवारे।
धर्मवीर सागर साहस के, प्रेमी सामाजिक सुख-रस के,
भव्य भानु विज्ञान-दिवस के, मोह महातम टारन हारे।
दीपक धर्माचार-सदन के, दावानल दुर्गुण-कानन के,
सिंह प्रमादो पन्थ-मृगन के, भारत-जननी के चखतारे।
ध्रुव सम्राट समाधि-धरा के, रक्षक रानी ऋतम्भरा के,
परमादर्श परा-अपरा के, जगदीश्वर शंकर के प्यारे।

बड़भागी हम सेवक सारे।

कलियुगी तीर्थ

कलियुग में तीरथ तीन हैं,
गौ, गङ्गा, भगवतगीता ।

गाय तारती है वैतरणी, स्वर्ग-नसेनी गङ्गा वरणी,
गीता मोह महातम हरणी, समझो बात महीन है—
पकड़ो शुभ गैल पुनीता ।

सुरभी का पय पान करेंगे, गंगा में असनान करेंगे,
गीता के पद गान करेंगे, इस धुन में लौलीन हैं—
मन मान योग-बल जीता ।

गैया बेड़ा पार लगादे, गंगा पातक-पुञ्ज भगादे,
गीता ब्रह्म-विवेक जगादे, हम सुख-साधनहीन हैं—
संकट में जीवन बीता ।

सूना-गृह में कटतीं गैया, खेत सींचती गङ्गा मैया,
गीता दुर्गति देख कन्हैया, हिन्दू-दल बलहीन है—
करते खल मन का चीता,
गौ, गंगा. भगवतगीता ।

पछतावा

काज कहा नर तन धर सारा ।

हा, हित कर न सका जनता का, साहस कर धन साधन धारा,
तज सत्कार जनक-जननी का, तक नारी तन तनक न हारा ।
सहित सनेह न जाति सुधारी, नाक जान कर नरक निहारा,
सुधि न रही हर हितकारी की, संसृति रस का रसिक करारा ।

काज कहा नर तन धर सारा ।+

+इस सारे गीत में क,ज,ह,न,र,त,ध और स इन आठ अक्षरों का ही प्रयोग हुआ है । सम्पादक

सपने का सुख

सपने में साँचो सुख पायो

प्रथम अलौकिक विपिन अचानक प्रगट भयो मन भायो,
तहाँ एक चरवाह्यो आयो रेवड़ संग चरावन लायो।
हेरत ही हरि-रूप भयो मैं गरज कोप कर धायो,
मार-मार सारे धर खाये एक न बचो अजा को जायो।
फेर मार खायो रखवारो मैं भरपेट अघायो,
मार छछेरी खेलन लाग्यो सारो कानन तोर गिरायो।
कौतुक-सौकर जाग परे पर मायिक दृश्य नसायो,
शंकर शेष रह्यो कछु नाहीं मो ही में सब खेल समायो।

राम-ज्ञान

शुभ सत्य तथ्य को मान लो,
सब ठौर राम रमता है।

एक सच्चिदानन्द त्रिभंगी, रूपहीन भासे बहुरंगी,
चेतनता-जड़ता का संगी, अपना कर पहचान लो—
ध्रुव धर्म ध्यान जमता है।

देता जन्म सशक्ति जिलाता, भाँति-भाँति के खेल खिलाता,
फिर मिट्टी में मेंट मिलाता, जगत जांच कर जान लो—
कब काल-चक्र थमता है।

ब्रह्मा, विष्णु, महेश कहाता, स्रष्टा विश्व-विलास बहाता,
गूढ़ ज्ञान की गैल गहाता, निर्गुण-सगुण बखान लो—
यदि न्याय-क्षेत्र-क्षमता है।

पूजो अज को त्याग तितिक्षा, लो हरि से नैसर्गिक शिक्षा,
माँगो शंकर से सुख-भिक्षा, परहित करना ठान लो,
यह ममता की समता है—
सब ठौर राम रमता है।

माया का खिलौना

राजगीत

खिलोना मान माया का जिसे झूठा बताते हो,
उसी संसार में बैठे लबड़धोंधों मचाते हो।
अविद्या के अखाड़े में खिला कर खेल विद्या का,
अजी अद्वैत की लीला कहाँ किसको दिखाते हो।
न पहले था न अब कुछ है न होगा और कुछ आगे,
भला फिर कौन भूला है जिसे भ्रम से छुड़ाते हो।
असीमानन्द का साँचा भरा विज्ञान से पूरा,
उसे अज्ञान का पुतला बना कर क्यों नचाते हो।
न जानो दासपन को भी बनो स्वामी अजानों के,
इसी करतूति पर फूले न जामे में समाते हो।
भजो सुखधाम शंकर को सुनो उपदेश वेदों के,
करो उपकार औरों का वृथा क्यों रोट खाते हो।

निकम्मे नर

इनको अबहु न आवति लाज।

घेर लिये आलस्य-असुर ने दीन कुदेव-समाज,
धन-चिंता चुड़ैल चढ़ बैठी, कढ़ी कोढ़ में खाज।
दारुण दम्भ विशाल दुर्ग पर, पड़ गई दुर्गति-गाज,
उद्यमहीन महा दुख भोगें, दूर भये सुख-साज।
डूबो अपयश के प्रवाह में, मायिक जाल-जहाज,
केवल कूर कपट के कारण, बिगड़ गये सब काज।
व्याकुल घर-घर माँगत डोलें, मुठी-मुठी-भर नाज,
चुप रह तेरी कौन सुनेगो, रे शंकर कविराज।

इनको अबहु न आवति लाज।

भूखा भारत

लुट गया न पूँजी पास है,
भारत भूखा मरता है ।

जो था नव खण्डों में नामी, द्वीप रहे जिसके अनुगामी,
सो सारे देशों का स्वामी, अब औरों का दास है,
देखो, कैसा डरता है, भारत भूखा मरता है ।

बल बिन कौन रखावे घर को, विद्या बँट गई इधर-उधर को,
सम्पति फाँद गई सागर को, कोरा रंक निरास है,
हा, पेट नहीं भरता है, भारत भूखा मरता है ।

बीती बातों को रोता है, बार-बार व्याकुल होता है,
शोक विसार कहाँ सोता है, घोर नरक में वास है,
दुरदिन पूरे करता है, भारत भूखा मरता है ।

यह बालक जाने था जिसको, सो पागल कहता है इसको,
शंकर समझावे किस-किस को, क्या अद्भुत उपहास है,
बिन कहे नहीं सरता है, भारत भूखा मरता है ।

'कंगाल' की कुगति

कंगाली में कंगाल के,
सब ढंग बिगड़ जाते हैं ।

जिसके दिन बोदे आते हैं, सुखप्रद भोग भाग जाते हैं,
संशय नोच-नोच खाते हैं, उस कुलीन कुलपाल के—
शुभ लक्षण झड़ जाते हैं ।

घर के घोर कष्ट सहते हैं, भूखे रोष-भरे रहते हैं,
कहनी-अनकहनी कहते हैं, मुखियाजी बिन माल के—
सकुचाय सिकुड़ जाते हैं ।

प्यारे प्यार नहीं करते हैं, मित्र माँगने से डरते हैं,
नातेदार नाम धरते हैं, कब तब रोटी-दाल के—
जब लाले पड़ जाते हैं ।

दूर न दीन दशा होती है, लघुता लोक-लाज खोती है,
प्रतिभा सुधि बिहाय रोती है, शंकर धर्म-मराल के,
जब पंख उखड़ जाते हैं,
सब ढंग बिगड़ जाते हैं।

मनका 'मनका'

जब तलक तू हाथ में मनका न मनका लायगा,
तब तलक इस काठ की माला से क्या फल पायगा।
भूल कर अज को अजा का आज लों चेरा रहा,
क्या इसी पाखण्ड से परमात्मा मिल जायगा।
धर्म का धन छोड़कर पूँजी बटोरी पाप की,
बस इसी करतूति से धर्मात्मा कहलायगा।
चाह की चिनगी से चैंका चैन फिर चित को कहाँ,
देख धर कर आग पै पारा न ठिक ठहरायगा।
दान दीनों को न देकर नाम का दानी बना,
भोग के भूखे वहाँ जाकर बता क्या खायगा।
लोक-लीला के लिये रच रंगशाला राग की,
बोल बहुरंगी रँगीले गीत कब तक गायगा।
स्वारथी उपकार औरों का कभी करता नहीं,
फिर तुझे संसार सारा किस लिये अपनायगा।
जो तुझे भाती नहीं सबकी भलाई तो भला,
क्यों न भोले भाइयों को भूल में भरमायगा।
प्रेम का जल दे रहा परिवार के आराम को,
फल नहीं देगा किसी दिन फूल कर मुरझायगा।
खेल में खोया लड़कपन भोग में जीवन गया,
भूल में भागी जरा क्या और जीवन आयगा।
दूर प्यारे की पुरी है, दिन किनारे आ चुका,
चल नहीं तो इस झमेले में पड़ा पछतायगा।
कंठ की घर-घर सुनेंगे अन्त को घर के खड़े,
उस घड़ी शंकर घिरा घर घेर में घबरायगा।

पय-पानी-प्रेम

सिख सीखो मेल-मिलाप की,
जल और दूध से भाई।

पय ने पानी को अपनाया, पानी ने पय-मान बढ़ाया,
हिल-मिल एक भाव दरसाया, द्रवता गोरस आपकी,
समता के साथ बिकाई।

यों सनेह की बेल बढ़ाई, हित, पर-हित की भई चढ़ाई,
प्रेम-कसोटी बनी कढ़ाई, जाँच आँच के तापकी,
दृढ़ता को परखन आई।

नीर जला प्रिय क्षीर बचाया, दीन दुग्ध व्याकुल अकुलाया।
पावक में गिरने को धाया, मसि कृतघ्नता पापकी,
कुल-कीरति पै न लगाई।

मरती बार मिला पुनि पानी, मगन भयो उर-आग सिरानी।
यों शंकर के साथ सयानी, सभा रहेगी आपकी,
डारो मत कपट-खटाई।
जल और दूध से भाई।

कुछ भी न किया

रे कृतघ्न, कुछ भी न किया।
शील-सनेह सुखाया सारा, हा बुझगया विवेक-दिया,
जाल पसारे पाप कमाये, फूट-वैर बोये, उपजाये,
खोटी करनी के फल खाये, पर न प्रेम-पीयूष पिया।
छीन छाक औरों की छल से, पाले पेट पराये पल से,
पूजा जाता है उस दल से, जिसने देश उजाड़ दिया।
मदिरा पीता है मनमानी, सुखदा जाति जुए की जानी,
लम्पट पाखण्डी अभिमानी, जार सुकर्म पजार जिया।
बना न ज्ञानी गुरु का चेला, खेल मूढ़-मण्डल में खेला,
आज कुचाली चला अकेला, शंकर धर्म न साथ लिया।
रे कृतघ्न, कुछ भी न किया।

अवनति

अब कब होगा हाय सुधार,
देखो, दुखदायी दिन आये।

भारत-जननी के भरतार, कोविद विद्या के भंडार,
अगणित योगी ज्ञानाधार, हा, कित कीरति छोड़ सिधाये।
सज्जन, संवित, शील, उदार, उन्नति-युवती के शृंगार,
कर-कर अद्भुत आविष्कार, अवनी के उर माहिं समाये।
जिनकी रचना के उपहार, जगने जाने हिय के हार,
तिन के कुल की कुगति निहार, अँखियाँ वैरी भी भरलाये।
घर-घर घोर दरिद्र अपार, सम्पति पहुँची सागर-पार,
भागे सारे सद् व्यापार, उद्यम अपने भये पराये।
भूखे साथ लिये परिवार, माँगें भीख पुकार-पुकार,
मँहगी मारें बारम्बार, दुखिया काल-व्याल ने खाये।
गह-गह कपट कठोर कुठार, गुरु जन बन बैठे जड़ जार,
कल्पित कुमत प्रचार-प्रचार, सबने बलि पशु वीर बनाये।
शंकर शुभ सन्मार्ग विसार, भूले करना पर उपकार,
खोये जीवन के फल चार, हमने केवल पाप कमाये।
देखो, दुखदायी दिन आये।

गौरव-गीत

भये हम नाथ, अनाथ सनाथ।

करके पान भक्ति-भेषज को, भव-रुज-हारी क्वाथ,
प्रभु शुभ दर्शन सौं आये हैं जीवन के फल हाथ।
धोवत हैं पद-पद्म रावरे ढार-ढार दृग-पाथ,
चूमें पोंछ-पोंछ पलकनसों, नाय-नाय कर माथ।
शंकर दीनदयालु तिहारो कबहुं न छोड़ें साथ,
उदित है गये भाग्य हमारे गाय-गाय गुण-गाथ।

भये हम नाथ, अनाथ सनाथ।

'पादप-प्रसाद'

करना उपकार तरु-समूह से सीखो,
ये गुल्म-लता-तरु सारे, हैं जीवन-प्राण हमारे।
प्यारे परम उदार, तरु-समूह से सीखो,
नित अन्नदान करते हैं, हम लोग उदर भरते हैं।
अपने बारम्बार, तरु-समूह से सीखो,
रस, मूल, फूल फल, मेवा, सब को बाँटें बिन सेवा।
नव-नव कर दातार, तरु-समूह से सीखो,
बन ओषधि रोग निकालें, पुनि पवन शुद्ध कर पालें।
परिमल-पुंज पसार, तरु-समूह से सीखो,
खींचें अवनी के जल को, देते हैं बल बादल को।
समझो वीर विचार, तरु-समूह से सीखो,
ये उपादान वस्त्रों के, अवयव अनेक अस्त्रों के।
सब शस्त्रों के यार, तरु-समूह से सीखो,
चुपचाप खड़े रहते हैं, गरमी-सरदी सहते हैं।
रोकें धूप-तुषार, तरु-समूह से सीखो,
उपकार अलौकिक इनका, करता है तिनका-तिनका।
शंकर कहै पुकार, तरु-समूह से सीखो,
करना उपकार।

प्रकृति और पुरुष

भली होरी खेलत नारि नवेली।

धन-धन चंचल अचल धनी बिन, कबहुँ न रहति अकेली,
भाँति-भाँति के भाव दिखावे, अदल-बदल अलबेली—
न राखति संग सहेली।

शब्द, रूप, रस, गन्ध, परस में, विधि-विलास की मेली,
श्वेत सुरंग श्याम रगन की, रुकत न रेलापेली—
रँगीली खुल-खुल खेली।

अगणित देवर खेलन आये, ठन गई ठेना ठेली,
हिल-मिल फँस गये फाग-फन्द में, मुद गई मुक्ति-हवेली—
कहँ अब दाता बेली।
जाके हित अबलों अबला ने, इतनी झंझट झेली,
सो पिय शंकर रीझ-बूझ कर, चूमत हा न हथेली—
बढ़ी रस-रीति सकेली।
भली होरी खेलति नारि नवेली।

हत्यारी होली !

दुख देखे दिवाली बिताई,
हँसो मत रोते रहो होली आई।

रौलट ऐक्ट पास होते ही राजनीति गरमाई,
रोग, दुकाल, युद्ध की मारी दीन प्रजा घबराई।१
श्री भारत-नेता गाँधी ने सत्य-सुगन्धि उड़ाई,
भूखे-प्यासे जनता-जन ने पाली पकड़ सचाई।२
बेचारे पीड़ित लोगों ने हिलमिल हा-हा खाई,
की न कृपा नौकरशाही ने नादिरशाही भुलाई।३
रुद्रादर्श मार्शलला ने मारू बिगुल बजाई,
टूट पड़े पंजाब प्रान्त पै कट्टर क्रूर कसाई।४
राजदुलारे ललमुण्डों ने लूट-खसोट मचाई,
भूखी भीड़, रोक दूकानें, भोजन को तरसाई।५
माँगें मोल थर्ड-इण्टर की कोई टिकट न पाई,
करदी बन्द रेलवे द्वारा बरबस आवा-जाई।६
वाहन छोड़ छिपाते छाते नबते धार छुटाई,
श्रील साहिबों से सुनते थे "डैम" सलाम कराई ७
सभ्य सुबोध जेल में ठूँसे फूल फली निठुराई,
संकट झेल देशभक्तों ने डबल प्रतिष्ठा पाई।८

निरपराधियों को देने को फिट फाँसी लटकाई,
देशनिकाले की अनुकम्पा अनर्थों ने अपनाई ।९
बेंत कूल्हुओं पर खाते थे भूल-भूल सुधि भाई,
छाती के बल से चलते थे काट कष्ट-कठिनाई ।१०
बालक पीटे वृद्ध घसीटे की भर-पेट पिटाई,
सोटे ठोक निकम्मी करदी तरुणों की तरुणाई ।११
देख नारियों को नरमाई कड़की कोप कड़ाई,
कोई झटकी कोई पटकी कोई धर धमकाई ।१२
फोड़ रहे थे बम के गोले छोड़ जहाज हवाई,
ज्वालामुखी मशीन गनों ने उग्र आग बरसाई ।१३
घेर घसीटे, फूँक-पजारे घोर अनीति मचाई,
मार-काट कर हत्यारों ने शोणित-धार बहाई ।१४

होली, हमारी होली

अब ठानो न ठमक ठठोली,
हटो,बस होली हमारी होली ।

जिन वीरों के चलित चक्र ने कुचली कण्टक-टोली,
कौन सुने उन मतवालों की कूट कर्णकटु बोली ।१
जिसने विधि की फरिया फारी चीर सुमति की चोली,
ऐसे रसिक रँगीले कुल को प्राकृत पद्धति रोली ।२
जो भ्रम-भेद भूल भरती है भड़क भावना भोली,
उसकी पोल युक्ति-पटुता ने खेल खिलाकर खोली ।३
जिनकी जड़ता वैर-फूटने टेक टिकाय टटोली,
शंकर धूलि उलीचो उनपै भूतो भर-भर झोली ।४

हटो,बस होली हमारी होली।

गौरव-गन्धा होली

मत बैठे वसन्त निहारो,
उठो, होली खेलो, उमंग बगारो ।

फूला फाग प्रेम रसिकों को प्रीति पसार पुकारो,
मित्रो, परता त्याग आग में, झगड़े-झाड़ पजारो ।१
नवल पत्र पाये वृक्षों ने निरखो अंग उघारो,
यों प्यारी उजड़ी जनता को कर प्रसन्न शृंगारो ।२
पूरा मेल करो आपस में वैर-विरोध बिसारो,
भेद-भिन्नता पास न झाँके ऐक्य-प्रयोग पसारो ।३
सत्यागार बनालो मन को मधुर वाक्य उच्चारो,
त्याग प्रमाद, धर्म के द्वारा कर्म-कलाप सुधारो ।४
गूदा एक फाँक दस भासें ऊर्वारुक-इव यारो,
शुद्ध भीतरी ऐक्य-भाव पै असदनेकता धारो ।५
देखो बिपदा-वैतरणी को धीर न हिम्मत हारो,
बन कैवर्त नीति-नैया के सबको पार उतारो ।६
मार सहो निर्दय दुष्टों की पर न किसी को मारो,
ऐसे तप से पा सकते हो जीवन के फल चारो ।७
वीर, कहो अन्याय-दम्भ को न्याय-नृसिंह विदारो,
दीन देश-प्रह्लाद-भक्त को, सौंप स्वराज्य उबारो ।८
धर्म, दया, आनन्द लोक में, निशि-वासर विस्तारो,
आर्य जाति को पारतन्त्र्य की अवनति से उद्धारो ।९
भाई, जीवन को भारत के भाल-तिलक पै वारो,
शंकर श्री गुरु गाँधीजी का गौरव-ज्ञान प्रचारो ।१०

उठो, होली खेलो, उमंग बगारो ।

होली का हुरदंग

भारत, कौन बदेगा होड़,
तुझ से होली के हुल्लड़ की ।

मटकें मतवालों के गोल, खेलें खोल-खोल कर पोल,
पीटें ढोर ढमाढम ढोल, गाते डोलें तान अकड़ की ।
झूले प्रामादिक हुरदंग, बरसे दुर्व्यसनों का रंग,
उमगी झूमें भ्रम की भग, लोला ऐंठ दिखाती अड़की ।
शुद्धा विधि का वेश बिगाड़, फरिया लोक-लाज की फाड़,
झंझट-झोंके झगड़े झाड़, फूँके, आग वैर की भड़की ।
विद्या-बल से पिण्ड छुड़ाय, धन की पूरी धूलि उड़ाय,
शंकर धी का मुण्ड मुड़ाय, फूटी आँख फूट की फड़की ।

होलिकाष्टक

उद्यम को कर अन्ध, आँख अवनति ने खोली है,
धन की धूलि उड़ाय, अकिञ्चनता हँस बोली है,
ठसक भीतर से पोली है ।
खुल-खुल खेलो फाग भड़क भारत की होली है ।

गर्व-गुलाल लपेट, रंग रिस का बरसाया है,
खाय वैर-फल, फूट, फड़कता फगुआ पाया है,
भरी अनबन से झोली है,
खुल-खुल खेलो फाग भड़क भारत की होली है ।

शोणित लाल सुखाय, लटे तन पीले करलाये,
पट-पट पीटें पेट स्वाँग भुक्खड़ भी भरलाये,
अधोगति सब को रोली है,
खुल-खुल खेलो फाग भड़क भारत की होली है ।

गोरी धन पर आज धनी की चाह टपकती है,
श्यामा लगन लगाय पिया की ओर लपकती है,
चढ़ी चंचल पर भोली है,
खुल-खुल खेलो फाग भड़क भारत की होली है ।

लोक-लाज पर लात मार कर बात बिगाड़ी है,
ऊल रहा हुरदंग सुमति की फरिया फाड़ी है,
अकड़ की चमकी चोली है,
खुल-खुल खेलो फाग भड़क भारत की होली है।

ऊल-ऊल कर ऊत ढमाढम ढोल बजाते हैं,
थिरकें थकें न थोक-गितक्कड-तुक्कड़ गाते हैं,
ठनाठन ठनी ठठोली है,
खुल-खुल खेलो फाग भड़क भारत की होली है।

सब के मस्तक लाल न किसका मुखड़ा काला है,
भंगड़ भस्म रमाय रहे हुल्लड़ मतवाला है,
न इसमें कण्टक-टोली है,
खुल-खुल खेलो फाग भड़क भारत की होली है।

चढ़े न भ्रम की भंग कहीं पौराणिक शंकर को,
समझे अपने भूत न ऐसे यूथ भंयकर को।
निरन्तर समता होली है,
खुल-खुल खेलो फाग भड़क भारत की होली है।

बिटिया-विलाप

माई, मेरा बाप कुलीन कमाऊ।

पाली धन की खानि मान मैं, बिटिया वस्तु बिकाऊ,
दूर-दूर भेजे वर खोजा, बारी, भाट, पुरोहित, नाऊ।
सौदा कर लाये वे चारों, सौदा लगन लगाऊ,
बोले सुन जिजमान मिलेंगे, पूरे पाँच हजार पचाऊ।
घेर बरात ब्याहने आया, हाथी पर चढ़ हाऊ,
देख ऊपरी ऊक रहे हैं, थूक रहे हैं लोग बटाऊ।
उमगा मौर बाँध चौबारा, दस लड़कों का दाऊ,
ओ मा, वह बूढ़ा शंकर-सा, मेरा कन्त कि तेरा ताऊ।

माई, मेरा बाप कुलीन कमाऊ।

'होली है'

ऊलें अवधूत नाचें दूत भूतनाथ के-से,
हाट हुरदंग ने असभ्यता की खोली है।
अंगों में अनंग की जगावे ज्योति मादकता,
लाज के ठिकाने ठनी शंकर ठठोली है।
लालिमा उड़ावेगी दरिद्रता के दंगल में,
कालिमा के कर में गुलाल-भरी झोली है।
धूल में मिलेगी कलही को लीला हुल्लड़ की,
भारत दिवालिया की आज हाय होली है।

'लंठराज बन आया है'

देखो रे, अजान ऊत खेलें फाग फागुन में,
भंग की तरंग में अनंग सरसाया है।
बाजें ढप-ढोल नाचें गोल बाँध-बाँध गावें,
साखी सर बोल भारी हुल्लड़ मचाया है।
बौरे अवधूत भूखे भारत के छैला बने,
भूत-गण जान धोखा शंकर ने खाया है।
दूर भारी लाज आज गाज गिरी सभ्यता पं,
संठों का समाज लंठराज बन आया है।

नोट-पोट

लेलोजी, लेलो, रोकड़ देकर नोट।

दूर कसोटी के रहते हैं, तपें न खाकर चोट,
पाते नहीं परखने वाले, इनमें कुछ भी खोट।
आँधी, आग, नीर, कीचड़ में, मार न सकते लोट,
डाकू-चोर न ले सकते हैं, इनको लूट-खसोट।
आँट नहीं सहते अंटी की, कस न सके लंगोट,
पौढ़ें जाकट की पाकट में, ढकता ढिल्लड़ कोट।
भारी मोल, तोल में हलके, धर कपड़ों की ओट,
रे शंकर बोझिल सिक्कों की अबतो बाँध न पोट।

लेलोजी, लेलो, रोकड़ देकर नोट।

पति के प्रति

सैयाँ न ऐसी नचाओ पतुरियाँ।

गाने पै रीझो, बजाने पै रीझो, बन्दी की छाती में छेदो न छुरियाँ।
पापों की पूँजी पचेगी न प्यारे, खाते फिरोगे हकीमों की पुरियाँ।
डोलोगे डाली डुलाते-डुलाते, हाथों में पूरी न होंगी अँगुरियाँ।
जो हाय शंकर दशा होगी ऐसी, तो मेरी कैसे बचालोगे चुरियाँ।

सैयाँ न ऐसी नचाओ पतुरियाँ।

बेटी का उलाहना

अरी अम्मा, जले तेरा प्यार,
यों क्यों जिलाती है तू।

खाने को देती है बासे पराँठे, बेझर की रोटी अचार—
मट्ठा पिलाती है तू।

पाँड़े-पुजारी को लड्डू-जलेबी, पण्डे को भर-भर थार—
पेड़े खिलाती है तू।

भैया के अंगे को गाढ़ा-दुसूती, धोतर की धोती उधार—
धी को दिलाती है तू।

बाबा निपूते को रेशम का चोला, बाई मुचण्डी को चार—
चोली सिलाती है तू।

लूटी ठगों ने सचाई के धोखे, खाकर झुठाई की मार—
छाती छिलाती है तू।

सीखे गुरण्डों के गन्दे गपोड़े, समझी सचाई के सार—
श्रद्धा मिलाती है तू।

सूझे नहीं शंकरानन्द ऊँचा, पूजा पटकनी प्रचार—
घण्टा हिलाती है तू।

अरी अम्मा, जले तेरा प्यार,
यों क्यों जिलाती है तू।

पावस-प्रभाव

घिर-घिर घन गरजत बार-बार,
चपला चमके तम टार-टार।

झंझा के झोंक झकझोरें, धाराधर धरनीधर बोरें,
आग बुझाय दई ग्रीषम की, पावस ने जल ढार-ढार।
घिर-घिर घन गरजत बार-बार।

बन गयो गगन प्रकाश प्रवासी, मावस फुरे न पूरनमासी,
छह-छह रात न छिटकें तारे, भानु दुरे दिन चार-चार।
घिर-घिर घन गरजत बार-बार।

नाचत नीर नचावत नारे, उमड़ें ताल-नदी-नद-सारे,
झाबर-झील मिले आपस में, उमँग हिलोरें मार-मार।
घिर-घिर घन गरजत बार-बार।

बन-बन गुल्म-लता-तरु फूले, पाय सरस-रस पल्लव झूले,
हार-हार हरियाली छाई, आक-जवासा जार-जार।
घिर-घिर घन गरजत बार-बार।

रुरुआ ररत झिली झिगारें, वक, मंडूक, मयूर पुकारें,
पियु-पियु पीयु पपीहा बोलें, कोयल कूकें डार-डार।
घिर-घिर घन गरजत बार-बार।

जलचर-थलचर करत किलोलें, नभचर मौज उड़ावत डोलें,
कीट-पतंग सनेह निचोड़ें, दीपक पै तन बार-बार।
घिर-घिर घन बरसत बार-बार।

हिल-मिल दम्पति भेद न राखें, मान बिसार प्रेम-रस चाखें,
परखें कोक-कला रँग भीने, मदन मोद उर धार-धार।
घिर-घिर घन बरसत बार-बार।

घर-घर लोग विलास-विलोकें, विधवा-कोप कहाँ तक रोकें
जाति-अधोगति को नित कोसें, छिन-छिन छतियाँ फार-फार।
घिर-घिर घन बरसत बार-बार।

उर्दू कविताएँ

ख़ादिमाने नौकरशाही

[असहयोग-आन्दोलन के समय नौकरशाही गुलामों की कैसी मनोवृत्ति थी, उसी की एक झलक इस गीत में दिखाई गयी है। सम्पादक]

आलीजाह हुज़ूर के, ख़ादिम हैं हम धींग,
कांग्रेस की काटते, मींग, दिखाकर सींग।
गुज़ारिश है मा'क़ूल हज़ूर
शाने तसल्लुत अँगरेजी की देख-देख पुरनूर,
ख़ुश नसीब बेदार दिलों में रहता है भरपूर।
काँगरेसियों की गड़बड़ से रहते हैं हम दूर,
करिये 'अदम तावुन' को अब बेशक चकनाचूर।
अगुआ बन क़ानून तोड़ जो करते फिरें क़सूर,
उनकी चाल नहीं चलते हैं हम हो के मजबूर।
जाँच लीजिये हर सूरत से अपना न हो फ़ितूर,
एक नहीं है इस गरोह में शंकर-सा मग़रूर।
गुज़ारिश है मा'कूल हज़ूर।

जमाले एज़दी

हर शाख़ से अयाँ है हर सू जलाल तेरा,
मा'शूके बुलबुलाँ है ऐ गुल, जमाल तेरा।
नाज़िर न देखता है इन्साफ़ की नज़र से,
मंज़र दिखा रहे हैं कामिल कमाल तेरा।
वाइज़ बजा रहा है तसलीस की सितारी,
माहिरे मुसल्लमा है दिल बेमिसाल तेरा।
मख़लूत मानता है मख़लूक़ में ख़ुदा को,
मुश्ताके मा'रिफ़त है ख़ालिस ख़याल तेरा।

अल्लाह को अलहदा साबित करें जहाँ से,
दज्जाल हल न होगा क्या यह सुआल तेरा।
बेख़ौफ़ कर रहा है गुमराह जाहिलों को,
शैतान इस बदी से जल जाय जाल तेरा।
ग़ारत नहीं करेगा उस को जहाने फ़ानी,
शंकर नसीब होगा जिस को विसाल तेरा।

मुनव्वर मुन्शी

नाक़िस मुआमलों में मश.गूल हम न होंगे,
मा.कूल बन चुके हैं मन.कूल हम न होंगे।
मशहूर हैं हमारे अफ़आल हिन्द-भर में,
फ़ाइल कहा रहे हैं मफ़ऊल हम न होंगे।
आदिल है आलिमों से इ.ल्मी मजाक़ अपना,
कर मेल जाहिलों से मजहूल हम न होंगे।
बिज्जात .खुद .खुदा हैं मूजिद हैं मुलहिदी के,
मक्कार मुक़बिलों में मक़बूल हम न होंगे।
.खुल्दे शुनीदा जिससे सब कुछ दिला सकेगी,
उस नख्ले लापता के फल-फूल हम न होंगे।
काफ़िर बुतों के आगे सर को न ख़म करेंगे,
गुमराह क़ातिलों से मक़तूल हम न होंगे।
मुँह से खरा कहेंगे बेशक पटेल-बिल को,
पर ब्याह की बला में मशमूल हम न होंगे।
शाही मुलाज़िमत में गिट-पिट फ़िरंगियों की,
गो डैम तक सुनेंगे पर फ़ू.ल हम न होंगे!
शकर है शायरों का जर 'वाह-वाह' मिलना,
लो अर्ज़ मुख़्तसिर है पुरतूल हम न होंगे।

हिन्दुस्तानी में

चैन से काटी जवानी दुख बुढ़ापे ने दिया,
सोगई प्यारी .खुशी बेदार वैरी ग़म हुआ ।
जीने जो चाहा वही देखा बिलाशक हूबहू,
ख्वाब बीती रात का मानन्दे जामे जम हुआ ।
बीबी आयेगी नहीं पर कल पिसर आ जायगा,
दर्दे दिल कुछ बढ़ गया दर्दे जिगर कुछ कम हुआ ।
सिर्फ़ नाथूराम नाथूराम शंकर हो गया,
नज़्म का नेगी तख़ल्लुस नाम का हमदम हुआ ।
शुद्ध कविता से मिली है पाक दामन शायरी,
योग भाषा पद्य उरदू नज़्म का बाहन हुआ ।

तरना .जुरूरी है

राहत मुसीबत के साथ किसी तौर से भी,
ज़िन्दगी का व.क्त पूरा करना .जुरूरी है ।
दोजख में जाना बुरे फ़ेलों का नतीजा है तो,
नाक़िस मुआँमलों से डरना .जुरूरी है ।
कारामद होती है न कोशिश किसी की कोई,
मौत कब छोड़ती है मरना .जुरूरी है ।
पावेगा नजात माँग शंकर .खुदा से दुआ,
बहरे-जहाँ से झट तरना .जुरूरी है ।

आन मरदाने की

एक ही तरीक़े पर शंकर किसी को कभी,
आती है .जुहूर में न हालत ज़माने की ।
कोई किसी रंग का है कोई किसी ढंक का है,
तर्ज़ एक़सी है न कमाने की न खाने की ।
औरतों में गाता है मटकता मुख़न्नसों में,
ज़िन्दगी ख़राब ख्वार ख़िश्ता है ज़नाने की ।
हौसले के ज़ोर से उठाता पस्त हिम्मतों को,
मानेगा न कौन कहो 'आन मरदाने की' ।

'तज़मीन'

न यह दावा है शंकर का कि आला है सख़ुन मेरा,
न उलमा से न शुअरा से दुबाला है सख़ुन मेरा।
मगर तो भी फ़साहत के शगूफ़ों की खिलावट से,
'अजब क़िस्सा है मेरा और निराला है सख़ुन मेरा'।

—

राहत रही न तुख़्म मुसीबत के बो चुके,
कर प्यार तनज़्ज़ुल पै तरक्क़ी को खो चुके।
शंकर से मदद माँगो, चलो चाल पुरानी,
'ऐ अहले हिन्द अबतो उठो ख़ूब सो चुके'।

—

फटकार ख़ुदग़रज़ की लबे दम न खायँगे,
कुचलेंगे मज़म्मत को मगर ग़म न खायँगे।
शंकर हक़ीर बनके सितमगर की गालियाँ,
सम खायँगे पर तेरी क़सम हम न खायँगे।

—

पकड़े न वायज़ों का पल्ला दरोग़गोई,
मशमूल आबिदों में मक्कार हो न कोई।
चलती रहे उसीली माक़ूल चाराजोई,
मिल जाय लीडरों को तारीफ़ दूध-धोई।
शंकर हर एक दिल पर बस आरज़ू लदी है,
'पैग़ाम यह ऋषी का लाई शताबदी है'।

—

बेलौस ठोस-पोल में जिसका ज़हूर है,
साथी है सिदाक़त का दरोग़ी से दूर है।
नादानी की तारीकी में पिनहाँ ज़रूर है,
पूरी समझ की रौशनी का कोहेनूर है।
होली ख़ुदी ख़ुदा उसी शंकर की चाह में,
रहता है नाम-रूप से न्यारा 'निगाह में'।

शंकर के साथ जल गई चादर भी कफ़न की,
अब दिल में तमन्ना है न तन की न वतन की।
फ़ितरत क़फ़स में देखली संयाद के फ़न की—
'बुलबुल को आर.ज़ू है न गुल की न चमन की'।

—

अशयार और क़ते

ख़ाल उनके गोरे रुख़ पर दिल चुराते हैं मेरा,
चाँदनी में चोर पड़ते हैं अजब अन्धेर है।

—

ख़सलतों पै ख़ाक डालो नाम अच्छा चाहिये,
काम कितना ही बुरा हो नाम अच्छा चाहिए।

—

ऐ अहले हिन्द अब तो उठो .ख़ूब सो चुके,
कर प्यार तनज़ुल पै तरक्क़ी को खो चुके।
शंकर जलादो जल्द .गुलामी के जाल को—
राहत रही न तुख़्म मुसीबत को बो चुके।

—

जिस बुरी नीयत से तू तय कर रहा था जिन्दगी,
आज बतलाता है उसको बायसे शरमिन्दगी।
.ख़ैर शंकर गर तुझे है ख़्वाहिशे .ख़ुरसन्दगी,
तो बदी को तर्क कर दे कर ख़ु.दा की 'बन्दगी'।

—

फे.ल हैं जिसके जहाँ में बायसे शरमिन्दगी,
हो चुकी बरबाद बस बेसूद उसकी जिन्दगी।
है यहाँ हक आबिदे मासूम की .ख़ुरसन्दगी,
शंकरा इस वास्ते माबूद की कर 'बन्दगी'।

—

बुढ़ापा नातवानी ला रहा है,
ज़माना जिन्दगी का जा रहा है।
किया क्या ख़ाक, आगे क्या करेगा—
अख़ीरी व.क्त दौड़ा आरहा है।

बड़ा दिन

देखले शंकर बड़ा दिन आज है,
साल-भर के वक़्त का सरताज है।
साहिबे दौलत हँसाते-हँस रहे—
रोरहे वे घर न जिनके नाज है।

—

मानलें क़ानूने शाही को ज़ुलेखा किसलिये,
मरहबा इन्साफ़ यूसुफ़ से मिली है इसलिये।
बस हमारी आरज़ू वह आज पूरी हो गई—
माँगते शंकर खुदा से थे दुआएं जिस लिये।

—

सब की हम हाँ में हाँ मिलाते हैं,
यों ख़ुशामद के गुल खिलाते हैं।
बात समझा नहीं मगर कोई—
मुरदा दिल मेल को जिलाते हैं।

—

ज़ालिम कहो तो कौन है बन्दर से जियादा,
मज़लूम न पाता है कहीं ख़र से जियादा।
दुनिया को देख लीजिए इस वक़्त ग़ौर से—
तुक्कड़ नहीं है दूसरा शंकर से जियादा।

—

मुसीबत अपनी पिनहाँ मैं,
न ख़लकत को सुनाऊँगा।
न हो जब दिल ही पहलू में,
तो फिर मुंह में ज़बाँ क्यों हो।

—

धड़क बेशी-कमी दोनों की ज़ाहिर कर रही है,
दर्दे दिल कुछ बढ़ गया दर्दे जिगर कुछ कम हुआ।

प्रबोध-पंचक

सुधार धर्म-कर्म को, विसार दो अधर्म को,
बढ़ाय बेल प्रीत की, कथा सुनीति-रीति की,
सुना करो अनेक से,
मिलो महेश एक से।

बनाय ब्रह्मचर्य को, मनाय विज्ञवर्य को,
षड़ंग वेद को पढ़ो; सुबोध शैल पै चढ़ो।
सुधी बनो विवेक से,
मिलो महेश एक से।

रिझाय धर्मराज को, भजो भले समाज को,
मिटाय जाति-पाँति के, विरोध भाँति-भाँति के,
छुड़ाय छेक-छेक से,
मिलो महेश एक से।

जगाय ब्रह्म-योग को, भगाय कर्मभोग को,
बसाय ज्ञेय-ज्ञान में, धँसाय ध्येय-ध्यान में,
समाधि सीख भेक से,
मिलो महेश एक से।

जनाय जाल-जल्पना, करो न कूट कल्पना,
विचार शंकरादि के, रहस्य हैं ऋगादि के,
उन्हें टिकाय टेक से,
मिलो महेश एक से।

सदुपदेश

शुद्ध सच्चिदानन्द ब्रह्म का भक्ति-भाव से ध्यान करो,
कर्मयोग-साधन के द्वारा सिद्ध ज्ञान-विज्ञान करो।
वेद-विरोधी पन्थ विसारो मन्द मतों से दूर रहो,
करते रहो सत्य की सेवा गुरु लोगों का मान करो।
शुभ सुदृश्य देखो विद्या के धूल अविद्या पर डालो,
अपने गुण, आविष्कारों का सब देशों को दान करो।

चारों ओर सुयश विस्तारो पुण्य-प्रतिष्ठा को पकड़ो,
देशभक्ति के साथ प्रजा की पूजा का अभिमान करो।
छोड़ो उन कामों को जिन से औरों का उपकार न हो,
वैर त्याग पीयूष-प्रेम का सभ्य-सभा में पान करो।
प्राण हरो आलस्यासुर के रक्षा करो सदुद्यम की,
सेवक बनो धर्मवीरों के दुष्टों का अपमान करो।
हे मित्रो, दुर्लभ जीवन पै कोई दोष न लगने दो,
अपनालो शंकर स्वामी को बैठे मंगल-गान करो।

कुमाता की लोरी

मत रोवे ललुआ लाड़ले,
हँस-बोल मनोहर बोली।

हाय, धूल में लोट रहा है, मेरी खाल खसोट रहा है,
काटे बाल बकोट रहा है, उठ कर झगुली झाड़ले,
ले बिगुल, फिरकनी, गोली,
हँस-बोल मनोहर बोली।

मान कहा कनियाँ में आजा, पीकर दूध, मिठाई खाजा,
खेल बालकों में बन राजा, सब को पटक-पछाड़ले।
हटजाय न अटके टोली,
हँस-बोल मनोहर बोली।

प्यारे, पीट बहन-बाई को, पकड़ बुआ को, भौजाई को,
घेर-घसीट चची-ताई को, झटपट लहँगे फाड़ले,
फिर तार-तार कर चोली,
हँस-बोल मनोहर बोली।

दे-दे गाली कुनबे-भर को, नाच नचाले सारे घर को,
ठोक सगे बाबा शंकर को, निधड़क मूँछ उखाड़ले,
कर ठसक पिता की पोली,
हँस-बोल मनोहर बोली।

चेतावनी

अब चेतो भाई,
चेतना न त्यागो जागो सो चुके।

समता सटकी पटुता पटकी, अटकी कटुता छल-बल की,
भूल-भरी जड़ता अपनाली विद्या के सहारे न्यारे हो चुके।
अपनी गुरुता लघुता करली परखी प्रभुता पर-घर की,
कायर, कर्म-कलाप तुम्हारे वीरों की हँसी के मारे रो चुके।
बिगड़ी सुविधा सुख-साधन की उलटी गति अस्थिर धन की,
सौंप दरिद्र सदुद्यम डूबे खेलों में कमाना-खाना खो चुके।
उतरी पगड़ी बढ़ियापन की घुड़कें अगुआ अवनति के,
सेवक शंकर के न कहाये पन्थों में मतों के काँटे बो चुके।
चेतना न त्यागो जागो सो चुके।

पाँच पिशाच

पाँच पिशाच रुधिर पीते हैं।

काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह से हा, किस के तन-मन रीते हैं,
पाँच पिशाच रुधिर पीते हैं।

पूरे रिपु चेतन-कुरंग के हरि, वृक, भालु, बाघ, चीते हैं,
पाँच पिशाच रुधिर पीते हैं।

छुटें न इन से पिण्ड हमारे अगणित जन्म वृथा बीते हैं,
पाँच पिशाच रुधिर पीते हैं।

शंकर वीर बलिष्ठ वही है, जिस ने ये प्रतिभट जीते हैं,
पाँच पिशाच रुधिर पीते हैं।

मेल का मेला

मेल को मेला लगा है मार खाने को नहीं,
धर्म-रक्षा को टिके हो जी दुखाने को नहीं।
जन्म होता है भलों का देश के उद्धार को,
प्रेम की पूजा भलाई भूल जाने को नहीं।
द्रव्य दाता ने दिया है दान, भोगों के लिये,
गाड़ने को दीन-हीनों के सताने को नहीं।

वीरता धारो प्रमादी मोह के संहार को,
देश-विद्रोही खलों में मान पाने को नहीं।
लौ लगी है ब्रह्म से तो छोड़ दो संसार को,
ढोंग अज्ञों के अखाड़ों में दिखाने को नहीं।
शंकरानन्दी बनो तो वेद-विद्या को पढ़ो,
पण्डिताई के कटीले गीत गाने को नहीं।

रुद्र दण्ड

खलों में खेलते खाते भलों को जो जलाते हैं,
विधाता न्यायकारी से सदा वे दण्ड पाते हैं।
प्रतापी तीन तापों से प्रमत्तों को तपाता है,
कुटुम्बी, मित्र, प्यारे भी बचाने को न आते हैं।
अजी जो अङ्ग-रक्षा पै न पूरा ध्यान देते हैं,
मरें वे नारकी पीछा न रोगों से छुड़ाते हैं।
प्रमादी, पोच, पाखंडी, अधर्मी, अन्धविश्वासी,
अविद्या के अँधेरे में, मतों की मार खाते हैं।
अभागी, आलसी, ओछे, अनुत्साही, अनुद्योगी,
पड़े दुर्दैव को कोसें मरे जीते कहाते हैं।
पराये माल से मोघू बने प्रारब्ध के पूरे,
मिलाते धूल में पूँजी कुकर्मों को कमाते हैं।
दुराचारी, दुरारम्भी, कृतघ्नी, जालिया, ज्वारी;
घमण्डी, जार, अन्यायी कुलों को भी लजाते हैं।
हठीले, नीच, अज्ञानी, निकम्मे, मादकी, कामी;
गपोड़ू, दुर्गुणी, गुण्डे, प्रतिष्ठा को डुबाते हैं।
कुचाली, चोर, हत्यारे, बिसासी, देश-विद्रोही,
प्रजा-राजा किसी की भी न सत्ता में समाते हैं।
किसी भी आततायी का कभी पीछा न छूटेगा,
हरें जो प्राण औरों के गले वे भी कटाते हैं।
बचेंगे शंकरागामी दिनों में वे कुचालों से,
जिन्हें ये दण्ड के थोड़े नमूने भी डराते हैं।

उद्बोधनाष्टक

१

काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह की पचरंगी कर दूर,
एक रंग तन, मन, वाणी में भर ले तू भरपूर।
प्रेम पसार न भूल भलाई, वैर-विरोध बिसार,
भक्ति-भाव से भज शंकर को धर्म दया उर धार।

२

देख कुदृष्टि न पड़ने पावे पर-वनिता की ओर,
विवश किसी को नहीं सुनाना कोई वचन कठोर।
अबला, अबलों को न सताना पाय बड़ा अधिकार,
भक्ति-भाव से भज शंकर को धर्म दया उर धार।

३

आय न उलझें मतवालों के छल, पाखण्ड, प्रमाद,
नेक न जीवन-काल बिताना, कर कोरे बकवाद।
बाँटें मुक्ति ज्ञान बिन उनको जान अजान, लबार,
भक्ति-भाव से भज शंकर को धर्म दया उर धार।

४

हिंसक, मद्यप, आमिष-भोजी, कपटी, वञ्चक, चोर,
ज्वारी, पिशुन, चबोर, कृतघ्नी, जार, हठी, कुलबोर।
असुर, आततायी, गुरु-द्रोही इन सब को धिक्कार,
भक्ति-भाव से भज शंकर को धर्म दया उर धार।

५

जो सब छोड़ सदा फिरते हैं निर्भय देश-विदेश,
तर्क-सिद्ध श्रेयस्कर जिन से मिलते हैं उपदेश।
ऐसे अतिथि महापुरुषों का कर सादर-सत्कार,
भक्ति-भाव से भज शंकर को धर्म दया उर धार।

६

माता, पिता, सुकवि, गुरु, राजा कर सबका सम्मान,
रुग्ण, अनाथ, पतित, दीनों को दे जल, भोजन, दान।
सुभट, गदारि, शिल्पकारों को पूज सुयश विस्तार,
भक्ति-भाव से भज शंकर को धर्म दया उर धार।

७

पाल कुटुम्ब सदुद्यम द्वारा भोग सदा सुख-भोग,
करना सिद्ध ज्ञान-गौरव से निःश्रेयसप्रद योग।
जप, तप, यज्ञ, दान देवेंगे जीवन के फल चार,
भक्ति-भाव से भज शंकर को धर्म दया उर धार।

'नौकरशाही'

ओ नौकरशाही, ऊल-ऊल उर छील।
बैठी बासुकि के मस्तक पै ठोक अकड़ की कील,
डाले पोच प्रजा के मुँह में पर न प्यार की खील।
जी हुज़ूरवादी जय बोलें होकर गौरवशील,
अपना दुःख सुनाने वाले बनते रहें ज़लील।
भाँति-भाँति के टैक्स लगाती नेक न करती ढील,
हाय, किसी भी प्रतियोगी की सुनती नहीं दलील।
जाल अदालत का पूरा है इतना तूल-तवील,
जिसमें झगड़ालू झूठों का उलझा झुण्ड झड़ील।
मारें माल मस्त पटवारी लूटें पुलिस वकील,
होती नहीं एक दिन को भी इन सब की तातील।
रेलगाड़ियाँ करती डोलें सफ़र हज़ारों मील,
ठौर-ठौर कंचन के चेरे चमक रहे क़न्दील।
नोट काग़ज़ी छीन रहे हैं अन्न तूल रस नील,
दीनों को धनहीन बनाते ज्यों बिन पत्र करील।
खाकर माँस हमारा मोटा करले अपना डील,
भोले भारत के शोणित से भरदे झावर-झील।
काटें ओडायर-डायर-से तड़पें रक्त रँगील,
वायसराय दूर से देखें उड़ते वायस-चील।
सर्वनाश की भेरि बजाते उतरे अशराफ़ील,
तो फिर मैं तेरे शासन की उनसे करूँ अपील।
लौ न लगाती है शंकर से कर लीला तबदील,
हाय, सुनाती है क्या तुझको सदुपदेश इंजील।
ओ नौकरशाही, ऊल-ऊल उर छील।

दुःखोद्गार

भूला रे, भोला भूखा भारत देश।
दूर विराजें पोच प्रजा के परमोदार प्रजेश,
मार सहे नौकरशाही की भोग-भोग कर क्लेश।
हा, गोरी कुटिला कुनीति के बिथुरे लोहित केश,
भेद-भरी कंजी अँखियों में रिसने किया प्रवेश।
सेवा-धर्म धार पग पूजें, नम्र नव्वाब-नरेश,
'जी हुजूर' वक्ता कहते हैं, नादिर नजरें पेश।
श्री गुरु गाँधी कल्प-वृक्ष का, फूल-फले उपदेश,
दे स्वराज्य स्वाधीन बनादे, हे शंकर अखिलेश।
भूला रे, भोला भूखा भारत देश।

काल की कुटिलता

पसारी तू ने कैसी कुटिलता काल।
भूगोलेश धनेश दिखाये, हा, परवश कंगाल,
बन बैठे सम्राट विदेशी पाकर प्रभुता-माल।
छोड़ स्नेह-समता को भूले हम कर्तव्य विशाल,
हा, सतपथ में बिछा रहे हैं मत-पन्थों के जाल।
शत्रु पछाड़े जिन वीरों ने ठोक-ठोक कर ताल,
उन सिंहों की होड़ करेंगे क्या डरपोक शृगाल।
शिल्पकला, वाणिज्य आदि पै अवनति औंधी डाल,
बकते बकवादी उन्नति की ऐंठ उछाल-उछाल।
भोजन-वस्त्र बाँट दीनों को करते नहीं निहाल,
भाषण-भक्त दानियों ने भी पकड़ी उलटी चाल।
काट-काट लाखों पशुओं को बधिक उचेलें खाल,
इन पलखौओं हत्यारों में थिरक रहे गोपाल।
वैर-व्याधि दुर्भिक्ष दबोचें बन बाँके विकराल,
भोग रहे भारत-माता के नरक, दुलारे लाल।
गीत सुनाता है बधिरों को पास बिठाल-बिठाल,
शंकर इस थोथे गाने पै टप-टप आँसू ढाल।
पसारी तू ने कैसी कुटिलता काल।

उन्नतोद्‌गार

बढ़ाते रहें भारत को महाराज।

मान बढ़ा उन कालेजों का दरसें सुषमा-साज़,
पकड़ेंगे विद्या-हलधारी इंगलिश की मेराज।
न्याय-नीति क सिंहासन पें विज्ञ विराज-विराज,
करते हैं इंसाफ़ प्रजा का जोड़ वकील-समाज।
हा, दुख-भरे कोढ़ में फैली, खोट नटखटी खाज,
फूँकी पुलिस'मारशल ला' ने किया तुरन्त इलाज।
कोरे कागज़ के टुकड़े भी रंगत-संगत साज,
नोट कहाते ही जनता ने मान लिये मणिराज।
देख मोटरों की भड़कीली भड़-भड़ भारी भाज,
सड़कें छोड़ बचें पशु-पन्थी सुन-सुन बों-बों बाज।
भू-पर दौड़ें रेल, सिन्धु में, तरते बोट-जहाज,
डाक, तार, चारों से चलते उद्यम के सब काज।
मोल बढ़ाते हैं बूटों का न्यू फ़ैशन प्रतिभाज,
दाम छह गुने दिलवाते हैं छलनी-छटने-छाज।
तिगुने दामों पर देते हैं बढ़िया वस्त्र बजाज,
पहने कौन गजी-गाढ़े को, लगती है अब लाज।
पाँच टके पाते थे पहले देकर जितना नाज,
उतना अन्न दिला देता है हमको रुपया आज।
छह छटाँक का घी बिकता है पड़ी दूध पर गाज,
तो भी घटती नहीं भोज की बढ़िया रस्म-रिवाज।
माल कमाते हैं बड़भागी खा-खा बढ़िया ब्याज,
परखें मान कौड़ियों को भी मणि-मोती पुखराज।
देते रहते हैं रजवाड़े कुल मा.कूल ख़िराज,
चलते हैं नृप-नव्वाबों के मनमाने इख़राज।
लाखों घटिया बन बैठे हैं बढ़ियों के सरताज,
एक तुही कंगाल रहा है, रे शंकर कविराज।

भारतमाता का विलाप

भारत-माता रोरही, हाय बिसूर-बिसूर,
शंकर स्वामी कीजिये, अबतो संकट दूर ।

करोगे मेरे, संकट को कब दूर।

विश्वनाथ मैं भोग रही हूं आधि-व्याधि भरपूर,
कर डाला उपाधियों ने भी जीवन चकनाचूर।
गाज पड़ी उद्योग-दुर्ग पै पंगु हुआ श्रम-शूर,
ऊलें वैभव-बाग़ उजाड़ा दुर्गुण-कपि-लंगूर।
जूझें वाद-विवाद विरोधी भक प्रमाद, धत्तूर,
वीर कुपन्थी मतवालों ने कुचले कण्टक कूर।
हा, व्यापार कल्प-पादप के अंग गये सब झूर,
पेट पालती है पौरुष का बस चाकरी-खजूर।
हा, न रहे हीरा, मणि, मोती कंचन हुआ कपूर,
रत्न-कोष रत्नाकर के हैं टिकिट नोट-शालूर।
पीस पिसान सौंप देती हूं खाकर चापट-बूर,
तो भी बल विदेश भक्कू का घुड़कै घिनसे घूर।
दुर्गति देख-देख रोती हूं अबला केश बिथूर,
शंकर स्वामी काट रहा है कण्ठ कुशासन क्रूर।
शंकर ही-सा रुद्र हो, रो मत भारत दीन,
मेंट पराधीनत्व को, हंस होकर स्वाधीन।

गर्दभ-गति

हम से सुकवि गवैया भैया,
भारत तोहि सुधारेंगे।

गद्‌-गद्‌ ज्ञान-गीत गावेंगे, उपदेशामृत बरसावेंगे,
गाल बजाय बिड़ाल-सभा में पूँछ डुलाय पुकारेंगे।
तज स्वर-ताल तान तोड़ेंगे, बिकट लीकलय की छोड़ेंगे,
गुरिया गटेक राग-माला के, राजभजन उच्चारेंगे।

जो सुनकर गाना सुन लेगा; धन्यवाद उपहार न देगा,
उस अबोध मोधू के मुख पै, लमक दुलत्ती मारेंगे।
तुक्कड़ तुकियों से न डरेंगे, शंकर का अपमान करेंगे,
रेंक-रेंक कर तानसेन की, पदवी को फटकारेंगे।
भारत तोहि सुधारेंगे।

फबीली फूट

कहा मेरा सब करते हैं।

फैल फूट इन फुट्टलन में फूट फली मैं फूट,
फूट-फूट रो-रो कहते हैं फूट फबीली लूट—
सहैं फटकार न डरते हैं।

घोर अविद्या माता मेरी बाप प्रतापी पाप,
सर्वनाश स्वामी की दारा बेटा तीनों ताप—
निरन्तर संग बिचरते हैं।

डाह देश वंचकता नगरी स्वारथ सुन्दर धाम,
बल बिहार थल और अमङ्गल जङ्गल छल आराम—
जहाँ अवगुण मृग चरते हैं।

झूठे-साँचे झगड़ों से जो छूट जायगा गौन,
पुलिस वकील अदालत की फिर चोट सहेगा कौन—
गवाहों की नर भरते हैं।

बात-बात में होड़ा-होड़ी करें न धन की धूरि,
तो फिर कैसे हाथ लगेगी कीरति जीवन-मूरि—
बड़ाई पै कट मरते हैं।

वैर-विरोध विषमता-ममता पद्धति-पन्थ अनेक,
कभी न होने देंगे भोले, भारत-भर को एक—
हठी हठ को न बिसरते हैं।

भोजन भेज विदेशन को घर भरें कवाड़ मँगाय,
या दरिद्र दाता उद्यम की सम्पत्ति कहाँ समाय—
ध्यान धन का ध्रुव धरते हैं।

हैट-कोट पतलून बूट सज बोलें गिट-पिट बैन,
प्यारे 'गौड-पूत' के कारे नेटिव जैंटिल मैन—
गौन घरनी घर बरते हैं।

खान-पान में टुर-टुर छी-छी छोकें छूआ छूत,
ठौर-ठौर दंभोदक छिड़कें बन जङ्गम-जीमूत—
पाय दिन-रात पखरते हैं।

वेलूपेबिल के बिकवैया मन में राखें आँट,
घर बैठे लूटें लोगन को झूठे नोटिस बाँट—
बिसासी गाँठ कतरते हैं।

आदर कौन करे कविता को दीन भये कवि लोग,
रंडी, मुंडी, भांड़-भगतिया भड़ुआ भोगें भोग—
अमीरों का धन हरते हैं।

छिन्न-भिन्न रखती हूँ इनको, ठौर-ठौर अनमेल,
मेरे मृग शंकर के-से गण खुल-खुल खेलें खेल—
किसी की ओर न ढरते हैं,
कहा मेरा सब करते हैं।

व्यक्तिगत

[स्वर्गीया शंकरादेवी शंकरजी की पत्नी थीं। उनके स्वर्गवास पर ये पद्य लिखे गये थे। उमाशंकर और रविशंकर दो पुत्रों, महाविद्या एक मात्र पुत्री और शारदा पोती के देहावसान से शंकरजी को घोर दुःख हुआ था। उसी वेदना का संकेत नीचे की पंक्तियों में है। ये सब मृत्यु लगातार चार वर्ष के अन्तर्गत हुईं। इसी संकट-काल में शंकरजी को एक भयंकर फोड़े से भी व्यथित होना पड़ा था, जिसके कारण वे कई मास चार-पाई पर पड़े रहे। आँखों की ज्योति भी मन्द

होगयी थी। इन्हीं सारे दुःखों से तंग आकर वे अपने अन्तिम जीवन में मृत्यु का ही आवाहन करते रहते थे, और यही भाव उस समय उनकी कविता में भी प्रदर्शित होते थे। सम्पादक—]

चिकित्सा हुई वर्ष पूरा बिताया,
'जराशोष' का अन्त तो भी न आया।
यही अन्त को अन्त की बात जानी,
सती शंकरा का चुका 'अन्न-पानी'।

—

तजे प्राण डूबी सदुत्कर्ष में,
सिधारी सवा साठ ही वर्ष में।
बही शंकरानन्द की धार में,
सती शंकरा है न 'संसार में'।

—

जीवन बिताया सदाचार-भरी सभ्यता से,
अन्त लों सुकर्म कर सुयश कमा गई।
कल्प लों कटेगी नहीं ऐसी जड़ जगती पै,
अपने कुटुम्ब कल्प-वृक्ष की जमा गई।
नारियों को कामना-तरंगिणी से तरने को,
पुच्छ पति-पूजा कामधेनु की थमा गई।
साठ वर्ष तीनमास भिन्नता-सी भासी जिसे,
'शंकरा' सो शंकर की सत्ता में समा गई।

—

फोड़े ने पछाड़ा चार मास लों न डोला-फिरा,
संकट ने व्यग्रता बढ़ादी बूढ़ेपन की।
छोड़ा 'शंकरा' ने साथ 'शारदा' सिधार गई,
राख भी रही न 'महाविद्या' तेरे तन की।
एक आँख से तो अब दीखता नहीं है आगे,
दूसरी भी त्याग देगी शक्ति चितवन की।
शंकर को मोह ने मसोसा इसी कारण से,
इच्छा करता है परलोक के 'गमन की'।

खेला खेल खोखले खिलाड़ी बाल-मण्डल में,
ज्ञान रहा पास में परत्व का न आपे का।
तरुणी के संग तरुणाई की उमंग जागी,
पाया सुख जीवन के सञ्चित पुजापे का।
शंकर न सूझा मोह-माया का विलास बढ़ा,
दुःख फल हाथ लगा काल-चाल नापे का।
पैंसठ बरस बीते, जियेगा तो और आगे,
भोगना पड़ेगा भारी नरक बुढ़ापे का।

—

फोड़े की फुड़न्त ने बनायो आधो सूरदास,
आँख दूसरी हू सों समूचो अब ना दिखात।
बूढ़ी धन पोती-पुत्री पुत्र ने बिसारे प्रान,
चार-चार वर्ष में सहारे शोक-वज्रपात।
दिन ज्यों-त्यों बीते इत-उत बात-चीतन में,
हाय-हाय शोक में कटे न दुखदाई रात।
संकट-कटक यों जो काटते हैं बूढ़े वीर,
शंकर की भाँति 'सोई सूरमा सराहे जात'।

—

जो बुद्ध बूढ़े सहें कुटिल काल की लात,
सो शंकर से सूरमा कब न सराहे जात।

—

देवी 'शंकरा' ने देव-लोक में निवास पाया,
पीर पति की-सी न सहारी बूढ़ेपन की।
'शारदा' कुमारी बूढ़ी दादी के समीप गई,
मा से 'महाविद्या' मिली राख त्याग तनकी।
माता, सुता, भगिनी की ओर 'उमाशंकर' ने,
कूच किया ओढ़ कर चादर कफन की।
हाय, शोक-मूसल से काल ने कुचल डाली,
कोमल कवित्व शक्ति शंकर के 'मन की'।

बूढ़ी सती 'शंकरा' विसार सेवा 'शंकर' की,
त्याग तन स्वर्ग को भलाई ले भली गई।
जीवन बिताया बिन व्याही पोती 'शारदा' ने,
शोक-स्याही धीरता के मुख से मली गई!
बेटी 'महाविद्या' परिवार और पीहर को,
छोड़ मरी दुःख-दाल छाती पै दली गई।
हाय, निज माता, पिता, भगिनी के पास प्यारे,
पुत्र 'उमाशंकर' की चेतना चली गई।

'बाँकी है'

[शंकरजी ने इस पूर्ति में अपनी पुत्री सावित्री के मरण का उल्लेख किया है, जिसकी मृत्यु संवत् १९५६ के श्रावण मास में हुई थी]

तीन बड़े भाई छोटी भगिनी बिसारी एक,
मारी जिन मा के उर पाहन में टाँकी है।
रोवे राधावल्लभ निहारे बूढ़ी नानी, हाय!
शंकर पिता को दई प्राणहीन झाँकी है।
पौढ़ी सरिता के तीर गाढ़ में पसार पाँव,
ओढ़ जल-चादर दुलारी देह ढाँकी है।
छप्पन के सावन में लै गई कलेजा काढ़,
लाली छै बरस की टरे न पीर 'बाँकी है'।
शंकर सावित्री सुता, सब से नाता तोड़,
चट चिड़िया-सी उड़ गई, तन-पिंजड़े को छोड़।

जन्म-पत्री

[शंकरजी की जन्म-पत्री के नीचे अंकित है।]

राग सुधाकर अंक मेदिनी, विक्रमाब्द अनुकूल,
शुक्ल पक्ष मधुमास पञ्चमी, शुक्रवार सुखमूल।
घाट अंश रस पक्ष मीन के, गूँज उठो अलिलग्न,
शंकर के शुभ जन्मकाल में, हुआ वसन्त निमग्न।

मरघट-निरीक्षण

जिसमें दाह हुआ था प्यारे पुत्र उमाशंकर का हाय,
शंकर ने वह कुण्डा देखा आज महीना पाँच बिताय।
हा-हा मरघट में बेटा के मिली न तनकी हड्डी-राख,
अश्रु बहाता घर को आया सार शोक-संकट का चाख।

शंकर-स्वप्न

शंकर देखी स्वप्न में जननी पिछली रात,
बोली सुन बेटा सुधी हित-साधन की बात।
क्या करना था क्या किया पकड़ी उलटी चाल,
काट रहा है कष्ट से क्यों सुख-जीवन-काल।
जान चुका है ब्रह्म को शुद्ध एक रस एक,
घेर रहा तो भी तुझे सामाजिक अविवेक।
जाग-जगादे सत्य को चेत अचेत न चूक,
मतवाले मिथ्या मथें सब थोकों पर थूक।
पुतुआ तेरे ज्ञान की शक्ति बखान-बखान,
देती हैं सब देवियाँ मुझको आदर-दान।
उपजा मेरे गर्भ से तू कुल-दीपक लाल,
रूपराम का धार ले काट कपट का जाल।
थोड़ा जीवन शेष है कर पूरा शुभ काम,
नाम रहेगा लोक में सुधरेगा परिणाम।
मुक्त बना देगा तुझे मंगलमूल महेश,
भूल न जाना लाड़ले सुन मेरा उपदेश।
मान लिये सद्भाव से मा के वचन उदार,
हाथ जोड़ मैंने कहा धन्य-धन्य बहु बार।
अनघा माता हो गई हँसकर अन्तर्धान,
जागा अँखियाँ खोलदीं शंकर ने सुख मान।

अनुभूति

दोहा

शंकर बीते आयु के बासठ वर्ष असार,
दीनानाथ उतार दे अब तो जीवन-भार।

जीवन-भार न उतरा मेरा।

छोड़ा डेढ़ बरस का जिसने पाकर स्वर्ग-बसेरा,
इकलौता बेटा उस मा का कष्ट-कटक ने घेरा।
पहले अपनाकर नानी ने सुरपुर डाला डेरा,
फिर कर प्यार बुआ ने पाला साहस किया घनेरा।
करके बाल-विवाह पिताने गृह-बन्धन में गेरा,
हुआ 'गुलाब' कली वनिता का चञ्चरीक चित चेरा।
पढ़ने गया पढ़ा कुछ योंही गुरु का बना घसेरा,
काट मोह-महिमा-रजनी को हुआ सुबोध-सबेरा।
श्रुति-पद्धति ने मत-पन्थों का झिड़का झुण्ड लुटेरा,
मारा ब्रह्म-विवेक-सुभट ने वञ्चक वाद-बघेरा।
भिड़ा न प्रतिभा के प्रकाश से अन्ध अबोध-अँधेरा,
बना न धींग धनी कविता का कोरा सुयश बखेरा।
किया जनकजी के मरते ही उद्यम का ढँग-ढेरा,
चाकर रहा चिकित्सा चमकी यों बन गया कमेरा।
बाप कहाय बना फिर बाबा नाना कह कर टेरा,
क्या पर-बाबा बनकर होगा अपना अन्त निबेरा।
तज वनिता पोती दुहिता ने प्राण विषाद बखेरा,
त्याग देह दो तरुण सुतों ने घोर नरक में गेरा।
जिसके मायिक तारतम्य का उलझा सूत अटेरा,
दाँत उखाड़े उस उन्नति ने हाय हुआ मुख भेरा।
अबलों हाय न बासठ बीते नाम धार प्रभु तेरा,
शंकर पर कंटक कर्मों का हो न सका निबटेरा।

चतुर्वेदीजी का शुभागमन

[श्री बनारसीदास चतुर्वेदी अपने अनुज स्वर्गीय प्रो. फेसर रामनारायण चतुर्वेदी के साथ शंकरजी से मिलने हरदुआगंज गये थे, तब शंकरजी ने यह षटपदी लिखा था।]

बुध बनारसीदास चतुर्वेदी चल घर से,
प्रेम पसार सबन्धु मिले आकर शंकर से।
तरुण-वृद्ध का योग मिली यों गरमी-सरदी,
सरस अनुष्णाशीत भाव से समता भरदी।
कर दूर दुरंगी द्वैध की अटल एकता होगई
हरिशंकर के भी पास जो उमंग आगरा को गई।

—

सम्पादकाचार्य रुद्रदत्तशर्मा

शंकर भूलेगा नहीं जिनको आर्यसमाज,
मुक्त हो गये आज वे रुद्रदत्त बुध-राज।
रुलाया हमें रुद्र के कार्य ने,
किया कूच सम्पादकाचार्य ने।
बड़े विज्ञ थे, आपके जोड़ की,
बड़ाई न पाई किसी आर्य ने।

—

कविरत्न श्रीसत्यनारायण जी

शंकर सारे पारखी समझे जिसे अमोल;
छीना सो कविरत्न क्यों रे अदृष्ट ठग बोल
जो कि थे विज्ञान-गौरव से भरे,
रत्न थे साहित्य-सागर के खरे।
हा, जिन्हें रोती है कविता-कामिनी,
वे हमारे सत्यनारायण मरे!

'पपी' कुत्ता के शोक में

[शंकरजी ने अपने एक प्यारे कुत्ते 'पपी' के मरने पर यह कविता लिखी थी]

शंकर का प्यारा 'पपी' रोक सका न प्रयाण,
आज गया परलोक को, छोड़ देह बिन प्राण।

प्रेमामृत बरसाने वाला, स्वामिभक्ति दरसाने वाला,
सबसे मेल मिलाने वाला, हित की पूँछ हिलाने वाला।
अन्तिम खेल खिलाड़ी खेला,
हा-हा 'शेरू' रहा अकेला।

दोहा

छह ऋषि नौ भू विक्रमी, कार वदी बुधवार,
भागा दिन के दो बजे, श्वान-शरीर विसार।

फुटकर

शंकर देखा प्रेम से मावस के दिन "चाँद",
मिथ्या सत्य प्रकाश को कर न सकेगा माँद।

—

बाला चढ़ बेलून पै देख रही पुर गेह,
लोग अमा को पूर्णिमा समझे बिन सन्देह।

—

दान दया का जो करे जगदानन्द समोय·
ऐसे शंकर धर्म का क्यों न अभ्युदय होय।

—

विज्ञानी गुरुदेव हैं सिद्ध तपोधन धन्य,
जिनके प्यारे शिष्य हैं, शंकर भक्त अनन्य।

—

मैं मारी हूँ बिरह की मार, मार मत मोहि,
शंकर के आगे अड़े तो भट जानूं तोहि।

वर वैदिक बोध बिलाय गयो,
छल के बल की छबि छूट पड़ी।
पुरुषारथ, साहस, मेल मिटे,
मत-पन्थन के मिस फूट पड़ी।
अधिकार भयो परदेसिन को,
धन, धाम, धरा पर लूट पड़ी।
कवि शंकर आरत भारत पै,
भय-भूरि अचानक टूट पड़ी।

—

पढ़े हैं किसी को न विद्या पढ़ाना अविद्या पसारी,
बने सिंह संग्राम से भाग जाना जियो शस्त्रधारी।
करें और व्यापार क्या ब्याज खाना महा मोदकारी,
सगे बाप की भी न सेवा उठाना दया दूर मारी।

—

मिटाई महा मोह माया गुरू ने,
दिया मन्त्र मैं शुद्ध ज्ञानी बनाया।
कहा देखले बात की बात में,
सच्चिदानंद का रूप ऐसा दिखाया।
जगज्जाल सारा समाया उसी में,
न न्यारे रहे आप मैं भी मिलाया।
करे भेद की कल्पना कौन कैसे,
पता एक में दूसरे का न पाया।

—

गर्व को गाड़ दे, लोभ को टार दे,
क्रोध को काट दे, मार को मार दे।
ज्ञान की आग में, मोह को बारदे,
सत्य के सिन्धु में, झूठ को डार दे।

नैसर्गिक बलिदान

शंकर प्रेमी प्रेम के समझो मंगलमूल,
प्राणों का बलिदान दो नेक न करिये भूल।

बार-बार प्यारे दीपक को चूमे चकराता चहुँ ओर,
भेंट शिखा से जल जाता है तन को तप्त तेल में बोर।
जग में जीवन-दाता प्रेमी पाता नहीं पतंग समान,
जीवन पर मर मिटने वालो, देखो नैसर्गिक बलिदान।

—

एक इसी को अपना साथी अर्थ अशेष बताते हैं,
उच्चारण के साधन सारे रसना रोक जताते हैं।
ऐसा उत्तम शब्द कोष में मिला न अब तक अन्य,
ओमुद्भूत नाम शंकर का सकल कलाधर धन्य।

—

मैं समझता था कहीं भी कुछ पता तेरा नहीं,
आज शंकर तू मिला तो अब पता मेरा नहीं।

—

सत्य संसार का सार है सत्य का शुद्ध व्यापार है,
सत्य सद्धर्म का धाम है सत्य सर्वज्ञ का नाम है।

—

जिस अखिलेश अकाय एकने खेल अनेक पसारे हैं,
जिस असीम चेतन के वश में जीव चराचर सारे हैं।
जिस गुणहीन ज्ञान-सागर ने सब गुण-धारी धारे हैं,
उसके परम भक्त बुध-योगी श्री गुरुदेव हमारे हैं।

—

कौन मानेगा नहीं इस उक्ति को,
गाढ़ निद्रा-सी कहें यदि मुक्ति को।
खोखली है भावना उस अन्ध की—
मानता है जो नहीं दृढ़ युक्ति को।

आ-बैठी उर मोह-जन्य जड़ता, विद्या विदा होगई,
पाई कायरता मलीन मन को, हा, वीरता खोगई।
जागी दीन दशा दरिद्रपन की, श्री-सम्पदा सोगई,
माया शंकर की हँसाय हमको, रुद्रा बनी रोगई।

—

काल के गाल में मोह की सेज पै,
मन्दभागी पड़ा सोरहा जागरे।
दण्ड यामादि दन्तावली के तले,
चूर लाखों भये भोंदुआ भागरे।
खालिये ढेर के ढेर प्राणी,
इसी ढंग से चाव से तोहि भी खायगा।
चेतजा तू इसे ज्ञान की आग में,
जारदे जीव से ब्रह्म हो जायगा।

—

ब्रह्म को जानिये, वेद को मानिये,
दान जो कीजिए, दीन को दीजिए।

—

भज राम को, तज काम को,
डर पाप से, तर ताप से।

—

नर वर वीर, हर पर पीर,
खल-दल मार, छल-बल टार।

—

क्या तू लाया प्यारे, क्या लेजावेगा रे,
माया के संचारे, झूठे धंधे सारे।

—

जो योगी सो भोगी,
जो देगा सो लेगा।